Published by Swami Brahmanandji of Pushkar and Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the "Nirnaya-Sagar" Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

# (प्रस्तावना)



ओं श्री सर्व महाशय सज्जन पुरुषोंको विदित हो कि यद्यपि अध्यात्म विद्याके प्रतिपादक सांख्य वेदांत योग आदि दर्शन पहलेसेंहि भूमंडलमें प्रसिद्ध हैं परंतु उनमें भिन्नभिन्न प्रकारसें तत्त्वज्ञानका निरूपण किया हूया है इसलिये अल्पज्ञ जिज्ञासु जनोंकी बुद्धिमें उनसें भ्रम उपन्न होना संभव है. जैसे कि सांख्यशास्त्रमें प्रकृति और पुरुप दो पदार्थ अनादि माने हैं और वेदांतमें ब्रह्म ईश्वर जीव माया अविद्या ओर जगत् यह पट्पदार्थ अनादि माने हैं और योगशास्त्रमें प्रकृति पुरुष और ईश्वर यह तीन पदार्थ अनादि माने हैं तथा रामानुजमतमें जीव प्रकृति और ईश्वर यह तीन अनादि माने हैं. सो इसप्रकार भिन्नभिन्न प्रक्रिया लिखी हूई हैं एक मार्ग सरल नहि लिखा है इसलिये जिज्ञासुजनोंके हितके लिये एक सरल मार्गसें तत्त्वज्ञान होनेके लिये यह ईश्वरदर्शन निर्माण किया गयाहै। तथा वेद स्मृति पुराण आदि ग्रंथोंमें यद्यपि वहुत जगा निर्गुण ईश्वरके स्वरूपका वर्णन किया हुया है परंतु सोभी पृथक् पृथक् थोडा थोडा होनेसें जिज्ञासुजनोंको पूर्ण बोध होनेमें कठिनता पडती है

इसलिये केवल एकत्र, ईश्वरके स्वरूपका निरूपण करनेके-लियेभी ईश्वरदर्शनका निर्माण किया गयाहै ऐसा जानना चाहिये सो सज्जन जिज्ञासु पुरुषोंको इस ग्रंथका पूर्ण रीतिसें विचार करके तत्त्वज्ञानका यथार्थ निश्चय करना चाहिये सो यह पुस्तक धर्मानुशासन मोक्षगीता भजन-माला आदि ग्रंथोंके निर्माण कर्ता पुष्करतीर्थनिवासी स्वामि-ब्रह्मानंदने निर्माण किया और छपवाय करके प्रसिद्ध किया है इति शम्.

द० स्वामिब्रह्मानंदः



# ईश्वरदर्शनप्रारंभः

श्रीरमापतये नमः ।

नमस्तस्मै परेशाय परानन्दैकहेतवे ।
विश्ववृक्षैकबीजाय संसारार्णवसेतवे ॥ १ ॥

## अथेश्वराराधनम् ॥ १ ॥

भाष्यं । अथशब्दोयमत्रारंभार्थः । नत्वानंतर्यार्थो मंगलार्थको वा । ईश्वराराधने सर्वास्ववस्थासु सर्वेषां जीवानामधिकारात् । ईश्वरशब्दस्यैव मांगलिकत्वाच्च । ईश्वराराधनं सर्वैरेव जनैः कर्त्तव्यमिति वाक्यशेषः ॥ १ ॥

भाषाटीका । भाष्यका आरंभ करतेहुये ग्रंथकार शिष्टाचारके अनुसार प्रथम मंगलाचरण करते हैं । जो परमेश्वर परम आनंदका एकहेतु है अर्थात् परम आनंदस्वरूप है और जो इस संसाररूप वृक्षका एक मुख्य बीजरूप है अर्थात् जिससें यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न होता है तथा जो संसाररूप समुद्रके पार होनेमें मुमुक्षुजनोंके लिये सेतुरूप है तिस परमेश्वरको नमस्कार होवो इति ॥

अथेश्वराराधनम् । अथशब्द इस जगा आरंभका वाचक है अनंतरका वाचक नहि है क्योंकि ईश्वरके आराधन करनेमें सर्व जीवोंका सर्व कालमें अधिकार है और सूत्रमें जो ईश्वरशब्द है सोई मंगलरूप है इसलिये यहां अथशब्द मंगलका वाचकभी नहि है केवल आरंभका वाचक है सो ईश्वरका आराधन सब लोकोंको करना चहिये इति ॥ १ ॥

किमर्थमीश्वराराधनं कार्यम्—

अवश्यकर्त्तव्यत्वात् ॥ २ ॥

यतः परमेश्वरेण जीवानामर्थे नानाविधानि भोगसाधनानि भोगायतनानि शरीराणि च विनिर्मितानि विशेषतश्च मनुष्यदेहे ज्ञानाधिक्यप्रदानात्तस्य महोपकारो वर्त्तते जलस्थलनभश्चराणां जीवानामाधिपत्यं च तेन मनुष्याय वितीर्णं ततो मनुष्यैरवश्यं तस्याराधनं कर्त्तव्यं नोचेत्कृतघ्नत्वमेव भविष्यतीति ॥ २ ॥

अवश्यकर्त्तव्यत्वात् । जिसमें ईश्वरनें जीवोंके लिये जगतमें अनेक प्रकारके भोगपदार्थ और भोग भोगनेके स्थान नानाप्रकारके शरीर निर्माण किये हैं तिनमें विशेषकरके मनुष्यदेहमें पशुपक्षियोंसें अधिक

ज्ञान देकर बडा भारी उपकार किया है तथा जलचर स्थलचर और आकाशमें विचरणेहारे सर्व जीवोंका मनुष्यको राजा बनाया है इसलिये मनुष्योंको अवश्य तिस ईश्वरका आराधन करना चहिये नहि तो कृतघ्नपणेकी प्राप्ति होवेगी ऐसा जानना चाहिये इति ॥ २ ॥

इतश्चेश्वराराधनं कर्त्तव्यम्—

उभयसाधनत्वाच्च ॥३॥

उभयस्य भोगस्य मोक्षस्य च हेतुत्वादपीश्वरस्याराधनं कर्त्तव्यं परमेश्वराराधनेनैव हि ब्रह्मलोकावधि भोगजातस्य कैवल्यावधि मोक्षस्य च प्राप्तिर्जायते ततो भोगाभिलापिभिरपवर्गेप्सुभिश्च पुरुषैरीश्वराराधनमेव करणीयम् ॥ ३ ॥

इसलियेभी ईश्वरका आराधन करना चहिये। (उभयसाधनत्वात्) उभय कहिये भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्तिका हेतुभूत होनेसेंभी ईश्वरका आराधन अवश्य करना चहिये क्योंकि ब्रह्मलोकपर्यंतके भोग और कैवल्यपर्यंत मोक्ष यह दोनों ईश्वरके आराधनसेंहि प्राप्त होवे हैं इसलिये भोगोंकी इच्छावाले पुरुषोंको और मोक्षकी इच्छावाले पुरुषोंको ईश्वरका आराधन करना योग्य है इति ॥ ३ ॥

ननु सकामानि ज्योतिष्टोमादीनि कर्माणि पर्यं-काद्युपासनाश्च कुर्वन्नयं जनः स्वर्गादि ब्रह्मलोकांतं विषयसुखं प्राप्नोति शमदमाद्यनुष्ठानपुरःसरं वेदांतवाक्यविचारेण मोक्षपदं चाधिगच्छत्येवं पुरुषप्रयत्नाधीनत्वात् भोगमोक्षयोः किमर्थं पुनरीश्वराराधने प्रयासांतरमित्यत्राह—

**स्वप्रयत्नादिति चेन्नान्यतंत्रत्वाज्जीवस्य ॥४॥**

स्वप्रयत्नात् कर्मोपासनाध्यात्मशास्त्रविचारादिना पुरुषप्रयत्नेनैव तयोर्भोगमोक्षयोः सिद्धिर्भविष्यतीति नैवं मंतव्यं कुतः अन्यतंत्रत्वाज्जीवस्य परतंत्रो हि किलायं जीवः यदि भवेदयं स्वतंत्रस्तदा प्रभवेदात्मप्रयत्नेनैव भोगमोक्षयोरासादने परंतु तस्येश्वराधीनत्वात् तद्वारैव तत्प्राप्तिर्भवितुमर्हति (एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषत ) इति श्रुतेः अज्ञो जंतुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वेति स्मृतेश्च ॥ ४ ॥

ननु ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकरके और पर्यंक प्रणव आदिउपासनाकरके यह पुरुष स्वर्गसें लेकर ब्रह्मलोकपर्यंतके भोगोंको प्राप्त हो सकताहै और शम दम आदि साध-

नपूर्वक वेदांतशास्त्रके विचारसें मोक्षपदकोभी प्राप्त हो सकताहै सो इसप्रकारसें जब भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति पुरुषप्रयत्नसेंहि होसके है तो फिर ईश्वरके आराधन करनेमें जुदा परिश्रम किसलिये करना चहिये ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( स्वप्रयत्नादिति चेन्नान्यतंत्रत्वाज्जीवस्य ) स्वप्रयत्नात् कहिये ज्योतिष्टोमयज्ञ आदि कर्म और पर्यंक आदि उपासना तथा वेदान्तशास्त्रके विचारआदिपुरुषार्थ करनेसेंहि भोगमोक्षकी प्राप्ति होसकेहै ऐसा नहि मानना चहिये, क्योंकि यह जीव परतंत्र है जो यह स्वतंत्र होवे तो भोग और मोक्षको अपने पुरुषार्थसे संपादन कर सके परंतु जीवको ईश्वरके अधीन होनेसें तिसके द्वाराहि जीवको भोग और मोक्षकी प्राप्ति संभवे है जैसे कि कौषीतकी उपनिषत्में लिखा है कि ( यह ईश्वरही उस जीवसें शुभ कर्म कराता है जिसको ऊपर स्वर्गादि लोकोंमें लेजाना चाहता है तथा यह ईश्वरहि उस जीवसें अशुभ कर्म कराता है जिसको नीचेके नरकादि लोकोंमें लेजाना चाहता है ) इति । तथा महाभारतके मोक्षपर्वसेंभी लिखा है कि ( यह अज्ञानी जीव अपने सुख दुःख भोगनेमें असमर्थ है सो यह ईश्वरकी प्रेरणासें स्वर्गमें वा नरकमें जाता है ) इति ॥४॥

कथं चैतद्विज्ञायते जीवः परतंत्र इति—

अहिताचरणात् ॥ ५ ॥

अहिताचरणात् जीवस्य परतंत्रत्वं विज्ञेयं। नहि स्वतंत्रः कदाचित् स्वकीयमहितमाचरेत् को ह्यात्मानं पातयितुमिच्छति जानन्नप्यनिष्टफलेषु कर्मसु प्रवर्तमानश्चायं स्वकीयं परतंत्रत्वमेवावेदयति तथाच महाभारते दुर्योधनवाक्यं ( जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानास्यधर्मं न च मे निवृत्तिः। केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमीति ) ॥ ५ ॥

यह वार्ता कैसे जानी जावे कि यह जीव परतंत्र है तहां कहें है ( अहिताचरणात् ) अपने अहित कर्मोंके आचरण करनेसें जीवका परतंत्रपणा सिद्ध होवे है क्योंकि जो यह जीव स्वतंत्र होवे तो फिर अपने अहितकारक कर्मोंको क्यों आचरण करे अर्थात् कभी नहिं करे कौन ऐसा पुरुष है जो अपने आत्माकी अवनति चाहता है अर्थात् कोई नहि चाहता है सब जीव अपनी उन्नति वा सुखको चाहते हैं और जानता हुआभी यह जीव नरक आदि अनिष्ट फलके देनेहारे कर्मोंमें प्रवृत्त होताहै इससें यह जीव अपना परतंत्र-

पणाहि सूचना करता है तथा महाभारतमें दुर्योधन-काभी वचन है कि (मैं धर्मको जानता हुं परंतु उसमें मेरी प्रवृत्ति नही होती और अधर्मको भी जानता हुं परंतु उससें मेरी निवृत्ति नही होती है सो मेरे हृदयमें स्थित भया कोई देव जैसे मुझको प्रेरणा करता है तैसेहि मैं करता हूं, इति ॥ ५ ॥

इच्छाविघातात् ॥ ६ ॥

इच्छाविघातादपि जीवस्य परतंत्रत्वं निश्चीयते दृश्यंते हि जीवानां लौकिकवैदिककार्येषु बहवो विघ्नाः प्रादुर्भवंतः । जीवो यत्कार्यं यादृशमिच्छति तत्सर्वदा तादृशं नैव संपद्यते कदाचित्ततो विपरीत-मपि जायते नैव वा भवति लोकेऽहं सर्वतः सुखी सर्वेषां राजा दीर्घायुर्भवेयमित्येवं वाञ्छन्नपि न किंचिदाप्नोत्यतः परतन्त्र एव जीव इति ॥ ६ ॥

इच्छाविघातात् । इच्छाके विघात होनेसेंभी जीवका परतंत्रपणा निश्चय होवे है क्योंकि जीवोंके लौकिक और वैदिक कार्योंमें अनेकप्रकारके बहुतसे विघ्न उत्पन्न होते देखनेमें आते हैं यह जीव जिस कामको जैसा करना चाहता है सो सर्वदा काल वैसा नहि होता है कवी तिससें उलटाभी होजाता है अथवा

*

कवी होताही नही है मैं लोकोंमें सर्व प्रकारसें सुखी स-
वका राजा और वडी उमरावाला होवूं ऐसी इच्छा
करता हुवाभी खाली रहजाताहै कुछ प्राप्त नहि कर-
सकता है इसलिये यह जीव परतंत्रहि है इति ॥ ६ ॥

दुःखत्रयपरिवाधात् ॥ ७ ॥

दुःखत्रयपरिवाधादपि जीवस्य परतन्त्रत्वमवनीयते
तथाहि कदाचित् वातपित्तादिधातुविकारजेन ज्वरा-
दिनाऽऽध्यात्मिकदुःखेन कदाचित् शीतोष्णग्रहपी-
डादिनाऽऽधिदैविकदुःखेन कदाचित् सिंहव्याघ्रस-
र्पवृश्चिकादिनिमित्तजेनाधिभौतिकदुःखेन च बाध्य-
मानोयं दृश्यते प्रयत्नेन निवृत्ते त्वेकस्मिन्नन्यस्यावि-
र्भावो जायते स्वतंत्रश्चेन्न दुःखैरभिहन्येत प्रभवेच्च
समूलतस्तदपाकरणे नैवं दृश्यते तस्मात्परतंत्र एव
जीव इति ॥ ७ ॥

दुःखत्रयपरिवाधात्। तीनप्रकारके दुःखोंकी
बाधा होनेसेंभी जीवका परतंत्रपणा निश्चय होवे है सो
जैसे कबी शरीरमें वात पित्त आदि धातुवोंके विकारसें
ज्वरादिक आध्यात्मिक दुःख करके और कबी शीत
उष्ण ग्रहपीडा आदि आधिदैविक दुःखकरके तथा कबी
सिंह व्याघ्र सर्प वृश्चिक आदिके काटने आदि आधि-
भौतिक दुःखसें यह जीव बाधित हुवा देखनेमें आवेहै

और यत्न करनेसें तिनमेंसें एक दुःख दूर होजाता है तो फिर दूसरा कोई नवीन खडा होजाता है जो यह जीव स्वतंत्र होता तो तिन दुःखोंसें क्लेश नहि पाता और उनको समूलसें मिटाय देता परंतु ऐसा देखनेसें नहि आता है इसलिये यह जीव परतंत्रहि है इति ॥७॥

मृत्युभयाच्च ॥ ८ ॥

मृत्योर्मरणस्य भयादपि जीवस्य परतंत्रत्वं निश्चीयते नहि स्वतंत्रोऽन्यस्माद्बिभेति नानाविधसांसारिकव्यवहारेष्वासक्तो वनितादिविषयेषु सततं रममाणश्चायं मृत्योर्नामश्रवणमात्रेणापि परां भीतिमुपयाति। अनिच्छन्नपि च कालाक्रांतः स्वजनधनसदनादिप्रियपदार्थैर्वियुज्यते न पुनः क्षणमप्यत्र स्थातुं शक्नोत्यतः परतन्त्र एव जीव इति वेदितव्यम् ॥ ८ ॥

मृत्युभयाच्च। मृत्युभयात् कहिये मरणेके भयसेंभी जीवका परतंत्रपणा निश्चय होवे है क्योंकि कोई स्वतंत्र पुरुप दूसरेसें भय नहि करता है परंतु यह जीव तो नानाप्रकारके संसारके व्यवहारोंमें लगाहूया और स्त्रीआदि विपयोंमें निरंतर रमण करता हूयाभी मृत्युके नाम सुननेमात्रसेंहि वडे भयको प्राप्त होजाताहै तथा यह नहि चाहता हूयाभी देहांतसमयमें मृत्युके वशमें

हूया कुटुंब धन मकान आदि अपने सर्व प्रियप-दार्थोंसें वियोगको प्राप्त होजाता है और मृत्युकाल आये पीछे एक क्षणभरभी फिर इसलोकमें नहि ठहर सकता है इसलिये यह जीव परतंत्रहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ८ ॥

ननु भवतु नामास्य जीवस्य परतंत्रत्वं परंत्वीश्वरप्रसादादेव तस्य भोगापवर्गयोः प्राप्तिर्भवतीति नियमो नास्ति कुतः अन्यदेवानामपि सकाशात् तत्प्राप्तिर्भवितुमर्हति बहवो हि जीवाः शिवविष्णुब्रह्मेन्द्रादिदेवानामाराधनेनापि भोगापवर्गयोः सिद्धिं प्राप्तवंतः पुराणेतिहासेषु श्रूयंते किमर्थं पुनरीश्वरस्यैवाराधनं कार्यमित्यत्राह—

सामर्थ्यभेदात्तु नान्येषां तत्साम्यम् ॥९॥

तुशब्देनाक्षेपं व्यावर्तयति यद्यप्यन्येषां शिवविष्णुदुर्गाब्रह्मादिदेवानामपीश्वरांशभूतत्वादाराधनं न विरुद्धं तथापि तेषामीश्वरतुल्यत्वं नैव संभवति कुतः सामर्थ्यभेदात् नहि देवेष्वीश्वरतुल्यं सामर्थ्यं भवति परिमितशक्तित्वाद्देवानामनंतशक्तिमत्त्वाच्चेश्वरस्य युक्तमेव तस्य सर्वोत्कृष्टत्वं यच्च देवेषु वरदानादि सामर्थ्यं विद्यते तदपि तैरीश्वरसकाशादेवासादितमस्ति ततो मुख्यतयेश्वरस्यैवाराधनं कर्तव्यम् ९

ननु उक्तप्रकारसें जीवका परतंत्रपणा होवो परंतु तिसको ईश्वरकी कृपासेंहि भोग और मोक्षकी प्राप्ति होवे है ऐसा कुछ नियम नहि है क्योंकि और देवतायोंके सकाशसेंभी तिसकी प्राप्ति होसके है जैसे कि पुराणोंके इतिहासोंमें वहुत जगा सुननेमें आता है कि शिव विष्णु ब्रह्मा इन्द्रादि देवतायोंके आराधनसेंभी अनेक जीवोंको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती भई है तो फिर केवल ईश्वरकाहि आराधन क्यों करना चहिये ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( सामर्थ्यभेदात्तु नान्येषां तत्साम्यम् ) यद्यपि दूसरे शिव विष्णु दुर्गा ब्रह्मा आदि देवोंकोभी ईश्वरका अंशरूप होनेसें तिनका आराधन करना विरुद्ध नहि है तथापि तिनको ईश्वरकी तुल्यता नहि हो सकती क्योंकि सामर्थ्यभेदात् कहिये देवतायोंमें ईश्वरके तुल्य सामर्थ्य नहिं होतीहै क्योंकि देवतायोंमें परिमित शक्ति होती है और ईश्वर अनंतशक्तियोंका भंडार है इसलिये ईश्वरका सबसें उत्कृष्टपणा ठीक है किंच देवतायोंमें जो वरदान आदि सामर्थ्य है सो तिनोंनेभी ईश्वरसें हि पाई हुई है इस लिये मुख्यता करके ईश्वरकाहि आराधन करना योग्य है इति ॥ ९ ॥

## फलभेदाच्च ॥ १० ॥

फलभेदादपीश्वरस्यैवाराधनं कर्तव्यं नहीश्वरदेवतांतरयोराराधनेनैकविधमेव फलं जायते नहि सम्यगाराधितैरपि भृत्यशतै राज्ञः समं फलं दातुं शक्यते यदनेकजन्मसु यज्ञादिकर्मानुष्ठानैर्देवताराधनेन फलमवाप्यते तदीश्वरस्वरूपचिंतनमात्रेणैव सुतरामुपलभ्यते तथाच श्रुतिवचनं ( क्षणमेकमास्थाय क्रतुशतस्यापि फलमवाप्नोतीति) ॥ १० ॥

फलभेदाच्च । किंच फलके भेद होनेसेंभी ईश्वरकाहि आराधन करना ठीक है क्योंकि ईश्वर और दूसरे देवतायोंके आराधनका फल बराबर नहि होसकताहै सो जैसे बहुतसे नौकरोंकी सेवा करनेसेंभी एक राजाके बराबर फल नहि मिलसकता है तैसेहि ईश्वरके बराबर देवता फल नहि देसकते हैं जो अनेक जन्मोंमें यज्ञ तप आदि कर्मोंके अनुष्ठानसें देवतायोंके आराधनसें फल प्राप्त होवे है सो केवल ईश्वरके स्वरूपके चिंतनमात्रसेंहि प्राप्त होसके है तथा अथर्वशिखा उपनिषत्‌में लिखा है कि ( एक क्षणभरभी ओंकारद्वारा ईश्वरका ध्यान करनेसें सौ यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होवे है ) इति ॥ १० ॥

एवं तर्हिं फलानुसारेणेश्वरस्याराधनमपि दुष्करं भविष्यतीत्यत्राह—

**मनोमात्रसाध्यत्वान्न दुष्करम् ॥ ११ ॥**

भ्रम एवायं जनताया यदीश्वराराधनमन्यदेवाराधनाद्दुष्करं मन्यते कुतः मनोमात्रसाध्यत्वात् यथान्यदेवानामाराधने तत्तच्छास्त्रोक्तानुष्ठानबलिदानहोमतर्पणाद्यपेक्षा विद्यते न तथेश्वराराधने परमेश्वराराधनं तु केवलेन मनसैव बाह्यसाधनानपेक्षेण सुसाध्यं भवति यद्यपि यज्ञदानतपःप्रभृतीनि दुष्कराण्यपि कर्माणीश्वरार्पणबुद्ध्यानुष्ठितानीश्वराराधनोपयोगीनि भवंतीति सत्यं तथापि यथा केवलेनैकाग्रेण मनसा चिंतितः परमेश्वरः प्रसन्नो भवति न तथा यज्ञादिभिस्तुष्यति तथाचोक्तं योगवासिष्ठे ( ध्यानोपहार एवात्मा ध्यानमस्य महार्चनम् । विना तेनेतरेणायमात्मा लभ्यत एव नो ) इति । यज्ञादिकर्माणि तु विक्षिप्तचेतसां तदुपयोगितया विहितानीत्यवगंतव्यम् ॥ ११ ॥

जो ईश्वरके आराधनमें दूसरे देवतायोंसें अधिक फलकी प्राप्ति होवेहै तो फिर ईश्वरका आराधनभी दूसरे देवतायोंके आराधनसें विशेष कठिन होवेगा ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं ( मनोमात्रसाध्य-

त्वान्न दुष्करम् ) दूसरे देवतायोंसें ईश्वरका आराधन कठिन है यह केवल अज्ञानी लोकोंका भ्रम है क्योंकि ईश्वरका आराधन तो केवल एकाग्रमनसेंहि सहजमें होसकता है जिस प्रकार दूसरे देवतायोंके आराधनमें भिन्न-भिन्न तंत्र शास्त्रोक्त रीतिसें अनुष्ठान बलिदान होम तर्पण आदिकी आवश्यकता होवे है तैसे ईश्वरके आराधनमें नहि होवे है ईश्वरका आराधन तो किसी बाह्य सामग्रीके विना केवल एकाग्र मन करके हि ठीक होसके है । यद्यपि यज्ञ तप दान आदि बडे बडे कठिन कर्मभी ईश्वरार्पण बुद्धिसें कियेहूये ईश्वराराधनके उपयोगी होसकते हैं तथापि जैसे केवल एकाग्रमनसें चिंतन करनेसें ईश्वरकी प्रसन्नता होती है तैसे यज्ञादिकर्मोंकरके नहि होवेहै तथा योगवासिष्ठमें लिखा है कि ( यह सर्वव्यापक अंतर्यामी आत्माका ध्यानहि उपहार है और ध्यानहि उसका परम पूजन है ध्यानके विना दूसरे किसी उपायसें उसकी प्राप्ति नहि होवे है ) इति । और जो कहीं वेदशास्त्रोंमें यज्ञ तप आदि बडे कर्मभी ईश्वरके आराधनके उपयोगी कथन किये हैं सो तो विक्षिप्तचित्तवाले पुरुषोंके लिये कथन किये हैं एकाग्रचित्तवालोंके लिये नहि ऐसा समझना चाहिये इति ॥ ११ ॥

## अधिकारनियमाभावाच्च ॥ १२ ॥

अधिकारनियमाभावादपीश्वराराधनं न दुष्करं यथान्यदेवताराधनसाधनेषु बृहस्पतिसवराजसूयादियागेषु ब्राह्मणक्षत्रियादय एवाधिक्रियंते नेतरे नैवमीश्वराराधने जातिगुणादिविशेषनियमोस्ति सर्वत्र हि सर्वेषां जंतूनामीश्वराराधनस्याप्रतिषिद्धत्वात् (मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिमिति) भगवद्वचनात् ॥ १२ ॥

अधिकारनियमाभावाच्च । अधिकारके नियम नहि होनेसेंभी ईश्वरका आराधन कठिन नहि है जैसे अन्य देवतायोंके आराधनके साधनभूत बृहस्पतिसव राजसूय आदि यज्ञोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियादिकोंकाहि अधिकार है दूसरोंका नहि तैसे ईश्वरके आराधनमें कोई जाति गुण आदिका नियम नहि है क्योंकि श्रुतिस्मृतियोंमें किसी जीवकोभी ईश्वरके आराधनका निषेध नहि है तथा भगवद्गीतामेंभी लिखा है कि (हे पार्थ कहिये अर्जुन स्त्रियां वैश्य शूद्र तथा अन्य जो नीचयोनिवाले जीव हैं सोभी मेरी शरणमें आनेसें परम गतिको प्राप्त होते हैं) इति ॥ १२ ॥

कोयमीश्वरो नाम यस्येदमाराधनमुपदिश्यते तत्राह—

जगज्जन्मादिकारणमीश्वरः ॥१३॥

प्रथमतस्तावत्तटस्थलक्षणेनेश्वरस्य स्वरूपं वर्णयति जगतोऽस्य दृश्यमानस्याशेषप्रपंचस्य यदुत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणं तदेवेश्वरपदवाच्यमिति विज्ञेयं (यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति) वेदवचनात् ॥ १३ ॥

वो ईश्वर कौन है जिसके आराधनका उपदेश किया जाता है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं (जगज्जन्मादिकारणमीश्वरः) यहां पहले तटस्थलक्षणसें ईश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हैं। इस दृश्यमान संपूर्ण जगत्का जो उत्पत्ति स्थिति और प्रलयका कारण है सोई ईश्वरशब्दका वाच्य अर्थ है अर्थात् सोई ईश्वर जानना चहिये तथा तैत्तिरीय उपनिषत्में लिखा है कि (जिससें यह सर्व भूतप्राणी उत्पन्न होते हैं जिसमें रमण करते हैं औ जिसमें अंतमें लीन होते हैं उसको जानना चहिये सोई ब्रह्म है) इति ॥ १३ ॥

स्वत एव सर्वे भावा जायंते विनश्यंति च किं तत्र कारणकल्पनयेति चेत् तत्राह—

नाकारणं दृष्टविरोधात् ॥१४॥

अकारणमेवैतदखिलं जगदुत्पद्यते नैवं मंतव्यं कुतः दृष्टविरोधात् नह्यकारणं किमपि वस्तूत्पद्यमानं दृश्यते यद्यद्यत्र यत्र वस्तूत्पद्यते तत्तदखिलं स्वस्वकारणादेवोत्पद्यमानं दृश्यते यथा मृदो घटस्तंतुभ्यः पटः सुवर्णाद्भूषणं तिलेभ्यश्च तैलमित्येवं सर्वत्र द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥

यह सर्व पदार्थ अपने आपहि उत्पन्न और नाश होते रहते हैं इनमें कारणकी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( नाकरणं दृष्टविरोधात् ) यह जगत् विनाहि कारणसें उत्पन्न होवे है ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि दृष्टविरोधात् कहिये यह वार्ता दृष्टसें विरुद्ध है क्योंकि कोईभी पदार्थ विना कारणके उत्पन्न होता देखनेसें नहि आता जो जो पदार्थ जहां जहां उत्पन्न होते हैं सो सो सवी अपने अपने कारणसेंहि उत्पन्न होते देखनेमें आते हैं जैसे कि मृत्तिकासे घट तंतुवोंसें वस्त्र सुवर्णसें भूषण तिलोंमेंसें तैल उत्पन्न होवेहै ऐसेहि औरभी सब जगामें जानलेना इति ॥ १४ ॥

इतश्च नेदमकारणं—

कारणादानप्रवृत्तेश्च ॥ १५ ॥

येन येन कर्त्रा यद्यत्कार्यमुत्पाद्यंभवति तेन तेन प्रथमतस्तस्य तस्य कारणमादीयते यथा कुलाल-तंतुवायसुवर्णकारादयो घटपटभूषणादिनिर्माण-मिच्छंतो मृत्तंतुसुवर्णादीनां कारणपदार्थानां ग्रहणं कुर्वंति यदा भवेदकारणं वस्तुजातं न भवेत्तदा कारणादानप्रवृत्तिर्लोकस्य दृश्यते च ततः कार्यत्व-साधर्म्याज्जगतोपि स कारणत्वमेवावसेयम् ॥१५॥

कारणादानप्रवृत्तेश्च। जो जो कर्ता जिसजिस कार्यको बनाना चाहता है तो सो सो पहले तिस तिसके कारणकोग्रहण करता है जैसे कि कुलाल जुलाहा सुवर्णकार आदि घट वस्त्र आभूषण आदिकोंके निर्माणकरणेकी इच्छा करतेहूये मृत्तिका तंतु सुवर्ण आदिकारण पदार्थोंका ग्रहण करतेहैं जो कदाचित् सर्वपदार्थ विनाहिकारणके होते होवें तो फिर कोईभी लोक तिनके कारणोंका ग्रहण नहि करते परंतु ग्रहण करते देखनेमें आते हैं इसीप्रकार घट पट आदिकोन्याईं जगत्कोभी कार्यरूप होनेसें कारणसहित मानना चहिये अर्थात् इसकाभी कोईकारण अवश्य है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ १५ ॥

ननु स्वभाव एवायं पदार्थानां यत्तत्तद्रूपेणोद्भवनं यथा वीर्यस्य शरीराकारेण वीजस्य च वृक्षाकारेणोद्भवनमित्येवं जले द्रवत्वमग्नावुष्णत्वं वायौ सदागतित्वं स्वभावसिद्धमित्याद्यखिलं जगत् स्वभावादेव जायते न तत्र कर्त्रपेक्षास्तीत्यत्राह--

**स्वभावादिति चेन्न नियमदर्शनात् ॥ १६ ॥**

स्वभावादेवास्य विश्वस्योत्पत्तिर्भवतीति नैवमंगीकार्यं कुतः नियमदर्शनात् दृश्यते हि पदार्थोत्पत्तौ नियमः । अस्मादेव पदार्थादस्य वस्तुन उत्पत्तिर्नान्यत इत्येवं सर्वत्र कार्यकारणभावनियम उपलभ्यते यदि स्वभावत एव सर्वे भावा जायेरन् न भवेत्तदायं नियमः सर्वस्मादपि पदार्थात्सर्वस्य वस्तुनः सर्वत्रोत्पत्तिर्जायेत नत्वेवं दृश्यते तस्मान्न स्वभावो जगत्कारणम् ॥ १६ ॥

ननु पदार्थोंका यह स्वभावहि है कि सो अपने अपने स्वरूपसें आपहि उत्पन्न होजाते हैं जैसे कि वीर्य शरीररूपसें उत्पन्न होजाता है और वीज वृक्षरूपसें प्रकट होजाता है तथा जलमें द्रवपणा अग्निमें उष्णपणा वायुमें सदागतिपणा स्वभावसेंहि सिद्ध है इत्यादि सर्व जगत् स्वभावसेंहि उत्पन्न होवे है तिसमें किसी कर्ताकी

आवश्यकता नही है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (स्वभावादिति चेन्न नियमदर्शनात्) स्वभावसेंहि इस जगत्की उत्पत्ति होवे है ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि नियमदर्शनात् कहिये सर्वपदार्थोंकी उत्पत्तिमें सब जगा नियम देखनेमें आवे है अमुक पदार्थसेंहि अमुक वस्तुकी उत्पत्ति होवे है अन्यसे नहि इस प्रकारसें सर्वत्र कार्यकारणभाव नियम देखनेमें आवे है जो स्वभावसें अपने आपसेंहि सर्व पदार्थोंकी उत्पत्ति होती तो फिर ऐसा नियम नहि होता सर्वजगा सर्वपदार्थोंसे सर्ववस्तुवोंकी उत्पत्ति होजाती परंतु ऐसा देखनेमें नहि आता इसलिये स्वभाव जगत्का कारण नहि होसकता ऐसा जानना चहिये इति ॥ १६ ॥

कर्तृप्रयत्नापेक्षणात् ॥ १७ ॥

कर्तृप्रयत्नापेक्षणादपि न स्वभावो जगत्कारणं यत्र यत्र लोके कार्यमुत्पद्यते तत्र तत्र सर्वत्र कर्तुः प्रयत्नापेक्षा भवति यथा घटोत्पत्तौ कुलालस्य पटोत्पत्तौ तंतुवायस्य भूषणनिर्माणे च सुवर्णकारस्य प्रयत्नावश्यकता भवति नहि क्वचित् किंचिदपि वस्तु कर्तृप्रयत्नमंतरोत्पद्यते तद्वदेवेश्वरस्य संकल्पात्मकप्रयत्नेनैवास्य जगतः समुत्पत्तिर्भवतीति ज्ञातव्यं

स्वभावादुत्पत्तौ तु सर्वे पदार्थाः स्वयमेवोत्पद्येरन् न कोपि कस्यचित्प्रयत्नमपेक्षेत तस्मान्न स्वभावो जगत्कारणम् ॥ १७ ॥

कर्तृप्रयत्नापेक्षणात्। कर्ताके प्रयत्नकी अपेक्षा होनेसेंभी स्वभाव जगत्का कारण नहि होसके है क्यों कि जहां जहां लोकमें कोई कार्य उत्पन्न होता है तो तहां तहां सबजगा कर्ता पुरुषके प्रयत्नकी आवश्यकता होती है जैसे कि घटकी उत्पत्तिमें कुंभारके प्रयत्नकी और वस्त्र बननेमें जुलाहेके प्रयत्नकी और भूषण बनानेमें सुनारके प्रयत्नकी आवश्यकता होती है किसी जगा कोई वस्तुभी कर्ताके प्रयत्नविना उत्पन्न नहि हो सकती है तैसेहि इस जगत्की उत्पत्तिभी ईश्वरके संकल्परूप प्रयत्नसेंहि होवे है ऐसा जानना चाहिये जो स्वभावसें उत्पत्ति होती होवे तो फिर सर्वपदार्थ अपने आपहि उत्पन्न होजावें कोईभी किसीके प्रयत्नकी अपेक्षा नहि करे इसलिये स्वभाव जगत्का कारण नहि होसकता है इति ॥ १७ ॥

इतश्च न स्वभावो जगत्कारणं—

**रचनाविन्यासवैशारद्याच्च ॥ १८ ॥**

जगद्रचनायां पदार्थानां विन्यासस्य वैशारद्या-

दपि न स्वभावाज्जगदुत्पत्तिर्भवितुमर्हति तद्यथा नभसि नक्षत्राणां सूर्यचन्द्रादिग्रहाणां च यथायोग्यं विन्यासो दृश्यते पृथिव्यामपि नदीसमुद्रपर्वतादीनां यथोचितमवस्थानं विद्यते वनस्पतीनां बीजांकुरफलादिक्रमश्च युक्त एवावलोक्यते प्राणिशरीरेष्वपि पानभोजनपचननिर्गमनादिव्यवस्था यथापेक्षमनुभूयते एवमन्यत्रापि सर्वत्र द्रष्टव्यं नैतद्युक्तियुक्तं परस्परोपयोगि सर्वतः सुव्यवस्थितं जगच्चक्रं स्वभावात्परिवर्तते किंतु केनचिन्महाबुद्धिना सर्वज्ञेनेदं प्रवर्तमानमवसीयते ततो न स्वभावो जगत्कारणमिति बोद्धव्यम् ॥ १८ ॥

इससेंभी स्वभाव जगत्का कारण नहिं होसकता (रचनाविन्यासवैशारद्याच्च) जगत्की रचनामें पदार्थोंकी स्थापनाकी चतुराई होनेसेंभी स्वभावसें जगत्की उत्पत्ति नहि होसकती है सो जैसे आकाशमें सर्व नक्षत्रोंकी और सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी यथायोग्यरीतिसें स्थापना कीहूई देखनेमें आवे है और पृथिवीमेंभी नदी समुद्र पर्वत आदिकोंकी ठीक ठीक स्थिति हो रही है तथा वनस्पतियोंका बीजना उगना फलदेना आदि क्रमभी ठीक उपयोगीरीतिसें बनाहूया देखनेमें आवे है और मनुष्यआदि सर्वप्राणधारी जीवोंके

शरीरोंमेंभी अन्नजलादिकोंका खाना पीना पचना निकलना आदि व्यवस्था आवश्यकताके अनुसार बनीहुई अनुभवमें आती है ऐसेहि अन्यत्रभी सब जगामें समझ लेना चहिये सो इस प्रकारका युक्तियुक्त और सर्व तरफसें परस्पर उपयोगी और ठीक व्यवस्थासें बनाहूया यह जगत्चक्र अपनेआप स्वभावसें नहि चलता है किंतु किसी बडे भारी बुद्धिमान् सर्वज्ञ पुरुष करके चलायाहूया प्रतीत होता है इसलिये स्वभाव जगत्का कारण नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १८ ॥

ननु कालेन सूर्यस्तपति कालेन शीतं प्रवर्तते कालेन वृष्टिरुपजायते कालेन वृक्षाः फलंति कालेन गर्भजननं भवतीत्येवमखिलमिदं जगत् कालादेवोत्पद्यमानं दृश्यते तस्मात्काल एवास्य जगतः कारणमस्तीत्यत्राह—

न काल उत्पत्तेः ॥ १९ ॥

कालोपि जगत्कारणं न भवितुमर्हति कुतः उत्पत्तेः कालस्य स्वयमुत्पत्तिमत्त्वात् ( अक्षरात्संजायते कालः कालाद्व्यापक उच्यते, ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः, समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी, कालं

कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथे ) त्यादिश्रुति-स्मृतिवचनेषु कालस्योत्पत्तिः श्रूयते सूर्यचन्द्रगति-निमित्तेन दिनरात्रिपक्षमासादिपरिमाणेन कालस्य कल्पना क्रियते ततः सृष्टिरचनानंतरमुत्पन्नस्य कालस्य कथं जगत्कारणत्वं संगच्छते न कथंचि-दित्यर्थः ॥ १९ ॥

ननु कालसें सूर्य तपता है कालसेंहि शीत उप-जता है कालसें हि वृष्टि होती है कालसेहि वृक्ष फूलते फलते हैं और कालसेंहि गर्भका जन्म होता है इस प्रकार संपूर्ण जगत् कालसेंहि उत्पन्न होवे है इसलिये कालहि जगत्का कारण है ऐसी शंका होनेसें समा-धान कथन करते हैं ( न काल उत्पत्तेः ) कालभी जगत्का कारण नहि होसकता क्योंकि उत्पत्तेः कहिये कालको स्वयं उत्पत्तिवाला होनेसें जैसे कि अथर्वशिरउपनिपत्में लिखा है कि ( अक्षर परमा-त्मासें काल उत्पन्न होता है और कालकी उत्पत्तिसें सो परमात्मा व्यापक कहलाता है) इति। तथा श्वेता-श्वतरउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( सो परमात्मा कालकाभी काल है अर्थात् कालकीभी उत्पत्ति और नाश करनेहारा है ) इति। तथा यजुर्वेदसेंभी लिखा है कि ( परमेश्वरने समुद्रसें संवत्सरको उत्पन्न किया

तथा दिन और रात्रीको बनाया), इति । तथा मनुस्मृतिमेंभी लिखा है कि (परमेश्वरने कालको रचा और कालके वर्ष मास पक्ष आदि हिस्सोंकोभी रचा )इति । इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके वचनोंमें कालकी उत्पत्ति सुननेमें आतीहै सूर्यचंद्रमाकी गतिके निमित्तसे दिनरात्रिपक्षमास आदि परिमाणसे कालकी कल्पना होती है सो सृष्टिके अनंतर उत्पन्न होनेसें कालको जगत्का कारणपणा कैसे होसकता है अर्थात् नहीं होसकताहै इति ॥ १९ ॥

इतश्च न कालस्य जगत्कारणत्वं—

जडात्मकत्वाच्च ॥ २० ॥

जडात्मकत्वादपि कालस्य न जगत्कारणत्वं संभवति बुद्धिपूर्वकत्वाज्जगन्निर्माणस्य नहि जडेन कालेन बुद्धिहीनेन विचारशक्तिरहितत्वात् जगद्रचना कर्तुं शक्यते शीतोष्णवृष्टिफलपुष्पाद्यागमस्त्वीश्वरकृतसंकेतानुसारेणैव भवतीति ज्ञातव्यं नहि जडेन कालेन स्वार्थं परार्थं वा कश्चिन्नियमः कर्तुं शक्यते जडत्वं च कालस्य संवत्सरमासपक्षादिभिस्तदवयवैः प्रत्यक्षमेव प्रतीयते ततो न कालस्य जगत्कारणत्वं संभवतीति ॥ २० ॥

इससेंभी काल जगत्का कारण नहि होसकता (जडात्मकत्वाच्च) जडरूप होनेसेंभी कालको जगत्का कर्तापणा नहि संभवे है क्योंकि जगत्की रचना तो विचारसें होती है सो ज्ञानसें रहित कालमें विचारशक्ति नहि होनेसें जगत्की रचना नही होसकती है और शीत उष्णता वृष्टि फल पुष्प आदिकोंका होना तो ईश्वरके कियेहूये नियमसे होवे है कालके नियमसें नहि होवे है क्योंकि जड पदार्थ अपनेलिये वा दूसरेके लिये कुछ नियम नहि बना सकता है। सो कालका जडपणा तो तिसके वर्ष मास पक्ष दिन आदि अवयवोंसें प्रत्यक्षहि प्रतीत होवे है इसलिये कालको जगत्का कारणपणा नहि होसकता है ॥ २० ॥

मा भवतु कालस्य जगत्कारणत्वं परंतु (यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवती)त्यादि श्रुतिवचनात् कर्मण एव जगत्कारणत्वं स्यात् तत्राह—

न कर्मास्वतंत्रत्वात् ॥ २१ ॥

कर्मणोपि जगत्कारणत्वं न संभवति कुतः अस्वतंत्रत्वात् नहि काचित् क्रिया क्वचित्स्वतंत्रा दृश्यते क्रियायाः कर्त्रधीनत्वात् यथानुष्ठानकाले केनचि-

दन्येनैव कर्त्रा क्रियंते कर्माणि तथैव फलदान-कालेपि केनचिदन्येनैव साक्षिणा तेषां फलं दीयते तस्मादुभयथापि परतन्त्रत्वान्न कर्मणो जगत्कारणत्वं संभवति परस्परं जगत्कर्मणोरनादित्वपक्षेपि कर्मणो निमित्तमात्रत्वमेवांगीक्रियते नतु स्वतंत्रतया कारणत्वं उक्तश्रुतेरपि निमित्तमात्राभिधाने प्रयोजनमस्तीति वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

उक्तरीतिसें कालको जगत्का कारणपणा मत होवो परंतु (जो जीव जैसा कर्म करता है सो वैसाहि होता है श्रेष्ठकर्म करनेवाला श्रेष्ठ जन्मको पाता है पापकर्म करनेवाला नीच योनिको प्राप्त होता है ) इति । इस बृहदारण्यक उपनिषत्के वचनके अनुसार कर्मोंकोही जगत्का कारणपणा होना ठीक है ऐसी शंका होनेपर कहते हैं ( न कर्मास्वतंत्रत्वात् ) कर्मोंकोभी जगत्का कारणपणा नहि होसकता क्योंकि कर्म परतंत्र है अर्थात् जो जो क्रिया देखनेमें आवे है सो सो सब परतंत्रहि देखनेमें आवे है कोईभी क्रिया कहीं स्वतंत्र देखनेमें नहि आती सब जगा सब क्रिया कर्ताके अधीन होती हैं सो जैसे करनेकालमें कर्मोंके करनेवाला भिन्न चेतनपुरुष होवे है

तैसे हि तिनके फल देनेकालमेंभी कोई दूसरा साक्षी पुरुष हि देनेवाला होवे है इसलिये दोनों प्रकारसें कर्मोंको परतंत्रपणा होनेसें जगत्का कारणपणा नहिं संभवे है किंच वेदांतमतके अनुसार जगत् और कर्मोंका परस्पर कार्यकारणभावसें अनादि संबंध माननेमेंभी कर्मोंको केवल निमित्तपणाहि हो सकेहै स्वतंत्ररूपसे कर्तापणा नहि होसकता तैसेहि उक्त श्रुतिकाभी निमित्तमात्र कहनेमेंहि तात्पर्य है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २१ ॥

## तदनंतरभावित्वाच्च ॥ २२ ॥

तस्य जगतोऽनंतरभावित्वादपि कर्मणो न जगत्कारणत्वं संगच्छते सर्वाणि हि किल कर्माणि जगदुत्पत्तेरनंतरमेव भवंतीति ज्ञातव्यं नहि कर्तृकरणाभ्यां विना क्वचित्कर्मणामनुष्ठानं भवितुमर्हति सर्वस्यापि कर्मोपाकरणस्य कर्मारंभात्पूर्वत्वमपेक्षितं न चाकाशादिपंचमहाभूतोत्पत्तितः पूर्वं शरीरेन्द्रियांतःकरणादिकर्मसामग्र्याः संभवो विद्यते सृष्टिप्रवाहेपि सर्वत्राकाशादेरेव पूर्वत्वं नतु शरीरादेरित्यतो न कर्मणो जगत्कारणत्वं संभवतीति ॥ २२ ॥

तदनंतरभावित्वाच्च । जगत्के अनंतर होनेसेंभी कर्मोंको जगत्का कारणपणा नहि होसके है क्योंकि सबी कर्म जगत्की उत्पत्ति होनेके पीछेहि होते हैं कर्ता और करणके विना कहींभी कर्मोंका अनुष्ठान नहि हो सकताहै और कर्म करणेकी सबी सामग्री कर्मके आरंभ करनेसें पहले विद्यमान होनी चहिये सो आकाशआदि पंचमहाभूतोंकी उत्पत्तिसें पहले शरीर इन्द्रिय अंतःकरण आदि कर्म करनेकी सामग्री नहि होती है सृष्टिके प्रवाहको अनादि माननेमेंभी सबजगा आकाशादि तत्त्वोंकाहि प्रथमहोना सिद्ध होवे है शरीर आदिकोंका नहि तो फिर शरीरादिकोंसें कियेहूये कर्म आकाशादि जगत्का कारण कैसे हो सकते हैं अर्थात् नहि हो सकते ॥ २२ ॥

यद्येवं कर्मणो जगत्कारणत्वं नैव संभाव्यते संतु तर्हि वैशेषिकाभिमताः परमाणव एवास्य जगतः कारणं तत्राह—

**नापि परमाणवोऽनादित्वाभावात् ॥ २३ ॥**

वाय्वादितत्त्वचतुष्टयस्य नित्याः परमाणव एव सृष्ट्यादौ जीवादृष्टवशादीश्वरेच्छया परस्परं समेत्य व्यणुकादिक्रमेण स्थूलत्वमुपगताः समस्तस्यास्य ज-

गतः कारणं भवंतीति यद्वैशेषिकैरभ्युपगम्यते तदपि न समीचीनं कुतः अनादित्वाभावात् नहि परमाणूनामनादित्वमस्ति यतस्तेषां जगत्कारणता स्यात् उत्पत्तिश्रवणान्न परमाणूनामनादित्वं सिध्यति तथाच वेदवचनं (तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवीति)। एवं पंचमहाभूतपरमाणूनांकार्यकारणभावेन पूर्वापरत्वभावान्नानादित्वं संगच्छते सादिमत्त्वेन च जगदंतःपातित्वान्न तेषां जगत्कारणत्वं संभवति न चात्र स्थूलतत्त्वानामेवोत्पत्तिर्भवति न सूक्ष्माणामिति कल्पनीयं न ह्युक्तश्रुतिवाक्ये स्थूलं सूक्ष्मं वा पदं विद्यते येन तत्त्वभेदः कल्पयितुं शक्येत केवलं सामान्यवचनत्वान्मूलत एव पंचतत्त्वानामुत्पत्तिर्भवतीतिज्ञातव्यम् ॥ २३ ॥

जब पूर्वोक्त कारणोंसें कर्मोंको जगत्का कारणपणा नहि हो सकता तो फिर वैशेषिकमतके अनुसार परमाणु हि जगत्का कारण होवेंगे ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं (नापि परमाणवोऽनादित्वाभावात्) वायु अग्नि आदि चार महाभूतोंके जो नित्य परमाणु हैं सो सृष्टिके आदिकालसें जीवोंके संचितकर्मोंके निमित्तसें ईश्वरकी इच्छासें परस्पर व्य-

णुक त्र्यणुक आदि क्रमसे स्थूलभावको प्राप्त हूये इस संपूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारण होते हैं ऐसा जो वैशेषिकलोक कहते हैं सोभी ठीक नहि है क्योंकि अनादित्वाभावात् कहिये वायु अग्नि आदि महाभूतोंके जो परमाणु हैं सो अनादि नहिहैं जो अनादि होवें तो जगत्का कारणभी होसकें परंतु सर्वत्र वेदशास्त्रोंमें पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति कथनकरी है जैसे कि तैत्तिरीय उपनिषत्में लिखा है कि ( तिस परमात्मासें आकाश उत्पन्न हुया फिर तिस आकाशसें वायु उत्पन्न हुया वायुसें अग्नि उत्पन्न हुई अग्निसे जल उत्पन्न हुये और जलोंसें पृथिवी उत्पन्न होती भई ) इति। इस प्रकार पंचमहाभूतोंका कार्यकारणपणेसें पूर्व अपरभाव होनेसें अनादिपणा नहि होसकता है और आदिवाले होनेसें पंचमहाभूतोंके परमाणुभी जगत्रचनाके अंदर हि आते हैं इसलिये तिनको जगत्का कारणपणा नहि होसकता है। इस जगा स्थूल पंचमहाभूतोंकी हि उत्पत्ति होवे है सूक्ष्मोंकी नहि होती ऐसी कल्पना नहि करनी चहिये क्योंकि उक्तश्रुतिवचनमें स्थूल वासूक्ष्म ऐसा कोई पदनहि है जिससें तत्त्वोंका स्थूल वा सूक्ष्मभेद कल्पना किया जावे परंतु केवल सामान्यवचन है इस लिये मूलसेहि पंचम-

हाभूतों की उत्पत्ति होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २३ ॥

वैलंब्यदोषात् ॥ २४ ॥

वैलंब्यदोषादपि न परमाणुभ्यो जगदुत्पत्तिः संगच्छते परमाणुसंयोगद्वारेश्वरेण जगन्निर्माणे तु महान् विलंबो जायेत तत्रैकस्य हिमवतः पर्वतस्यैव निर्माणे वर्षलक्षाणि व्यतीयुः तथात्वे चेश्वरस्यालसत्वमशक्तत्वं च प्रसज्येत ( स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति स इमाँल्लोकानसृजत ) इत्यत्र वेदवचने परमेश्वरस्य संकल्पानंतरमेव सृष्टेरुत्पत्तिर्निरूपितास्ति कुलालतंतुवायादीनां मृत्कणतंत्वादिसंयोगेन घटवस्त्रादिनिर्माणदर्शनेनेश्वरस्यापि तद्वत्क्रमेण जगन्निर्माणानुमानं न समंजसं नहीश्वरस्य जीवतुल्यत्वमस्ति येन तस्य कार्यकरणं तत्सदृशं स्यात् जीवेन वर्षशतैरपि यत्कार्यं कर्तुं न शक्यते परमेश्वरस्तदेकक्षणेनैव कर्तुं शक्नोति सामर्थ्यवैलक्षण्यादतो न परमाणुवादो युक्त इति २४

वैलंब्यदोषात् । विलंबतादोषकी प्राप्ति होनेसेंभी परमाणुवोंसें जगत्की उत्पत्ति नहि होसकती है क्योंकि परमाणुवोंके संयोगद्वारा ईश्वरको जगत्की रचना

करनेमें तो बडा भारी विलंब होवेगा अर्थात् एक हिमालयपर्वतके बनानेमेंहि लाखों वर्ष व्यतीत होजावेंगे और तैसा होनेपर ईश्वरको आलसीपणा और असमर्थपणेकी प्राप्ति होवेगी और ऐतरेय उपनिषत्में लिखा है कि ( तिस ईश्वरने विचार किया कि मैं जगत्को रचुं और उसने इन सब लोकोंको रचदिया ) इति। इस वेदवचनमें परमेश्वरके संकल्प होनेके अनंतर तत्कालहि सृष्टिकी उत्पत्ति कथन करी है। और जैसे कुंभार जुलाहे आदि लोक मिट्टीके कणके और तंतु आदि पदार्थोंको जोड जोडकर घट वस्त्र आदि पदार्थ बनाते हैं उसीप्रकार ईश्वरभी परमाणुवोंको जोडकर जगत्को बनाता होगा ऐसा अनुमान करनाभी ठीक नहि है क्योंकि ईश्वरकी जीवोंके बराबर तुलना नहि हो सकती जो ईश्वर जीवोंके बराबर होता तो उसका कार्य करनेका क्रमभी जीवोंजैसा हो सकता परंतु जो कार्य जीव सौवर्षोंमेंभी नहि बना सकता उसको ईश्वर एक क्षणमें बना सकता है क्योंकि ईश्वरमें जीवोंसें विशेष सामर्थ्य है इसलिये परमाणुवाद ठीक नहि है इति ॥ २४ ॥

**प्रमाणाभावाच्च ॥ २५ ॥**

परमाणुसंयोगेन सृष्टिरचनापरस्य श्रुतिस्मृति

प्रमाणस्याभावादपि न परमाणुवादो युक्तः । नहि वैशेषिकमतं विहायान्यत्र क्वचिदपि वेदेषु स्मृतिषु च परमाणुवादस्य निरूपणमुपलभ्यते ततः स्वबुद्धिकल्पितत्वादसमंजसमेवेदं काणादमतमित्यवगंतव्यम् ॥ २५ ॥

प्रमाणाभावाच्च । परमाणुवोंके संयोगसें ईश्वर सृष्टिकी रचना करता है ऐसा कोई श्रुतिस्मृतिमें प्रमाण नहि होनेसेंभी परमाणुवाद ठीक नहि है अर्थात् वैशेषिकमतको छोडकर दूसरे किसी वेद और शास्त्रोंमें परमाणुवादका निरूपण नहि मिलता है इसलिये केवल अपनी बुद्धिकरके कल्पना किया होनेसें यह काणादमुनिका मत ठीक नहि है ऐसा जानना चाहिये इति ॥ २५ ॥

अस्तु तर्हि त्रिगुणात्मिका प्रकृतिरेवास्य जगतः प्रसवकारणं ( अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ) इति श्रुतेः कपिलादिभिश्च सांख्याचार्यैरभिमतत्वादित्यत्राह—

नच प्रकृतिरचेतनत्वात् ॥२६॥

प्रकृतिरपि न जगत्कारणं भवितुमर्हति कुतः अचेतनत्वात् त्रिगुणात्मकत्वादचेतना हि किल प्रकृतिः

नहि स्वयमचेतनं वस्तु जगन्निर्माणे प्रभवति ज्ञानशून्यत्वात् कथं केन किमर्थं कीदृशं मया कार्यं कर्तव्यमिति विचाराभावान्न प्रकृतेर्जगत्कारणत्वं संभवतीति ॥ २६ ॥

अच्छा तो फिर त्रिगुणरूप प्रकृतिकोहि जगत्का कारण मानना चहिये क्योंकि श्वेताश्वतरउपनिषत्में लिखा है कि एक त्रिगुणरूप प्रकृति अपने सदृश त्रिगुणरूप वहुत प्रजाको उत्पन्न करती है इति। तथा सांख्यमतके प्रचारक कपिल आदि मुनियोंकोभी यह संमत है ऐसी शंका होनेसें कहते हैं (नच प्रकृतिरचेतनत्वात्) प्रकृतिभी जगत्का कारण नहि होसकती है क्योंकि अचेतनत्वात् सत्त्व रज तम त्रिगुणमय होनेसें प्रकृति केवल जड पदार्थ है सो आप जडवस्तु होकर वो फिर जगत्को कैसे रचसकती है क्योंकि जड वस्तुमें कुछ ज्ञान नहि होता है और ज्ञानविना किसी पदार्थकी रचना नहि होसके है सो यह कार्य किस प्रकारसें किस सामग्रीसें किसकेलिये किस प्रकारका मेरेको वनाना चहिये इस प्रकारका प्रकृतिमें विचार नहिं होनेसें प्रकृतिको जगत्का कारणपणा नहि होसकता है इति ॥ २६ ॥

ननु स्तन्यपानेन बालस्य शरीरवृद्धिर्जायते जला-सेचनेन च वृक्षविस्तारो भवतीत्यादिस्थलेषु जड-पदार्थेष्वपि कर्तृत्वमवलोक्यते तद्वत्प्रकृतिरपि जगतः कारणं भविष्यतीत्यत्राह—

**जडेषु दृष्टमिति चेन्न चेतनाश्रयत्वात् ॥ २७ ॥**

जडपदार्थेष्वपि कार्यरचनासामर्थ्यं दृष्टमिति चेन्नैवं शंकनीयं कुतः चेतनाश्रयत्वात् यत्र यत्र जड-पदार्थेषु यत्किंचित्किंचित्कारणत्वं दृश्यते तत्र तत्र सर्वत्र चेतनाश्रयत्वमवश्यं भवति चेतनेनात्मना युक्त-मेव शरीरं स्तन्यपानेन वर्द्धते न मृतं वर्द्धते वृक्षश्च चैतन्ययुक्त एव जलेन विस्तारमायाति नतु चैतन्य-हीनः शुष्कः कचिज्जलासेचनेन वृद्धिमुपयात्यतः सर्वत्र चैतन्यस्योत्पत्तिकारणत्वान्न प्रकृतेर्जगत्कार-णत्वं संभवतीति ॥ २७ ॥

ननु माताके स्तनके दूध पीनेसें बालकके शरीरकी वृद्धि होती है और जलके सिंचन करनेसें वृक्ष बढता है इत्यादि स्थलोंमें जड पदार्थोंमेंभी कर्तापणा देखनेमें आता है तैसेहि प्रकृतिभी जगत्का कारण होजावेगी ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( जडेषु दृष्टमिति चेन्न चेतनाश्रयत्वात् ) जडपदार्थोंमेंभी कार्यरचनाकी सामर्थ्य देखनेमें आती है ऐसी शंका

करनी ठीक नहि है क्योंकि चेतनाश्रयत्वात् कहिये जहां जहां जडपदार्थोंमें कहीं कुछ कारणपणा देखनेमें आवे है सो तहां तहां सब जगा चेतनका आश्रय अवश्य होवे है क्योंकि चेतनात्माकरके युक्त भयाहि बालकका शरीर स्तनके दूध पीनेसें वृद्धिको प्राप्त होवे है चेतनतासे हीन मरा हूया शरीर स्तनके दूध पीनेसें नहि बढता है तैसेहि वृक्षभी चेतनतायुक्तहि जलसिंचनसें बढता है चेतनतासें रहित सूका वृक्ष कहीं जलसिंचनसें नहि बढ सकता है इसलिये सब जगा सर्व पदार्थोंकी उत्पत्तिमें परमात्माके चैतन्यकोहि कारण होनेसें जड प्रकृतिको जगत्का कारणपणा नहि हो सकता है इति ॥ २७ ॥

उपयोगित्वाभावात् ॥ २८ ॥

उपयोगरहितत्वादपि न जडेषु कार्यरचनासामर्थ्यं भवतीति ज्ञातव्यं नहि ज्ञानशून्या क्रिया क्वचिदुपयोगित्वमाश्रयते यथा वायुवेगेन पर्वतशिखरान्निपतितस्योपलखंडस्य क्वचिद्योग्यस्थानेनैव पतनं भवति किंत्वंधतया यत्रकुत्रापि तस्य पतनं जायते न च नदीवेगेन जले पतितस्य वृक्षस्य क्वचिदपेक्षितस्थाने किलोत्तरणं भवति तद्वदन्यत्रापि

सर्वत्र जडकार्येषु द्रष्टव्यमतो न प्रकृतेर्जगत्कारणत्वं संभवतीति ॥ २८ ॥

उपयोगित्वाभावात् । उपयोगसें रहित होनेसेंभी जड पदार्थोंमें कार्यरचनाकी सामर्थ्य नहि हो सकती क्योंकि ज्ञानसें रहित कोई क्रिया कहींभी उपयोगी नहि हो सकती है जैसे कि वायुके वेगसें पर्वतके शिखरसें नीचे गिराहूया पत्थरका टुकडा किसी योग्य स्थानपर नहि गिरता है किंतु अंधपणेसें जहां तहां गिरजाता है और जैसे नदीके वेगसें जलमें गिरा हूया वृक्ष किसी जरूरी जगापर नहि उतरता है किंतु जहां तहां अटक जाता है तैसेहि औरभी सब जगा जड पदार्थोंकी क्रियामें समझलेना चहिये इसलिये प्रकृतिको जगत्का कारणपणा नहि हो सकता इति ॥ २८ ॥

बुद्धिपूर्वकत्वाच्च निर्माणस्य ॥ २९ ॥

स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेत्यादिश्रुतेः जगन्निर्माणस्य विचारपूर्वकत्वादपि न प्रकृतेर्जगत्कारणत्वं संभवति । इदमित्थमित्याकारकमस्योपयोगि कर्तुं योग्यमिति प्रथमं मनसि निधाय पश्चादेव करोति सर्वोपि कर्तृ-

घर्मः। दृश्यते हीदं लोकेपि तंतुवायकुलालादयो विचारवंत एव वस्त्रघटादिनिर्माणं कुर्वंति। इष्टसाधनता ज्ञानपूर्विका हि सर्वस्य प्रवृत्तिर्जायते ततो ज्ञानशून्यत्वान्न प्रकृतेर्जगत्कारणत्वं संभवतीति २९

बुद्धिपूर्वकत्वाच्च निर्माणस्य। ऐतरेय उपनिषत्में लिखा है कि (सो परमात्मा विचार करता भया कि मैं सृष्टिको रचूं) तथा तैत्तिरीय उपनिषत्में लिखा है कि (परमेश्वरने इच्छा की कि मैं बहुत रूपसें उत्पन्न होवुं) इत्यादि वेदके वचनोंके प्रमाणसें जगत्का निर्माण विचारपूर्वक होनेसेंभी जड प्रकृतिको जगत्का कारणपणा नहि संभवे है क्योंकि जो कोई कर्ता जो कुछ वस्तु बनाता है सो यह वस्तु इस प्रकारकी इतने आकारवाली इसकी उपयोगी करनीं है इस रीतिसें पहले अपने मनमें विचार करके पीछेहि तिसको बनाता है तथा लोकमेंभी जुलाहा कुंभार आदि कारीगर विचारपूर्वकहि वस्त्र घट आदि वस्तुवोंको बनाते देखनेमें आते हैं किंच यह वस्तु हमारे कामकी है ऐसा ज्ञान होनेके पीछेहि लोकोंकी वस्तु बनानेमें प्रवृत्ति होवे है सो ज्ञानसें शून्य होनेसें प्रकृतिमें ऐसा विचार नहि हो सकता इसलिये तिसको जगत्का कारणपणा नहिं होसके है इति ॥ २९ ॥

ननु मा भवतु प्रकृतेः स्वतंत्रतया जगत्कारणत्वं परंत्वयस्कांतमणिवद्ब्रह्मचैतन्याश्रयेण तु तस्या जगत्कारणत्वं स्यादेवेत्यत्राह

**अयस्कांतवदिति चेन्न करणत्वभावात्॥३०॥**

अयस्कांतमणिसन्निधानेन लोहक्रियावद्ब्रह्मचैतन्याश्रयेण प्रकृतेरपि जगत्कारणत्वं भविष्यतीति चेत् नैवं मंतव्यं कुतः करणत्वभावात् ब्रह्मचैतन्याश्रयेण जगन्निर्माणे तु तस्याः करणत्वमेव भवेत् ननु कर्तृत्वं नहि राजाश्रयेण कार्यं कुर्वतो मंत्रिणः क्वचित्स्वत्वं भवति नच पुरुषभुजबलेन प्रक्षिप्तो बाणो मृगहनने कर्तृत्वमुपयात्यतः करणत्वभावान्न प्रकृतेर्मुख्यं जगत्कारणत्वं संगच्छते ३०

ननु प्रकृतिको स्वतंत्ररूपसें जगत्का कारणपणा मत होवो परंतु लोहचुंबकमणिकी न्यांई परमात्माके चैतन्यके आश्रयसें तो प्रकृतिको जगत्का कारणपणा होजावेगा ऐसी शंका होनेसें समाधान कहते हैं (अयस्कांतवदितिचेन्न करणत्वभावात्) जैसे लोहचुंबकमणिके आश्रयसें लोहखंडमें क्रिया होवे है तैसे हि ब्रह्मचैतन्यके आश्रयसें प्रकृतिभी जगत्का कारण होजावेगी ऐसा मानना ठीक नहि है क्योंकि करण-

त्वाभावात् कहिये ब्रह्मचैतन्यके आश्रयसें जगत्का कारण होनेसें तो प्रकृतिको करणपणाहि होवेगा कर्तापणा नहि होवेगा क्योंकि जैसे राजाके आश्रयसें कार्य करनेसें मंत्री वा भृत्यको किसी कार्यमें अपणत्व नहि होवे है अर्थात् उसमें उसका मुख्य कर्तापणा नहि होवे है और जैसे पुरुषकी भुजाबलसें छोडे हूये बाणको मृगके मारणेमें मुख्य कर्तापणा नहि होवे है तैसेहि प्रकृतिकोभी करणपणा होनेसें जगत्का मुख्य कारणपणा नहि संभवे है इति ॥ ३० ॥

## नित्यसृष्टिप्रसंगात् ॥ ३१ ॥

ब्रह्मणः प्रकृतेश्चोभयोर्नित्यत्वाद्विभुत्वाच्च नित्य एव तयोः संबंधः। तेन प्रकृतेर्ब्रह्मचैतन्याश्रयस्य नित्यत्वात्सृष्टिरपि नित्यमेव भविष्यति न कदापि तस्याः स्तंभनं भविष्यति निरोधकाभावात् प्रकृतेर्ज्ञानशून्यत्वात् ब्रह्मणश्चोदासीनत्वान्न निरोधकत्वं संभवति ततश्च सृष्टेर्निरोधप्रलयाभिधायकानामनेकश्रुतिस्मृतिवाक्यानामनर्थकत्वं सेत्स्यतीत्यतो ब्रह्माश्रयेणापि न प्रकृतेर्जगत्कारणत्वं संभवतीति ॥३१॥

नित्यसृष्टिप्रसंगात्। नित्य सृष्टिप्रसंग होनेसेंभी ब्रह्मके चैतन्यके आश्रयसें प्रकृतिको जगत्का कारण-

पणा नहिं हो सके है क्योंकि ब्रह्म और प्रकृति दोनों नित्य और व्यापक होनेसें तिनका संबंधभी नित्यहि मानना पडेगा तो तिससें प्रकृतिको ब्रह्मचैतन्यका आश्रय नित्य होनेसें सृष्टिभी नित्यहि होवेगी कवीभी तिसका स्तंभन नहि होवेगा क्योंकि प्रकृतिको ज्ञानसें रहित होनेसें और ब्रह्मको उदासीन होनेसें कोई निरोधक नहि होवेगा तो फिर सृष्टिके निरोध और प्रलयके कथन करनेहारे जो अनेक श्रुतिस्मृतियोंके वचन हैं सो अप्रामाणिक और निरर्थक होवेंगे इसलिये ब्रह्मचैतन्यके आश्रयसेंभी प्रकृतिको जगत्का कारणपणा नहि होसकता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३१ ॥

इतश्च न प्रकृतेर्जगत्कारणत्वं

पृथक्त्वाभावाच्च ॥ ३२ ॥

पृथग्वस्तुनोर्हि किलाश्रयाश्रयिभावो भवति परमात्मनः पृथक्त्वाभावाच्च न प्रकृतेः पृथग्जगत्कारणत्वं नहि प्रकृतिः परमात्मनः पृथक् किंचिद्वस्त्वंतरं विद्यते येन तस्याः पृथक् कारणत्वं स्यात् किंतु परमात्मनः स्वाभाविकशक्तिरेव हि कार्यवशात् प्रकृतिर्माया चेत्युच्यते शक्तिश्च सर्वत्र शक्तिमतः स्वभाव एव भवति न ततः पृथग्भवति यथा वह्नेः-

दहनशक्तिर्जलस्य च क्लेदनशक्तिर्न तयोर्भिन्नास्ती-त्येवं ब्रह्मणोपि विज्ञेयं तस्मात्प्रकृत्याख्यस्वमाया-शक्तियुतः परमेश्वर एवास्य जगतो निर्माणकारण-मस्तीति निश्चेयं ( मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतदिति ) श्रुतिवचनात् ॥ २२ ॥

पृथक्त्वाभावाच्च । दो वस्तु भिन्न होनेसेंहि तिनका आश्रय आश्रयिपणा होवे है सो प्रकृतिको परमात्मासें भिन्न नहि होनेसेंभी एकलीको भिन्न जगत्का कारणपणा नहि होसके है क्योंकि प्रकृति कुंछ परमात्मासें भिन्न दूसरी वस्तु नहि है कि जिससे उसको जुदा जगत्का कारणपणा होवे किंतु प्रकृति और माया तो परमात्माकी स्वाभाविक शक्तिको-हि कार्यकेवशसें कहते हैं अर्थात् जगत्का कारण होनेसें सो प्रकृति कहिये है और जीवोंकरके दुर्विज्ञेय होनेसें माया कहिये है और सब जगा शक्ति शक्ति-मान्सें भिन्न नहि होती है अर्थात् शक्तिमान्का स्वभाव वा स्वरूपहि होती है जैसे अग्निकी दहनशक्ति और जलकी क्लेदनशक्ति अग्नि और जलसें भिन्न नहि है तैसेहि परमात्माकी शक्तिविषयमेंभी समझ लेना चहिये इसलिये प्रकृतिनामक अपनी मायाशक्तिकरके

युक्त परमेश्वरहि इस जगत्की उत्पत्तिका कारण है ऐसा निश्चय करना चहिये तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्‌मेंभी लिखाहै की ( प्रकृतिको माया जानना चहिये और मायावालेको परमेश्वर जानना चहिये सो मायावाला इस विश्वकी रचना करता है ) इति ॥३२॥

ननु त्रिगुणात्मकजडस्वभावायाः प्रकृतेर्ब्रह्मणोऽभिन्नत्वे तु जडचेतनात्मकोभयरूपत्वं परमेश्वरस्य भविष्यतीत्यत्राह

**नोभयरूपत्वं प्रतीतिमात्रत्वात् ॥ ३३ ॥**

परमेश्वरस्योभयरूपत्वं नैव संभवतीति ज्ञातव्यं कुतः प्रतीतिमात्रत्वात् परमात्मनः स्वाभाविकी शक्तिर्न वस्तुतो जडरूपास्ति सच्चिदानंदमयत्वात्परमेश्वरस्य तस्य शक्तिरपि तादृश्येव युक्ता नहि सांख्यमतवदत्र प्रकृतिः पुरुषाद्भिन्ना विलक्षणस्वभावा वांगीक्रियते चिन्मयस्य ब्रह्मणश्चिन्मय्येव शक्तिरस्ति न ततो भिन्ना विलक्षणा वा ( परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेत्यत्रेश्वरशक्तेर्ज्ञानमयत्वाभिधानात् तस्यास्त्रिगुणमयत्वं तु प्रतीतिमात्रमेव नतु वास्तविकं केवलमेकाकारतया जगतः सम्यक्तया व्यवस्था नैव स्यादतः स्वकल्पितं गुणत्रयं

पुरस्कृत्य परमेश्वरोऽस्य विश्वस्य निर्माणं करोति ततो जगद्रचनात्मककार्यवशात् तस्य शक्तेस्त्रिगुणमयत्वं प्रतीयते नतु तत्स्वाभाविकं (अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां। दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्ययेत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनान्यपि जगद्रचनाकालविषयाण्येव नतु तदनादिकालीनस्वभावविषयाणीति वेदितव्यं नैतावता परमेश्वरस्योभयरूपत्वं भवितुमर्हति नहि कार्यवशान्नानारूपाणि धारयतो नटस्य तद्रूपत्वं भवति नवा प्रतीयमानाभ्यां शृंगाभ्यां शशस्य शृंगित्वमुपजायते नवा प्रतीयमानेन रजतेन शुक्तिकाया रजतमयत्वं संभवतीत्येवमत्रापि द्रष्टव्यं तथाच महाभारते भगवद्वाक्यं (माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसीति ॥ २२ ॥

ननु त्रिगुणरूपजडप्रकृतिको ब्रह्मसे अभिन्न होनेसें तो ब्रह्मकाभी जडचेतनरूप दो प्रकारका मिला हूया स्वरूप होवेगा ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( नोभयरूपत्वं प्रतीतिमात्रत्वात् ) परमात्माका दोप्रकारका स्वरूप नहि है किंतु एक प्रकारकाहि है ऐसा जानना चहिये क्योंकि परमात्माकी स्वाभाविक शक्ति यथार्थसे जडरूप नहि है क्योंकि

परमात्माका स्वरूप सच्चिदानंदमय है तो उसकी निजशक्तिभी वैसीही होनी चहिये सांख्यमतके अनुसार यहां प्रकृति पुरुषसें भिन्न और विलक्षण स्वभाववाली अंगीकार नहि करी है चैतन्यमय परमेश्वरकी शक्तिभी चैतन्यमयीहि है तिससें भिन्न वा विलक्षणरूप नहि है (इस परमेश्वरकी स्वभाविक शक्ति विविध प्रकारकी ज्ञान बल और क्रियारूप है) इति। इस श्वेताश्वतर उपनिषत्के वाक्यमें परमात्माकी शक्ति ज्ञानस्वरूपहि कथन करी है और तिस शक्तिका जो त्रिगुणमयपणा है सो तो केवल प्रतीतिमात्र है स्वाभाविक नहि है केवल एकरूपसें जगत्की व्यवस्था ठीक नहि हो सकती है इसलिये अपने कल्पित तीनों गुणोंके द्वारा ईश्वर त्रिगुणमयी सृष्टिको निर्माण करता है सो जगत्की रचनारूप कार्यके वशसें ईश्वरकी शक्ति त्रिगुणरूप प्रतीत होती है स्वभावसें अनादिकालसें त्रिगुणरूप नहि है और (अजन्मा प्रकृति सत्त्व रज तम त्रिगुणरूप है। मेरी दैवी मायाशक्ति त्रिगुणमयी वडी दुस्तर है) इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके वचनभी सृष्टिकालविषयके हैं अनादि कालस्वभाव विषयके नहि हैं ऐसा जानना चहिये सो इतनेमात्रसें परमात्माका दो प्रकारका रूप नहि

होसकता है क्योंकि जैसे कार्यके वशसें नाना प्रकारके रूप धारण करनेसे नट उन रूपोंवाला नहि हो जाता है और शशेके सींग प्रतीत होनेसें वो सिंगोंवाला नहि हो जाता है और सीपीमें रजत प्रतीत होनेसें वो रजतमय नहि होजाती है तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये तथा महाभारतमें लिखा है कि जिस कालमें विष्णुभगवान्ने नारदमुनिको श्वेतद्वीपमें विश्वरूप दिखलाया तो पीछे नारदको कहा कि हे नारद यह जो तुं मेरे अनेक प्रकारके रूप देखता है सो यह केवल मैंने मेरी मायाका विस्तार किया है परंतु तुं मेरेको ऐसा सर्वभूतोंके गुणोंवाला नहि जानना अर्थात् तुं मेरेको निर्गुण निरंजन जानना इति ॥ ३३ ॥

इतश्च नेश्वरस्योभयरूपत्वं

**निर्गुणत्वाभिधानाच्च ॥ ३४ ॥**

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च निर्गुणं गुणभोक्तृ चेत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनेषु परमेश्वरस्य निर्गुणमेव स्वरूपं निरूपितं तच्छक्तेः स्वाभाविकगुणमयत्वे तु न तस्य निर्गुणत्वं स्यादतो नेश्वरस्योभयरूपत्वमस्तीति निश्चेयम् ॥ ३४ ॥

इससेंभी ईश्वरका स्वरूप दोप्रकारका नहि है (निर्गुणत्वाभिधानाच्च) श्वेताश्वतर उपनिषत्में लिखा है कि (परमेश्वर सर्वका साक्षी चेतनशक्ति देनेवाला और निर्गुण है। तथा भगवद्गीतामेंभी लिखाहै कि (सो ब्रह्म निर्गुण है और सर्व गुणोंका भोक्ताभी है)। इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके वचनोंमें परमेश्वरका स्वरूप निर्गुणहि निरूपण किया है और जो ईश्वरकी शक्ति स्वभावसें त्रिगुणमयी होवे तो फिर ईश्वरको निर्गुणपणा नहि होसकेगा इसलिये ईश्वरका स्वरूप दो प्रकारका नहि है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ३४ ॥

ननु यादृशं कार्यं भवति तादृशमेव तस्य कारणं भवति ततो जगतस्त्रिगुणमयत्वेनेश्वरस्यापि सगुणत्वं भवितुमर्हतीत्यत्राह—

कार्येण कारणगुणानुमानमिति
चेन्नानियमात् ॥ ३५ ॥

कार्यगुणदर्शनेन कारणगुणानुमानं नैव समंजसं कुतः अनियमात् कारणगुणास्तु कार्येऽनुगच्छंति परंतु कार्यगुणाः कारणेपि भवंतीति नियमो नास्ति यथाऽऽकाशस्य शब्दो गुणो वाय्वग्निजलादि-

ष्वाकाशकार्येष्वनुगतो विद्यते न तथा वाय्वग्निज-लादीनां स्पर्शोष्ण्यशैत्यादयो गुणा आकाशे वि-द्यंते नहि शब्दं विनेतरगुणवत्त्वमाकाशस्य क्वचि-दंगीक्रियते तद्वत्पृथिव्याः काठिन्यं जले नास्ति जलस्य शैत्यमग्नौ नास्ति वह्नेरुष्णत्वं वायौ नास्ति एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यं ततो न जगतस्त्रिगुणमयत्वे-नेश्वरस्य सगुणत्वं संभवति नो चेत् क्वचिज्जगत्प-दार्थगतदुर्गंधेनेश्वरस्यापि दुर्गंधित्वं क्वचिच्च लो-कानां दुःखित्वेनेश्वरस्यापि दुःखित्वमंगीकृतं भवि-ष्यति नचैतद्युक्तं नहि घटगतरक्तपीतादिवर्णैः कुलालस्य पृथिव्या वा रक्तपीतादिवर्णत्वकल्पना युक्ता भवति नच पुत्रस्यांधत्वे पितुरप्यंधत्वकल्पना समीचीना भवति तद्वच्चिज्जडात्मकं जगदवलोक्य तस्य मूलकारणमप्युभयात्मकं भविष्यतीति नैव मंतव्यं तस्मादीश्वरस्य निर्गुणत्वमेवावसेयम् ॥२५॥

ननु जैसा कार्य होता है उसीप्रकारकाहि तिसका कारण होता है सो यह जगत् त्रिगुणरूप प्रसिद्ध है तो इसके कारण ईश्वरकोभी अवश्य सगुणपणा होना चहिये ऐसी शंका होनेसें समाधान निरूपण करते हैं (कार्येण कारणगुणानुमानमिति चेन्नानिय-मात्) कार्यके गुण देखकर कारणके गुणोंका अनु-

मान करना ठीक नहि है क्योंकि अनियमात् कहिये कारणके गुण तो कार्यमें अनुगत होते हैं परंतु कार्यके गुण कारणमें होनेका नियम नहि है जैसे कि आकाशका शब्दगुण तिसके कार्य वायु अग्नि जल पृथ्वीमें अनुगत होता है परंतु वायु अग्नि जल पृथिवीके स्पर्श उष्णता शीतलता कठिनता आदि गुण आकाशमें अनुगत नहि हैं क्योंकि एक शब्दके विना दूसरा कोई गुण आकाशमें किसी जगापर नहि माना-जाता हैं तैसेहि पृथिवीका कठिनपणा जलमें नहि हैं जलका शीतपणा अग्निमें नहि है अग्निका उष्णपणा वायुमें नहि है इसीप्रकार और पदार्थोंमेंभी समझ-लेना इसलिये जगत्के त्रिगुणमय होनेसें परमात्माका स्वरूप सगुण नहि होसकता ऐसा जानना चहिये और जो कदाचित् जगत्के गुणोंसें ईश्वरकोभी तिन गुणोंवाला मानेंगे तो फिर कहीं जगत्के पदार्थोंमें दुर्गंध होनेसें ईश्वरकोभी दुर्गंधवाला मानना पडेगा और जगत्में कहीं लोकोंके दुःखी होनेसें ईश्वरमेंभी दुःख मानना पडेगा सो बात ठीक नहि है क्योंकि जैसे घटरूप कार्यमें रहेहूये लाल पीले आदि रंगोंसें तिसके कारण कुंभार वा पृथिवीमें लाल पीले आदि-रंगोंकी कल्पना करनी ठीक नहि होती है और जैसे

कहीं पुत्रके अंधे होनेसें पिताकाभी अंधापणा कल्पना करना ठीक नहि होता है तैसेहि जगत्को चेतन और जडरूप देखकर तिसके मूलकारण ब्रह्मकोभी दोनों रूप नहि मानना चहिये इसलिये ईश्वरको निर्गुणहि जानना चहिये इति ॥ ३५ ॥

माभवत्त्वेवमीश्वरस्य सगुणत्वं परंतु ( यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्ब्रह्मेति ) श्रुतिवचनात् यदा महाप्रलयांते समस्तस्य जगतो ब्रह्मणि विलयो भवति तदा त्रिगुणमयजगदंतःप्रवेशेनेश्वरस्यापि सगुणत्वं भविष्यत्येवेत्यत्राह—

**संकल्पजत्वात्तु न वस्तुशेषः प्रलयांते ॥ ३६ ॥**

तुशब्देन शंकां व्यावर्तयति यद्यप्यवांतरप्रलयेषु बीजरूपेणाशेषपदार्थानामवस्थितिर्भवति परंतु महाप्रलयांते सर्वस्य जगतो ब्रह्मणि विलयेपि तत्र वस्तुशेषो नैव भवतीति ज्ञातव्यं नहि तदा किंचिद्वस्त्ववशिष्यते कुतः संकल्पजत्वात् सर्वस्यापि जगतः परमात्मनः संकल्पमात्रोत्पन्नत्वात् यदि किंचिद्वस्त्वंतरतो जगदुत्पत्तिः स्यात् तदा तु प्रलयेपि वस्तुशेषः स्यात् तदभावे तु कुतो वस्तुशेषो भवेत् वस्त्वभावे च निराश्रयाणां तद्गुणानां कथमव-

स्थितिः संभवेत् प्रसिद्धं चैतद्योगिनां सिद्धानामवताराणां संकल्परचनास्वपि पुराणेतिहासेषु तद्यथा विष्णुसंकल्पजातस्य नरसिंहशरीरस्यांतर्धाने सति न किंचिद्वस्तु शिष्टमभूत् नच रासलीलायामपि कृष्णसंकल्परचितानामनेकशरीराणां रासांते वस्तुशेषोऽभूत् नच द्रौपद्या वस्त्राणां सभाविसर्जनांते वस्तुशेषोऽभवत् नचापि व्यासमुनिसंकल्परचितानां गांधारीपुत्राणां निशांते वस्तुशेषोऽभूत् एवं स्वप्नसंकल्परचनायामपि द्रष्टव्यं ततो महाप्रलयांते जगद्विलयेनापि परमात्मनः सगुणत्वं नैव भवतीत्यवगंतव्यम् ॥ ३६ ॥

ननु इसप्रकार परमात्माको सगुणपणा भलेहि मत होवो परंतु ( जिससें यह सर्व भूतप्राणी उत्पन्न होते हैं और जिसमें जीते रहते हैं और फिर अंतमें जिसमें सबी लीन होजाते हैं सो ब्रह्म है ) इस श्रुतिवचनके अनुसार महाप्रलयके अंतमें जब संपूर्ण त्रिगुणमय जगत् ब्रह्ममें लीन होताहै तो जिसके ब्रह्ममें प्रवेश होनेसें तिसके संबंधसें तो ब्रह्मको सगुणपणा अवश्य होवेहि गा ऐसी शंका होनेसें समाधान निरूपण करते हैं ( संकल्पजत्वात्तु न वस्तुशेषः प्रलयांते) यद्यपि वीचवीचकी प्रलयमें

तो बीजरूपसें सर्व पदार्थोंकी स्थिति रहती है परंतु महाप्रलयके अंतमें संपूर्ण जगत्के परमात्मामें लीन होनेपरभी प्रलयमें ब्रह्ममें प्रवेश होनेलायक कुछ वस्तु बाकी नहि रहती अर्थात् संपूर्ण जगत् ईश्वरके संकल्पमें लोप होजाता है केवल एक अद्वितीय परमात्मा रहजाता है क्योंकि यह संपूर्ण जगत् परमात्माके संकल्पमात्रसें उत्पन्न होवे है जो किसी दूसरी वस्तुको लेकर रचा होवे तो कुछ वस्तु बाकीभी रहजावे सो दूसरी वस्तुसें नहि रचा होनेसें कैसे कुछ बाकी बचे और जब कुछ वस्तु नहि बचती तो फिर उन वस्तुवोंके गुण निराधार कहां रह सकतेहैं अर्थात् कहींभी नहि रह सकते यह वार्ता सिद्धयोगियों वा अवतारोंकी संकल्परचनामेंभी पुराणोंके इतिहासोंमें प्रसिद्ध है जैसे कि विष्णुके संकल्पसे बनेहूये नरसिंहशरीरके अंतर्धान होनेके पीछे कुछ शरीरका भाग बाकी नही रहा था और रासलीलामें कृष्णजीने जो बहुतसे शरीर बनालिये थे तो राससमाप्ति होनेके पीछे उन शरीरोंका कुछ निशान बाकी नहि रहा था और द्रोपदीके वस्त्र जो सभामें बढगयेथे तो सभाके उठने पीछे उनमेसें कुछ बाकी नहि रहा था तथा महर्षि व्यासजीने जब रातको गंगातीरपर गांधारीको मरेहुये पुत्रोंको दिख-

लाया था तो फिर रात वीतनेपर उनमेंसें कुछ चिन्ह बाकी नहि रहाथा इसीप्रकार स्वप्नमें संकल्पसें बने-हुये धन माल मकान जागनेपर कुछ बाकी नहि रहते इसलिये महाप्रलयके अंतमें जगत्के परमात्मामें लीन होनेपरभी परमात्मामें सगुणपणा नहि होस-कता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३६ ॥

अतएव केवलाद्वैतत्वम् ॥ ३७ ॥

अतएव निर्गुणत्वादेव परमेश्वरस्य केवलाद्वैत-त्वं विज्ञेयं ब्रह्मणः प्रकृतेः स्वरूपतः पृथक्त्वे तु तस्य द्वैतत्वं स्यात् स्वाभाविकत्रिगुणमयत्वेन प्रकृतेस्तदभिन्नत्वे मिश्रिताद्वैतत्वं भवति अनिर्वच-नीयत्वेपि प्रकृतेर्भावरूपत्वांगीकारात् द्वैतत्वमेव जायते छत्रिदंड्यादिवच्चिदचिद्विशिष्टाद्वैतत्वेपि वि-चार्यमाणेद्वैतत्वमेव सिद्ध्यति ततः ( एकमेवाद्वि-तीयं केवलो निर्गुणश्चेत्यादिश्रुतिविरोधो भवति तस्मात् शक्तिशक्तिमतोरभेदान्निर्गुणत्वाच्च ब्रह्मणः केवलाद्वैतत्वमेवावसेयम् ॥ ३७ ॥

अतएव केवलाद्वैतत्वम् । अतएव कहिये उक्त रीतिसें परमात्माको निर्गुण होनेसें तिसका केवल अद्वैतपणा जानना चहिये अर्थात् सृष्टिके पहले केवल

एक अद्वितीय शुद्ध निर्गुण ब्रह्म था क्योंकि प्रकृतिको ब्रह्मसें स्वरूपसें भिन्न माननेमें तो दो पदार्थ होनेसें द्वैतपणेकी प्राप्ति होती है और प्रकृतिको स्वभावसें त्रिगुणरूप मानकर ब्रह्मसें अभिन्न माननेसें मिश्रिताद्वैतपणा होवे है अर्थात् त्रिगुणमय प्रकृतिसें मिला हूया ब्रह्म है ऐसा मानना पडेगा तथा वेदांतमतके अनुसार प्रकृतिको अनिर्वचनीय माननेसेंभी भावरूप वस्तु होनेसें द्वैतपणाहि सिद्ध होता है तथा छत्रसहित वा दंडवाले पुरुषकी न्यांई प्रकृतिके सहित अद्वैतब्रह्ममाननेमेंभी विचारकरके देखनेसें द्वैतपणाहि सिद्ध होता है इसलिये द्वैत मिश्रिताद्वैत और विशिष्टाद्वैत इन तीनों पक्षोंमें 'सृष्टिके पहले एकहि अद्वितीय ब्रह्म था सो केवल और निर्गुण है' इत्यादि श्रुतियोंके वचनोंसे विरोध आता है इसलिये पूर्वोक्तरीतिसें शक्तिको शक्तिमानसें अभिन्न होनेसें और ब्रह्मको निर्गुण होनेसें केवल अद्वैतपणाहि निश्चय करना चहिये इति ॥३७॥

**अनेन भेदवादा व्याख्याताः ॥३८॥**

अनेन ब्रह्मणः केवलाद्वैतत्वप्रसाधनेन सर्वे भेदवादा निर्णीता वेदितव्याः। तत्र केचित् प्रकृतिः पुरुषश्चेति वस्तुद्वयमनादि मन्यंते केचित् प्रकृति-

ब्रह्म जीवश्चैतत्त्रयमनाद्युदाहरंति केचित्तु ब्रह्मेश्वरो माया जीवश्चेति चतुष्टयमनादि प्रचक्षते केचिच्च ब्रह्मेश्वरो माया जीवोऽविद्या जगच्चैतद्वस्तुषट्कमनादित्वेन प्रतिपादयंति सर्वेप्येते भेदवादाः ( सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं, ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव, एकं सद्विप्रा बहुधा वदंतीत्याद्यद्वैतश्रुतिविरोधान्मुमुक्षुभिर्नैवादरणीया नह्यत्र वेदवाक्येष्वेकं ब्रह्म विहायान्यस्य कस्यचिदनादित्वं श्रूयते किंत्वेकस्य ब्रह्मण एवानादित्वं प्रतिपादितमस्तीत्यवगंतव्यम् ॥ ३८ ॥

अनेन भेदवादा व्याख्याताः । इसप्रकार उक्तरीतिसें ब्रह्मके केवल अद्वैतपणेके सिद्ध करनेसें दूसरे सर्व भेदवादियोंके मतोंका निर्णय किया जानलेना अर्थात् कोई तो प्रकृति और पुरुष इन दोनों वस्तुवोंको अनादि मानते हैं और कोई प्रकृति ब्रह्म और जीव इन तीन पदार्थोंको अनादि कहते हैं तथा कोई ब्रह्म ईश्वर माया और जीव यह चार वस्तु अनादि कथन करते हैं और कोई ब्रह्म ईश्वर माया जीव अविद्या और जगत् यह षट् पदार्थ अनादि प्रतिपादन करते हैं सो इन सबहि भेदवादोंका ( सृष्टिसें पहले एक अद्वितीयहि ब्रह्म था सृष्टिके आदि कालसें

एकला ब्रह्महि था एक ब्रह्मकोहि ब्राह्मण लोक बहुत रूपसें वर्णन करते हैं ) इत्यादि अद्वैतके कथन करनेहारी श्रुतियोंके विरोध होनेसें मुमुक्षुलोकोंको आदर नहि करना चहिये अर्थात् ऊपर कहे भेदवाद नहि मानने चहिये क्योंकि उक्तश्रुतिवचनोंमें एक ब्रह्मके विना और किसी दूसरेका अनादिपणा नहि कथन किया है किंतु एक ब्रह्मकाहि अनादिपणा कथन किया है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३८ ॥

भवतु नाम परमेश्वरस्य जगत्कर्तृत्वं निर्गुणत्वमद्वैतत्वं च परंतु प्रत्यक्षत्वाभावात्तस्य कथं निश्चयः स्यादित्यत्राह—

**कारणादर्शने कार्यात्तन्निश्चयः ॥ ३९ ॥**

जगत्कारणस्य परमेश्वरस्याप्रत्यक्षत्वे तु कार्यात् जगन्निर्माणात्तस्य निश्चयः करणीयः । नहि कारणमंतरा क्वचिदपि कार्यं भवितुमर्हति यद्यत्कार्यमुत्पद्यते तत्तत्तस्य कारणादेव जायमानं दृश्यते यथा कुलालाद्घटस्तंतुवायात्पट इत्यादि सर्वत्रानुसंधेयम् ॥ ३९ ॥

उक्तरीतिसें परमेश्वरकोहि जगत्का कर्तापणा निर्गुणपणा और अद्वैतपणा होवो परंतु प्रत्यक्ष देखेविना तिसका कैसे निश्चय हो सके ऐसी शंका होनेसें समा-

धान कथन करते हैं ( कारणादर्शने कार्यात्तन्नि-
श्चयः ) जगत्के कारण परमेश्वरके प्रत्यक्ष नहि होनेपर
जगत्रूप कार्यसें तिसका निश्चय करलेना चहिये क्योंकि
कारणके विना कोईभी कार्य कहीं नहि हो सकता है जो
जो कार्य जगत्में उत्पन्न होता है सो सो तिसतिसके
कारणसें उत्पन्न होता देखनेमें आवे है जैसे कुंभारसें
घट और जुलाहेसें वस्त्र बनता है इसीप्रकार अन्य-
त्रभी सब जगा समझ लेना चहिये इति ॥ ३९ ॥

कार्याददृष्टकारणस्यानुमानमात्रेण कथं दृढनि-
श्चयः स्यादित्यत्र दृष्टांतेन निगमयति—

**स्वपितुरिव शरीरात् ॥ ४० ॥**

यथा स्वशरीरात्मककार्यात्तत्कारणस्य स्वपितु-
रनुमानेन सर्वस्य निर्विवादं दृढनिश्चयो जायते
मम पितास्ति नास्ति वासीन्न वासीदिति कदाचित्क-
स्यापि भ्रांतिर्न भवति तद्वदत्रापि द्रष्टव्यम् ॥४०॥

ननु कार्यसें अदृष्ट कारणका केवल अनुमानमा-
त्रसें कैसे दृढ निश्चय हो सकता है ऐसी शंका होनेसें
दृष्टान्तसें इस बातको पुष्ट करते हैं ( स्वपितुरिव
शरीरात् ) जैसे अपने शरीररूप कार्यसें तिसके कार-
णरूप अपने पिताका अनुमानसें सब लोकोंको दृढ
निश्चय होवे है मेरा पिता है या नहि है वो था कि

नहि था इस प्रकारका कभी किसीकोभी संशय नहि होता है तैसेहि यहांभी जगत्‌रूप कार्यसें परमेश्वरका दृढ निश्चय करना चहिये इति ॥ ४० ॥

ननु (ऊर्ध्वमूलोऽवाक्‌शाख एषोश्वत्थः सनातनः। न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ) इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनेषु जगतोऽनादित्वमुक्तं तत्कथं तस्येश्वरकार्यत्वमुच्यते तत्राह—

**अनादित्वमिति चेन्नासंभवात् ॥ ४१ ॥**

अस्य दृश्यमानस्य प्रपंचस्यानादित्वं न भवितुमर्हति कुतः असंभवात् सर्वत्र प्रत्यक्षतया जायमानस्यास्य जगतः कथमनादित्वं भवेत् जायमानत्वं चानादित्वं नैकत्र संयुज्यते तस्माद्दीर्घप्रवाहरूपेणैव जगतोऽनादित्वमभिधीयते नतु स्वरूपेण श्रुतिस्मृतिवचनानामपि दीर्घप्रवाहरूपेणैव जगतोऽनादित्वप्रतिपादने प्रयोजनमस्तीत्यवसेयम् ॥ ४१ ॥

कठ उपनिषत्‌में लिखा है कि ( इस जगत्‌रूप वृक्षका ऊपरको मूल है और नीचेको शाखा हैं और यह वृक्ष सनातन है इति ) तथा भगवद्गीतामेंभी लिखाहै कि ( इस जगत्‌का कुछ निश्चितरूप नहि है और इसका आदि अंत तथा स्थितिभी नहि मिलती है ) इत्यादि

श्रुतिस्मृतियोंमें जगत्को अनादि लिखा है तो फिर तुम इसको ईश्वरका रचाहूया कार्य किसकारणसें कहते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (अनादित्वमिति चेन्नासंभवात्) इस दृश्यमान सर्व प्रपंचको अनादिपणा नहि होसकता क्योंकि असंभवात् कहिये सर्वत्र प्रत्यक्षरूपसें उत्पन्न होते हूये जगत्को अनादिपणा कैसे होसके है क्योंकि उत्पन्न होना और अनादिपणा यह दोनों बातें एकजगा नहि होसकती अर्थात् जो अनादि होगा सो उत्पन्न नहि होगा और जो उत्पन्न होगा सो अनादि नहि होगा इसलिये जगत्को दीर्घकालके प्रवाहरूपसेंहि अनादि कथन किया है स्वरूपसें नहि अर्थात् इसका प्रवाह दीर्घकालसें चला आता है स्वरूपसें यह अनादि नहि है तथा उक्त श्रुतिस्मृतिवचनोंकाभी जगत्को दीर्घप्रवाहरूपसेंहि अनादि कहनेका प्रयोजन है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ४१ ॥

आरंभश्रुतेश्च ॥ ४२ ॥

आरंभश्रवणादपि न जगतोऽनादित्वं ( सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय, स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति स इमांल्लोकानसृजत, तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः संभूतः

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहं। संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ) इत्यादि श्रुतिस्मृतिषु सृष्ट्यादौ प्रथमतः परमेश्वरेण जगन्निर्माणारंभणं श्रूयते यद्यपि प्रथमतः कदा जगदारंभणं जातमिति वक्तुं न शक्यते तथापि सर्ववस्तुनिर्माणदर्शनात्तस्यावश्यं निश्चयो जायते ततो न जगतोऽनादित्वं संभवतीति ॥ ४२ ॥

आरंभश्रुतेश्च। सृष्टिका प्रथमसें आरंभ होनेसैंभी जगत्को अनादिपणा नहि हो सकता जैसे कि छांदोग्य उपनिषत्में लिखाहै कि ( हे सोम्य सृष्टिके आदिमें पहले एक अद्वितीय सत् रूप परमात्माहि था तिसने विचार किया कि मैं बहुत रूपसें उत्पन्न होवूं) तथा ऐतरेयउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( तिस परमात्माने इच्छा की कि मैं जगत्को रचुं सो इस जगत्को रचता भया) तथा तैत्तिरीय उपनिषत्में लिखा है कि ( तिस परमात्मासें पहले आकाश उत्पन्न होता भया इति ) तथा भगवद्गीतामेंभी लिखा है कि ( हे अर्जुन मेरी योनिरूप प्रकृतिमें मैं गर्भधारण करता हूं तो पीछे सर्वभूतप्राणियोंकी उत्पत्ति होवेहै। इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंमें सृष्टिके आदिकालमें प्रथम परमेश्वरने जगत्का आरंभ किया कथन किया है यद्यपि

पहलेसैं कबसैं इस जगत्का आरंभ हूया यह वार्ता कहनेमैं नहि आसकती तोभी सर्व पदार्थोंका निर्माण होता देखनेसैं जगत्के आरंभ होनेका अवश्य निश्चय होवे है इसलिये जगत्को अनादिपणा नहि होसकता ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४२ ॥

नन्वस्य जगतः प्रथमतः कदा परमेश्वरेणारंभः कृत इति वक्तुमशक्यं चेत्तदा तस्यानादित्वमेव कथं नाभ्युपेयते तत्राह—

**कालज्ञानाभावान्नारंभाभावोऽनियमात् ४३**

अस्य जगतः प्रथमतः कदा प्रारंभो जात इति कालज्ञानाभावेप्यारंभाभावो नैव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः अनियमात् नायं नियमोस्ति यस्योत्पत्तिकालज्ञानं न भवेत् तन्नोत्पद्यते नहि पौत्रस्य पितामहजन्मकालज्ञानाभावे पितामहस्य जन्माभावो भवितुमर्हति न च बीजारोपणकालज्ञानाभावे वृक्षस्यांकुराभावो भवितुमर्हतीत्येवमन्यत्रापि सर्वत्र द्रष्टव्यं ततो नारंभकालज्ञानाभावाज्जगतोऽनादित्वं संभवतीति ॥ ४३ ॥

ननु जब इस जगत्का प्रथमसें कबसें ईश्वरने आरंभ किया इस वार्ताका किसी जीवको ज्ञान नहि हो

सकता तो फिर इसको अनादि हि क्यों नहि मानलेते ऐसी शंका होनेसें समाधाननिरूपण करते हैं (कालज्ञानाभावान्नारंभाभावोऽनियमात्) इस जगत्का पहले किस कालमें बनानेका आरंभ हूया इस वार्तोके ज्ञानके नहि होनेसेंभी तिसके आरंभका अभाव नहि हो सकता क्योंकि ऐसा नियम नहि है कि जिस वस्तुके उत्पत्तिकालका ज्ञान नहि होवे उसकी उत्पत्तिहि नहि होती क्योंकि जैसे पितामहके जन्मकालका पौत्रको ज्ञान नहि होनेसें पितामहके जन्मका निषेध नहि हो सकता तथा पुराणे वृक्षके बीजारोपणकालके ज्ञान नहि होनेसें तिसके उगनेका अभाव नहि हो सकता तैसे हि औरभी सब जगामें समझ लेना चहिये इसलिये आरंभकालके ज्ञान नहि होनेपरभी जगत्को अनादिपणा नहि हो सकता ऐसा जानना चहिये इति॥४३॥

ननु नेदं जगत्कदाचिदप्यनीदृशं भवति अपि तु पुनः पुनर्नित्यमेव सृष्टेर्निर्माणं जायते सृष्टिरचनाया ब्रह्मणः स्वभावभूतत्वात् जगतः सादित्वे तु ब्रह्मणोपि सादित्वं भविष्यतीत्यत्राह—

**नित्यं सृष्टिरिति चेन्नाभावश्रवणात् ॥ ४४ ॥**

नित्यमेव ब्रह्मणि जगद्रचनासद्भावाज्जगतः सादित्वं न संभवतीति चेन्नैवं शंकनीयं कुतः अभाव-

श्रवणात् श्रूयते हि श्रुतिस्मृतिषु सृष्टितः पूर्वं जगतोऽस्तित्वाभावः। तथा हि वेदवचनं ( नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्, तदातमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्नचासच्छिव एव केवलः) मनुस्मृतावपि 'आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वत' इति। ब्रह्मणः सृष्टिकर्तृत्वेपि न तस्य सृष्टिरचनया सह नित्यं संबंधो वर्तते जगद्रचनायास्तदिच्छाधीनत्वात् न हि कुलालः स्वर्णकारो वा जन्मत एव नित्यमेव घटं भूषणं वा करोति किंतु कार्यवशात्कदाचित्करोति न करोति चेत्येवमत्रापि द्रष्टव्यमतः सर्वदा ब्रह्मणि सृष्टिरचनाऽभावान्न जगतोऽनादित्वं संभवतीति वेदितव्यम् ॥ ४४ ॥

ननु यह जगत् कबी किसी कालमेंभी बंद नहि होता है किंतु इसकी सर्वदाकाल वारंवार रचना होतीहि रहती है क्योंकि जगत्की रचना करणा ब्रह्मका स्वभावहि है सो जगत्को सादि होनेसें तो फिर ब्रह्मकोभी सादिपणा होवेगा ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं ( नित्यसृष्टिरिति चेन्नाभावश्रवणात् ) ब्रह्ममें निरंतर जगत्की रचना होनेसें जगत्को सादिपणा नहि हो सकता ऐसी शंका नहि

करनी चहिये क्योंकि श्रवणात् कहिये श्रुतिस्मृति-
योंमें सृष्टिसे पहले जगत्का अभाव कथन किया है
जैसे कि ऋग्वेदमें लिखा है कि ( सृष्टिसें पहले
सूक्ष्म और स्थूल कोई पदार्थ नहि था अंतरिक्ष-
लोकभी नहि था तथा आकाशभी नहि तथा और
उससें परेभी कुछ नहि था इति । तथा श्वेताश्वतर
उपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( सृष्टिसें पहले के-
वल अंधेरा था दिन और रात्री नहि थे तथा कोई
स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थभी नहि था केवल एक पर-
मात्मा हि था इति। तथा मनुस्मृतिमेंभी लिखा है कि
( सृष्टिसे पहले यह सब अंधेरा था अविज्ञात लक्षण-
वाला और तर्कनाके अयोग्य और जाननेके अयोग्य
सर्व तरफसें सोयेहूयेकी न्यांई शून्याकार था इति ।
ब्रह्मको सृष्टिका कर्ता होनेपरभी जगत्‌की रचनाके
साथ उसका नित्यसंबंध नहि है क्योंकि जगत्‌की रचना
उसकी इच्छाके अधीन है जैसे कुंभार वा स्वर्णकार
जन्मसेंहि नित्य घडे और भूषण नहि बनाते हैं किंतु
कार्यके वशसें कबी बनाते हैं और कबी नहिभी ब-
नाते हैं तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये। सो ब्रह्ममें
नित्य सृष्टिरचना नहि होनेसें जगत्‌को अनादिपणा
नहि हो सकता ऐसा जानना चाहिये इति ॥ ४५ ॥

ननु सदेवसोम्येदमग्र आसीदिति श्रुतिवचनात्सृष्टितः पूर्वमपि जगतः सद्भावः प्रतीयते तत्कथमुच्यते जगतोऽनादित्वं न संभवतीत्यत्राह—

**सदासीदिति चेन्नैकत्वाभिधानात् ॥ ४५ ॥**

इदं जगत्सृष्टितः पूर्वं स्वरूपेणासीदिति न मंतव्यं किंतु कारणरूपेणैवासीदिति ज्ञातव्यं केवलं ब्रह्मैवासीदित्यर्थः कुतः एकत्वाभिधानात् तत्रैवैकमेवाद्वितीयमित्युत्तरपदे केवलमेकस्यैव ब्रह्मणोऽस्तित्वं प्रतिपादितं तदा जगतः पृथक्त्वे तु द्वैतापत्तिः स्यात् 'तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्य' इति न्यायेन कार्यकारणयोरभेदाभिप्रायेणेदमासीदित्युक्तं नतु जगतः सद्भावाभिप्रायेणेति विज्ञेयं कार्यकारणयोरभेदेपि कारणावस्थायां कार्यस्य स्वरूपेण सद्भावो नैव भवति नहि घटः स्वनिर्माणात्पूर्वं पृथिव्यां घटरूपेण भवति किंतु पृथिव्येव भवति केवलं क्वचिद्भविष्यद्वृत्त्या घट आसीदिति व्यवहारो जायते नैतावता घटस्य निजरूपेण तत्रास्तित्वं सिध्यति । वृक्षवदेकत्वग्रहणे तु ब्रह्मणो निरवयवत्वनिर्गुणत्वाभावप्रसंगः स्यादतो न जगतोऽनादित्वमस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥ ४५ ॥

ननु ( यह जगत् पहले सत् रूप था ) इस श्रुति-वचनके अनुसार सृष्टिसें पहलेभी जगत्का होना प्रतीत होवे है तो फिर तुम कैसे कहते हो कि जगत्का अनादिपणा नहि हो सकता ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं ( सदासीदिति चेन्नैकत्वाभिधानात् ) यह जगत् सृष्टिसें पहले अपणे स्वरूपसें विद्यमान था ऐसा नहि मानना चहिये किंतु कारणरूप अर्थात् ब्रह्मरूपहि था क्योंकि एकत्वाभिधानात् कहिये उसी श्रुतिके अगले पदमें ( एक अद्वितीय ब्रह्म था ) इस वचनमें केवल एक अद्वितीय ब्रह्मका हि अस्तित्व कथन किया है और सृष्टिसें पहले ब्रह्मसें भिन्न जगत् विद्यमान होनेसें तो द्वैतभावकी प्राप्ति होवे है सो (कार्य और कारण दोनों एकरूप होते हैं ) इस व्याससूत्रके अनुसार कार्यकारणके अभेदके अभिप्रायसें यह जगत् था ऐसा कथन किया है जगत्के सद्भावके अभिप्रायसें नहि कहा है। सो कार्यकारणका अभेद होनेपरभी कारणदशामें कार्यका निजरूपसें सद्भाव नहि होता है क्योंकि घटके निर्माणसें पहले घट अपणे स्वरूपसें पृथिवीमें नहि रहता है किंतु केवल पृथिवीहि होती है केवल किसी जगा भविष्यत्पणेके अभिप्रायसें घट था ऐसा व्यव-

हार होता है सो इतनेमात्रसे तिस घटका अपने निजरूपसें पृथिवीमें होना सिद्ध नहि हो सकता तैसे-हि जगत्विषयमेंभी समझलेना और जो यहां एक शब्दका अर्थ वृक्षकी न्यांई ग्रहण करें अर्थात् जैसे डाल पत्ते फूल फलसहित वृक्ष एक कहा जावे है तैसे-हि त्रिगुणमय सर्व जगत्सहित एक ब्रह्म था तो फिर ब्रह्मका निरवयवपणा और निर्गुणपणा नहि हो सकता इस लिये जगत् अनादि नहि हो सकता ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४५ ॥

ननु ( तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपा-भ्यामेव व्याक्रियते, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्व-मकल्पयत् । इत्यादिवेदवचनानुसारेण पूर्वं सूक्ष्म-रूपेण विद्यमानस्यैव जगतः पश्चात् परमेश्वरः किलाविर्भावमात्रमेव करोति नारंभं तत्राह—

गौणत्वापत्तेर्नाविर्भावमात्रकर्तृत्वम् ॥ ४६ ॥

पूर्वविद्यमानस्य जगतः केवलमाविर्भावमात्र-मेवेश्वरः करोतीति नैवं मंतव्यं कुतः गौणत्वापत्तेः सूक्ष्मरूपेण विद्यमानस्य प्रपंचस्याविर्भावमात्रकरणे ह्यीश्वरस्य गौणत्वमेवं स्यात् नतु मुख्यं कर्तृत्वं तथासति च पूर्वोदाहृतानि जगदारंभवाचकानि

श्रुतिस्मृतिवाक्यानि निरर्थकान्येव भवेयुः। ततः पुनरीश्वरस्येश्वरत्वमप्यपगच्छेत् जगत्कर्तृत्वाभावात् तस्मान्नेश्वरस्य जगदाविर्भावमात्रकरणं समंजसम् ॥ ४६ ॥

ननु बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखाहै कि (पहले यह जगत् सूक्ष्मरूप था सो पीछे नाम और रूपसे प्रगट कियागया इति। तथा यजुर्वेदमें लिखा है कि (सूर्य और चंद्रमा जैसे पहले थे उसी प्रकारके ईश्वरने फिर रचे इति। इत्यादि वेदके वचनोंके अनुसार पहले सूक्ष्मरूपसें विद्यमान जगत्का परमेश्वर पीछे आविर्भावमात्र करता है प्रथमसें सृष्टिका आरंभ नहि करता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (गौणत्वापत्तेर्नाविर्भावमात्रकर्तृत्वम्) पहलेसें विद्यमान जगत्का केवल ईश्वर आविर्भावमात्र करता है ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि गौणत्वापत्तेः कहिये पहले सूक्ष्मरूपसे विद्यमान जगत्का आविर्भावमात्र करनेसें तो ईश्वरको गौणपणाहि होवेगा मुख्यकर्तापणा नहि होवेगा और जब मुख्यकर्तापणा नहि हूया तो फिर पीछे कहे जो जगत्रचना करनेके श्रुतिस्मृतियोंके वचन हैं सो सब निरर्थक होजावेंगे तथा जगत्का मुख्यकर्तापणा

नहि होनेसें फिर ईश्वरका ईश्वरपणाभी नहि रहेगा इसलिये ईश्वरको केवल जगत्का स्थूलरूपसें आविर्भावमात्र कर्ता मानना ठीक नहि है इति ॥ ४६ ॥

इतश्च नेश्वरस्याविर्भावमात्रकर्तृत्वं—

**कारणांतराऽभ्युपगमप्रसंगाच्च ॥ ४७ ॥**

कारणांतराभ्युपगमप्रसंगादपि नेश्वरस्य जगदाविर्भावमात्रकरणं युक्तं सूक्ष्मरूपेण विद्यमानस्य जगतः पुनराविर्भावमात्रकरणे तु तस्य सूक्ष्मप्रपंचस्य कारणं कश्चिदन्य एवेश्वरोंगीकरणीयः स्यात् नोचेत् स्वत उत्पत्तौ तु स्वभाववादापत्तिरनिवार्या स्यात् स्वभाववादस्य च पूर्वमेव निराकरणं कृतं ततः प्रथमत एवेश्वरस्य जगदारंभणं युक्तं ( तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् सूर्याचंद्रमसौ धातेत्यादिश्रुतयस्तु कल्पांतरारंभविषया वेदितव्या नत्वादिसर्गविषया इति ४७

कारणांतराभ्युपगमप्रसंगाच्च । दूसरा कारण माननेकी आवश्यकता होनेसेंभी ईश्वरको जगत्का आविर्भावमात्र कर्त्ता मानना ठीक नहि है क्योंकि जब सूक्ष्मरूपसें विद्यमान हुये जगत्को ईश्वर स्थूलरूपसें केवल आविर्भावमात्र करता है तो फिर तिस सूक्ष्म प्रपंचके निर्माण करनेवाला कोई दूसरा ईश्वर

मानना पडेगा नहि तो अपने आपसे उत्पन्न हूया माननेमें तो स्वभाववादकी अवश्य प्राप्ति होवेगी सो स्वभाववादका तो पहलेहि निराकरण कर आये हैं इसलिये प्रथमसेंहि ईश्वर इस जगत्का आरंभ करता है ऐसा निश्चय करना चहिये और जो (यह जगत् पहले सूक्ष्मरूप था पीछे नामरूपसें प्रगट किया गया तथा जैसे पहले थे वैसे फिर सूर्य चन्द्रमा ईश्वरने बनाये) इत्यादि श्रुतियोंके वचन हैं सो तो कल्पांतरके आरंभके विषयके हैं आदिसृष्टिके विषयके नहि हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४७ ॥

नन्वेकस्य सूक्ष्मसृष्टिकर्तुरीश्वरस्य द्वितीयः सहकारित्वेन स्थूलरूपेण तदाविर्भावकर्ता पुनरीश्वरः कथं नांगीक्रियते तत्राह—

निरपेक्षत्वान्नेश्वरद्वयम् ॥ ४८ ॥

ईश्वरद्वयं नैव भवितुमर्हति कुतः निरपेक्षत्वात् परमेश्वरस्य द्वितीयापेक्षाभावात् नहि स्वसृष्टिनिर्माणे परमेश्वरोऽन्यस्य कस्याचित्साहाय्यकारिणः क्वचिदपेक्षां कुरुते सर्वशक्तिमत्त्वादीश्वरस्य द्वितीयापेक्षायां तु परस्परं सापेक्षत्वात् द्वयोरप्यनीश्वरत्वं स्यात् स्वतंत्रत्वाभावात् राजमंत्रिवत्सहकारित्वेऽपि

न द्वयोरीश्वरत्वं तुल्यत्वाभावात् तस्मादेक एवेश्वरोस्य समस्तस्य जगतः कारणमस्तीति विज्ञेयम् ४८

ननु एक सूक्ष्मसृष्टिका कारण ईश्वर और दूसरा तिसका सहकारी स्थूलरूपसें जगत्का आविर्भावकर्ता ईश्वर इसरीतिसें दो ईश्वर क्यों नहि मानलियेजावें ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (निरपेक्षत्वान्नेश्वरद्वयम्) ईश्वर दो नहि हो सकते क्योंकि निरपेक्षत्वात् कहिये ईश्वरको किसी दूसरेकी अपेक्षा नहि होनेसें अपनी सृष्टि रचनेमें परमेश्वर किसी दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहि करता है क्योंकि वो सर्वशक्तिमान् है दूसरेकी अपेक्षा करनेसें तो दोनों परस्पर अपेक्षावाले होनेसें दोनोंहि ईश्वर नहि होसकेंगे क्योंकि दूसरेकी अपेक्षावाला स्वतंत्र नहि होनेसें ईश्वर नहि कहला सकता तथा राजा और मंत्रीकी न्यांई दोनोंको सहकारी मानें तोभी दोनों बराबर नहि होनेसें दो ईश्वर नहि होसकते इसलिये एकहि परमेश्वर इस संपूर्ण जगत्का कारण है ऐसा समझना चहिये इति ॥ ४८ ॥

अद्वितीयत्वाभिधानाच्च ॥ ४९ ॥

(सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं एको देवः सर्वभूतेषु गूढः एको देवः प्रदिशोनुसर्वः)

इत्यादिश्रुतिवाक्येषु सृष्ट्यादावेकस्याद्वितीयस्य परमेश्वरस्यास्तित्वाभिधानादपि नेश्वरद्वयं संभवतीति ॥ ४९ ॥

अद्वितीयत्वाभिधानाच्च । छांदोग्य उपनिषत्में लिखा है कि ( हे सोम्य सृष्टिके आदिमें एक अद्वितीय सत्रूप परमात्माहि था दूसरा कोई नहि था । तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी लिखाहै कि ( एकहि परमात्मा देव सर्वभूतप्राणियोंमें गूढ है एकहि देव सर्वदिशायोंमें व्यापक है ) इत्यादि श्रुतियोंके वचनोंमें सृष्टिसे पहले एक अद्वितीय परमात्माका निरूपण किया है इसलिये दो ईश्वर नहि हो सकते हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४९ ॥

ननु यथा वह्व्यो मधुमक्षिका मिलित्वा मध्वालयनिर्माणं कुर्वन्त्येवं वहवः शक्तिमंतः परमेश्वरा जगन्निर्माणे किमर्थं नाभ्युपेयंते तत्राह—

**नच तद्बहुत्वमप्रमाणात् ॥ ५० ॥**

ईश्वरद्वयवदीश्वरवहुत्वमपि न युक्तं कुतः अप्रमाणात् नहि श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासेषु क्वचिदपीश्वरवहुत्वे किंचित्प्रमाणमुपलभ्यते पुष्टप्रमाणमंतरा च न क्वचिद्वस्तुसिद्धिर्जायते ततो वेदादिप्रमाणाभावान्नेश्वरवहुत्वं भवितुमर्हतीति ॥ ५० ॥

ननु जैसे वहुतसी मधुमक्खियां मिलकरके मधुका छत्ता बनाती हैं तैसेहि जगत् निर्माण करनेमें बहुतसे शक्तिमान् ईश्वर क्यों नहि मानलियेजावें ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं (नच तद्बहुत्व-मप्रमाणात्) दो ईश्वरोंकी न्यांई वहुतसे ईश्वर मान-नेभी ठीक नहि हैं क्योंकि अप्रमाणात् कहिये बहुत ईश्वरोंके होनेमें श्रुति स्मृति पुराण इतिहासादिमें कोई कहीं प्रमाण नहि मिलता है और पुष्ट प्रमाणके विना कहींभी किसी वस्तुकी सिद्धि नहि होसकती सो वेद-आदि प्रमाण नहि होनेसें वहुत ईश्वर मानने ठीक नहि है इति ॥ ५० ॥

अनीश्वरत्वप्रसंगाच्च ॥ ५१ ॥

अनीश्वरत्वप्रसंगादपि नेश्वरवहुत्वं युक्तं बहू-नामीश्वाराणां न्यूनाधिकतया तु न्यूनानामनीरत्वं तुल्यशक्तित्वे च परस्परं सापेक्षत्वात्सर्वेषामनीश्वरत्वं स्यात् सर्वत्र हि किलैकः कार्यं कर्तुमनीश्वर एवा-न्यसाहाय्यमपेक्षते नत्वीश्वरः। नचास्वतंत्रः कश्चिदी-श्वरपदवाच्यो भवितुमर्हति (सोऽक्षरः परमः स्वराट्, तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते) इत्यादि श्रुतिवचनात् तस्मादेक एव परमेश्व-रोऽस्य जगतो निर्माणकारणमस्तीत्यवसेयम् ॥५१॥

अनीश्वरत्वप्रसंगाच्च। अनीश्वरपणेकी प्राप्ति होनेसेंभी वहुत ईश्वर मानने ठीक नहि हैं क्योंकि वहुत ईश्वर होनेमें जो न्यूनाधिकशक्तिवाले मानेंगे तो न्यूनशक्तिवाले ईश्वर नहि होवेंगे और जो सव वरावर शक्तिवाले मानेंगे तो परस्पर एक दूसरेकी सहायताकी अपेक्षावाले होनेसें सवी ईश्वर नहि होसकेंगे क्योंकि सव जगा यह देखनेमें आवे है कि किसी कार्य करनेमें एकला पुरुष असमर्थ होनेपरहि दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा करता है समर्थ पुरुष नहि करता और दूसरोंकी अपेक्षावाला अस्वतंत्र होनेसें ईश्वरशब्दका वाच्य नहि होसकता अर्थात् वो ईश्वर नहि कहला सकता क्योंकि (सो परमेश्वर अक्षर और परमस्वतंत्र है, सो ईश्वरोंकाभी परम ईश्वर है, तिसके वरावरका वा तिससें अधिक कोई दूसरा देखनेमें नहि आता) इत्यादि श्रुतिवचनोंमें ईश्वरको सवसे वडा और स्वतंत्र कथन किया है इसलिये एकहि ईश्वर इस जगत्के निर्माण करनेका कारण है ऐसा निश्चय करणा चहिये इति ॥ ५१ ॥

ननु श्रुतिस्मृतिपुराणेषु ब्रह्मविष्णुशिवादीनामपीश्वरत्वं प्रतिपादितमस्ति तदीश्वरस्यैकत्वे कथमुपपद्यते तत्राह—

## तदंशत्वात्तु तद्रूपत्वाभिधानं राज-पुत्रवत् ॥ ५२ ॥

तु शब्देनाक्षेपं परिहरति तस्येश्वरस्यांशभूतत्वात् ब्रह्मविष्णुशिवादिदेवानामपीश्वरस्वरूपत्वाभिधानं ज्ञातव्यं यद्यपि सर्वेपि जीवाः परमेश्वरस्यांशभूता एव तथापि यथा सर्वत्र व्यापकस्यादित्यप्रकाशस्य दर्पणादिस्वच्छपदार्थेषु विशेषत्वेन प्रतिबिंबनं जायते तद्वदेव सत्त्वगुणभूयिष्ठासु ब्रह्मविष्णुशिवशक्तिगणेशसूर्याख्यासु षट्सु देवताव्यक्तिषु परमेश्वरस्य विशेषतया शक्तिपातो विद्यते ततः साक्षादीश्वरशक्तिसंबंधात्सर्वत्र वेदशास्त्रपुराणेषु तेषामीश्वरत्वं निरूपितं राजपुत्रवदिति निदर्शनं यथा राजपुत्रं जनता राज्ञस्तुल्यं गणयति तद्वद्विष्ण्वादिष्वपि द्रष्टव्यं नैतावतेश्वरबहुत्वं संभवति तेषां ब्रह्मादीनां सर्वेषामेकस्यैवांशरूपत्वात् नहि बहुभिर्ज्वालाभिरग्नेर्बहुत्वं जायते तस्मादेक एव परमेश्वरोऽस्य जगतो निर्माणकारणमस्तीति बोद्धव्यं तथाच वेदवचनं (स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराडि)ति ॥ ५२ ॥

ननु श्रुतिस्मृतिपुराणोंमें बहुत जगा ब्रह्मा विष्णु शिव आदिकोंकाभी ईश्वरपणा निरूपण किया हूया है

तो एक ईश्वर होनेपर यह वार्ता कैसे संभव होसकती है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (तदं-शत्वात्तु तद्रूपत्वाभिधानं राजपुत्रवत्) तिस ईश्वरकी अंशभूत होनेसें ब्रह्मा विष्णु शिव आदि-कोंका ईश्वरस्वरूपपणा कथन किया जानलेना यद्यपि सर्व ब्रह्मांडगत सवी जीव परमेश्वरके अंशरूप हैं तथापि जैसे सर्वत्र व्यापक सूर्यके प्रकाशका स्वच्छ दर्पण आदि पदार्थोंमें विशेषकरके प्रतिबिंब पडता है तैसेहि सत्त्व-गुणकी अधिकताके कारण ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ति गणेश और सूर्य इन छे देवताव्यक्तियोंमें ईश्वरकी श-क्तिका विशेष अंश रहता है इसलिये साक्षात् ईश्वरश-क्तिके संबंधसें तिनका सब जगा वेद शास्त्र पुराणोंमें ईश्वरपणा निरूपण किया है राजपुत्रवत् यह यहां दृष्टांत है सो जैसे राजाके पुत्रकोभी लोक राजाके तुल्य मानते हैं तैसेहि विष्णु शिव आदिकोंमेंभी ईश्वरपणा समझलेना सो इतनेमात्रसें ईश्वर बहुतसे नहि होसकते क्योंकि विष्णु शिव आदिक सब एकहि ईश्वरके अंश हैं सो जैसे बहुत ज्वालायोंसें अग्नि बहुतरूप नहि होजाता तैसेहि विष्णु शिव आदिकोंसे ईश्वर बहुत नहि होसकते इसलिये एकहि परमेश्वर इस जगत्की उत्पत्तिका कारण है ऐसा जानना चहिये तथा कैव-

ल्यउपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( सो परमेश्वरहि ब्रह्मा शिव इन्द्ररूप है और अविनाशी परम स्वतंत्र है ) इति ॥ ५२ ॥

विज्ञातमेतदेक एवेश्वरोऽस्य जगतो निर्माणकारणमस्तीति परंतु कुतः स तस्योपादानादिसामग्रीमानीय निर्माणं करोतीत्यत्राह—

**नान्यवस्त्वपेक्षा सर्वशक्तित्वात् ॥ ५३ ॥**

यथा घटपटादिनिर्माणे कुलालतंतुवायादयो मृत्तिकातंत्वाद्युपादानसामग्रीमानीय निर्माणं कुर्वंति न तथेश्वरस्य जगन्निर्माणेऽन्यस्य कस्यचित्पदार्थस्यापेक्षा भवति कुतः सर्वशक्तित्वात् सर्वविधसामर्थ्ययुक्तो हि किलेश्वरो विनैव बाह्यसामग्रीं जगन्निर्माणं करोतीति वेदितव्यम् ॥ ५२ ॥

यह वार्ता भलीप्रकारसें समझमें आगई कि एकही ईश्वर इस जगत्‌को निर्माण करता है परंतु सृष्टिके आदिमें तो कोई दूसरी वस्तु नहि होती है तो फिर ईश्वर जगत्‌के रचनेकी उपादान आदि सामग्री कहांसें लाकर जगत्‌को रचता है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( नान्यवस्त्वपेक्षा सर्वशक्तित्वात् ) जैसे घट वस्त्र आदिके बनानेमें कुंभार जुलाहा आदि मिट्टी सूत्र आदि उपादानादिसामग्रीको लाकरके बनाते हैं तैसे

ईश्वरको जगत्‌रचनेमें किसी दूसरे पदार्थकी आवश्यकता नहि होती क्यों कि सर्वशक्तित्वात् कहिये ईश्वरमें सर्व प्रकारकी सामर्थ्य होनेसें सो विनाहि किसी बाह्य सामग्रीके जगत्‌का निर्माण करता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५३ ॥

ननु बाह्यसामग्रीमंतरा कथमीश्वरो जगन्निर्माणं कुरुते नहि क्वचित्किंचिदपि वस्तूपादानसामग्रीं विना निर्मातुं शक्यते तत्राह—

**ऊर्णनाभवदुभयकारणत्वं श्रवणात् ॥५४॥**

यथोर्णनाभो जंतुस्तंतुसंताने स्वयमेवोपादानं तन्निमित्तं च भवति तद्वदीश्वरस्यापि जगन्निर्माणे निमित्तत्वमुपादानत्वं चोभयकारणत्वं ज्ञातव्यं कुतः श्रवणात् (यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवंति यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्संभवतीह विश्वं, तदात्मानं स्वयमकुरुत तस्मात्तत्सुकृतमुच्यते ।) इत्यादिश्रुतिवचनेषूभयकारणत्वमेवेश्वरस्य श्रूयते तस्मान्नेश्वरस्य जगद्रचनायामन्यसामग्र्यपेक्षास्तीति ॥ ५४ ॥

ननु बाह्यसामग्रीके विना ईश्वर जगत्‌को कैसे रचता है क्योंकि कहीं कोईभी वस्तु उपादानसामग्रीके

विना निर्माण नहि होसकती ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( ऊर्णनाभवदुभयकारणत्वं श्रवणात् ) जैसे मकडी नामका जंतु तंतुवोंका जाला बनानेमें अपने मुखसेंहि तंतु निकालकर आपहि जाला बनालेता है बाहिरसें किसी दूसरी सामग्रीको नहि लाता है अर्थात् उस जालेका उपादानकारण और निमित्तकारण दोनों आपही होता है तैसेही ईश्वरभी जगत्‌की रचना करनेमें आपहि उसका उपादानकारण और निमित्तकारण होवेहै ऐसा जानना चहिये क्योंकि श्रवणात् कहिये वेदमें ईश्वरको दोनों प्रकारका कारणपणा कथन किया है जैसे कि मुंडक उपनिषत्‌में लिखा है कि ( जैसे मकडी अपनेंसें जाला बनाती है और अपनेमेंहि समेट लेती है और जैसे पृथिवीमेंसें वनस्पतियां बीजोंसहित उत्पन्न होती हैं तथा जैसे जीवतेहूये पुरुषके शरीरमें केश रोम उत्पन्न होतेहैं तैसेहि परमात्मासें यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ) तथा तैत्तिरीय उपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( सो परमात्मा अपने आपकोहि जगत्‌रूप करता भया इसलिये सो सुकृत कहलाता है ) इत्यादि श्रुतिवचनोंमें ईश्वरको जगत्‌का उपादानकारणपणा और निमित्तकारणपणा दोनों कारणपणा कथन किया है इसलिये जगत्‌की रचना

करनेमें उसको किसी दूसरी सामग्रीकी आवश्यकता नहि होती ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५४ ॥

विना सामग्रीमीश्वरः केन प्रकारेण जगन्निर्माणं करोतीत्यपेक्षायामाह—

संकल्पादेव बलवत्त्वात् ॥ ५५ ॥

परमेश्वरः संकल्पादेवास्य समस्तस्य जगतो निर्माणं करोतीति विज्ञेयं कुतः बलवत्त्वात् ईश्वरसंकल्पस्य बलवत्त्वात् सत्यसंकल्पो हि किलेश्वरः यं यं पदार्थं यथायथा मनसा संकल्पयति स तथा तथैव सद्य एव प्रादुर्भवति ( स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति स इमाँल्लोकानसृजत ) इत्यादिवेदवचनेषु संकल्पानंतरमेव जगदुत्पत्तिर्निरूपिता ततः परमेश्वरसंकल्प एव तस्य तस्य पदार्थस्योत्पत्तौ सर्वत्रोपादानकारणतां निमित्तकारणतां चोपयातीति वेदितव्यम् ॥ ५५ ॥

सामग्रीके विना ईश्वर किस प्रकारसें जगत्की रचना करता है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( संकल्पादेव बलवत्त्वात् ) परमेश्वर अपने संकल्पसेंहि इस संपूर्ण जगत्का निर्माण करता है ऐसा जानना चहिये क्योंकि बलवत्त्वात् कहिये ईश्वरका संकल्प बडा बलवान् है ईश्वरको सत्यसंकल्प होनेसें

सो जिस जिस पदार्थको जैसा जैसा होना संकल्प करता है वो वो पदार्थ वैसा वैसा हि तत्काल उत्पन्न हो जाता है ( सो ईश्वर विचार करता भया कि मैं जगत्को रचुं और वो जगत्को रचता भया ) इत्यादि श्रुतियोंमेंभी ईश्वरके संकल्पके अनंतर तत्कालहि जगत्की उत्पत्ति होना कथन करी है इसलिये ईश्वरका संकल्पहि सर्व पदार्थोंकी उत्पत्तिमें उपादानकारण और निमित्तकारण होवेहै ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५५ ॥

अन्यत्र तद्दर्शनाच्च ॥ ५६ ॥

अन्यत्र संकल्पादेव पदार्थोत्पत्तिदर्शनादपीश्वरस्य संकल्पाज्जगन्निर्माणकारित्वमवसेयं दृष्टं हि लोके बहुषु स्थलेषु योगिनां सिद्धानां च तपस्विनां संकल्पादेव पदार्थनिर्माणं यथा नृसिंहस्य स्वशरीरनिर्माणं रासलीलायां कृष्णस्यानेकरूपधारणं सौभरिमुनेर्बहुशरीरनिर्माणं विश्वकर्मणस्तिलोत्तमानिर्माणं कर्दमस्य कामगविमाननिर्माणं द्रौपद्याश्च वस्त्रवर्धनमित्यादि प्रसिद्धं महाभारतादीतिहासपुराणेषु यद्येवं देवेषु मनुष्येषु च संकल्पात्पदार्थनिर्माणशक्तिर्दृश्यते तदेश्वरस्य संकल्पाज्जगन्निर्माणे किमु वक्तव्यम् ॥ ५६ ॥

अन्यत्र तद्दर्शनाच्च । दूसरी जगा संकल्पसें पदार्थोंकी उत्पत्ति होती देखनेसेंभी ईश्वरका संकल्पसें जगत् निर्माण करना निश्चय होवे है क्योंकि बहुत जगा लोकमें सिद्धों वा तपस्वियोंके संकल्पसें पदार्थोंका उत्पन्न होना देखनेमें आया है जैसे कि नरसिंह अवतारका अपने संकल्पसें शरीर बना लेना रासलीलामें कृष्णका अनेकरूप धारण करना सौभरी ऋषिका अपने बहुतसे शरीर बनालेना विश्वकर्माका तिलोत्तमा अप्सराका बनालेना और कर्दमऋषिका इच्छाचारी विमान बनालेना द्रौपदीके वस्त्रोंका बढ़जाना इत्यादि अनेक इतिहास महाभारत और पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं सो इसप्रकारसे जब देवता और मनुष्योंमें संकल्पसें पदार्थ रचनेकी शक्ति देखनेमें आई है तो फिर साक्षात् परमेश्वरके संकल्पसें जगत्की रचना होनेमें क्या कहना चहिये अर्थात् कुछ नहि इति ॥५६॥

ननु केवलचैतन्यमयादीश्वरसंकल्पात् कथं ततो विलक्षणस्य जडचेतनात्मकस्य प्रपंचस्योत्पत्तिर्जायते तत्राह—

**व्यक्तादिवदाविर्भावो विलक्षण-**

**सामर्थ्यात् ॥ ५७ ॥**

यथा किलाव्यक्तादीश्वरसंकल्पात् व्यक्तस्य नि-

गुणात् त्रिगुणमयस्यैकरूपादनेकरूपस्य च जगतः समुत्पत्तिर्जायते तद्वदेव चेतनाज्जडस्याप्युत्पत्तिः संभवतीति ज्ञातव्यं कुतः विलक्षणसामर्थ्यात् नहि जीवानामिवेश्वरस्य सामर्थ्यं विद्यते येन विलक्षणं कार्यं न भवेत् विलक्षणं हि तस्य मायाशक्त्याख्यं सामर्थ्यं येन दुर्घटनान्यपि कार्याणि सहसा सुघटितानि भवंति सत्यसंकल्पत्वादीश्वरस्य यदा यादृशं कार्यमुत्पाद्यं भवति तादृशमेव जडमजडं वा तत्सद्य एव संपद्यते परमेश्वरस्य सामर्थ्यवैलक्षण्यमेव विलक्षणकार्यनिर्माणे हेतुरस्तीति विज्ञेयम् ॥ ५७ ॥

ननु केवलचेतनरूप ईश्वरके संकल्पसें जडचेतनरूप विलक्षण जगत्की कैसे उत्पत्ति होवे है ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं ( व्यक्तादिवदाविर्भावो विलक्षणसामर्थ्यात् ) जैसे अव्यक्त ईश्वरके संकल्पसें विलक्षण व्यक्तरूपकी और निर्गुणसे सगुणकी तथा एकरूपसें अनेकरूपवाले जगत्की उत्पत्ति होवे है तैसेहि चेतनसें जडरूप जगत्कीभी उत्पत्ति होती है ऐसा जानना चहिये क्योंकि विलक्षणसामर्थ्यात् कहिये जीवोंके बराबर ईश्वरकी सामर्थ्य नहि है कि जिससें विलक्षण कार्य नहि होसके ईश्वरकी तो मायाशक्तिरूप सामर्थ्य बडीभारी विल-

क्षण है जिससें बडे दुर्घट कार्यभी शीघ्रहि सुघटित होजाते हैं ईश्वरको सत्यसंकल्प होनेसें जिस कालमें जैसा कार्य उत्पन्न करनेकी इच्छा होती है तब तैसाहि जड अथवा चेतन कार्य तत्कालहि उत्पन्न होजाता है अर्थात् ईश्वरकी विलक्षण सामर्थ्यहि विलक्षण जगत्के निर्माण करनेमें हेतु है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५७ ॥

इतश्च चेतनाज्जडस्योत्पत्तिः संभवति—

**कार्यकारणयोर्वैरूप्याच्च ॥ ५८ ॥**

प्रायः कार्यकारणयोरेकरूपत्वनियमाभावादपि चेतनादीश्वरसंकल्पात् विलक्षणस्य जगतः समुत्पत्तिः संभवतीति ज्ञातव्यं यदि तु सर्वथा कारणस्वरूपमेव कार्यं स्यात् तदा तु तस्य कार्यत्वमेव न सिद्ध्येत् ततस्तत्र वैलक्षण्यमपि युक्तं यथा पवनाकाशयोर्जलानलयोर्देहवीर्ययोर्वटबीजयोः केशशरीरयोश्चेत्यादिपदार्थेषु कार्यकारणभावेऽपि महद्वैलक्षण्यं दृश्यते तद्वदत्रापि द्रष्टव्यं । वस्तुतस्तु चैतन्यमयेश्वरसंकल्पकल्पितं वस्तुजातं सर्वं चेतनमेव भवति किंतु केवलं जीवानां व्यवहारसिद्ध्यर्थमीश्वरेच्छया तत्र जडरूपत्वं प्रतीयते यथास्मत्स्वप्नसंकल्परचनायां बहूनि जडरूपाणि वस्तूनि प्रतिभा-

संते परंतु वस्तुतस्तान्यखिलानि संकल्पात्मकत्वा-च्चेतनरूपाण्येव भवंति तत्र जीवसंकल्पस्यादृढत्वा-त्तद्रचितं वस्तु चिरं न तिष्ठति परंत्वीश्वरसंकल्पस्य दृढत्वादमोघत्वाच्च तद्रचितं वस्तुजातं चिरकालं तिष्ठतीति बोद्धव्यम् ॥ ५८ ॥

इससेंभी चेतनसें जडकी उत्पत्ति संभवे है (कार्यकारणयोर्वैरूप्याच्च) कार्यकारणके एकरूप होनेका नियम नहि होनेसेंभी चेतन ईश्वरके संकल्पसें जडरूप जगत्की उत्पत्ति हो सकती है ऐसा जानना चहिये क्योंकि जो कार्य अपने कारणकेहि समान होवे तो फिर उसका कार्यपणाहि सिद्ध नहि होवेगा इसलिये उसमें कुछ विलक्षणपणाभी होना ठीक है जैसे कि वायुआकाशमें और जलअग्निमें और शरीरवीर्यमें तथा वटबीजमें केश और शरीरमें इत्यादि पदार्थोंमें कार्यकारणभाव होनेपरभी वडा भारी विलक्षणपणा देखनेमें आता है अर्थात् वायु सावयव परमाणुवाला है और तिसका कारण आकाश निरवयव परमाणुवोंसें रहित है और जल शीतल है तिसका कारण अग्नि उष्ण है और शरीर हाडमांसका कठिन है और तिसका कारण वीर्य पानी जैसा पतला होता है और वटका वृक्ष वडा भारी विस्तारवाला होता है तिसका कारण बीज

वहुत छोटा होता है तथा सिरके वाल केवल जड होते हैं और शरीर चेतन है तैसेहि यहां जड-चेतनरूप कार्यकारणमेंभी विलक्षणपणा समझलेना। किंच वास्तवरूपसें तो चेतनरूप ईश्वरके संकल्पसें कल्पना कीहुई सवी वस्तुवों चेतनरूपहि होती हैं केवल जीवोंके व्यवहारोंकी सिद्धिके लिये ईश्वरकी इच्छासें तिनमें जडपणा प्रतीत होता है जैसे हमारे जीवोंके स्वप्नकालकी संकल्परचनामें वहुतसी वस्तुवें जडरूप दीखती हैं परंतु वास्तवमें सो सवी संकल्परूप होनेसें चेतनरूपहि होती हैं तिनमें केवल इतनाहि भेद है कि जीवोंके संकल्पकी रचीहुई वस्तु चिरकाल स्थिर नहि रहती और ईश्वरका संकल्प दृढ होनेसें तिसकी रचीहुई सवी वस्तुवें चिरकालतक स्थिर रहती हैं और उनसें जीवोंके व्यवहार होते हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५८ ॥

ननु साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन, वैषम्यनैर्घृण्येनसापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयतीत्यादिश्रुतिस्मृतिवाक्येषु जीवकर्मानुसारेणैवेश्वरस्य जगन्निर्माणे प्रवृत्तिर्जायते न तु स्वेच्छया स्वसंकल्पादित्यत्राह—

नच कर्माधीन्यं स्वतंत्रत्वात् ॥ ५९ ॥

परमेश्वरस्य जगन्निर्माणे बाह्यसामग्रीवज्जीवकर्मणामप्यपेक्षा नैव भवतीति ज्ञातव्यं नहीश्वरो जीवकर्माधीनः सन् जगन्निर्माणं करोति कुतः स्वतंत्रत्वात् स्वतंत्रो हि किलेश्वरः स्वसृष्टिनिर्माणे जीवकर्माधीनत्वे तु न तस्य मुख्यं कर्तृत्वं स्वतंत्रत्वं च स्यात् निमित्तापेक्षणात् नच सृष्ट्यादौ साधनाभावाज्जीवकर्मणां संभवो भवितुमर्हतीत्युक्तं पूर्वमेव सृष्ट्युत्पत्त्यनंतरभावित्वादशेषकर्मकलापस्य नहि भूम्याकाशादित्यचन्द्राद्युत्पत्तितः पूर्वं जीवैः क्वचित्कर्माणि कर्तुं शक्यंते उक्तश्रुतिस्मृतिवाक्यानि तु कल्पांतरविषयाणि नत्वादिसृष्टिविषयाणीति बोद्धव्यं ततः (सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेये) त्यादिश्रुतिवचनादीश्वरः स्वेच्छयैव स्वसंकल्पाज्जगन्निर्माणं करोतीति निश्चेयम् ॥ ५९ ॥

ननु श्रेष्ठकर्मकरनेवाला उत्तम जन्मको पाता है और पापकर्म करनेवाला नीचयोनिको पाता है पुण्यकर्मोंसें श्रेष्ठ होता है पापकर्मोंसे जीव नीच होता है। ईश्वरमें विषमता और निर्दयता दोष नहि है क्योंकि वो जीवोंके कर्मोंके अनुसार नीच ऊंच जगत्को रचता

है इति इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंके वचनोंमें जीवोंके कर्मोंके अनुसारहि ईश्वरकी जगत्रचनेमें प्रवृत्ति होवे है अपनी इच्छासें वा अपने संकल्पसें नहि होवे है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( नच कर्माधीन्यं स्वतंत्रत्वात् ) परमेश्वरको जगत्की रचना करनेमें उपादानसामग्रीकी न्यांई जीवोंके कर्मोंकीभी अपेक्षा नहि होती है ऐसा जानना चहिये अर्थात् ईश्वर जीवोंके कर्मोंके अधीन होकर जगत्की रचना नहि करता है क्योंकि स्वतंत्रत्वात् कहिये अपनी सृष्टिरचनेमें ईश्वर स्वतंत्र है जीवोंके कर्मोंकी अपेक्षा करनेसें तो ईश्वरको मुख्य सृष्टिकर्तापणा और स्वतंत्रपणा नहि होसकता किंच सृष्टिरचनासें पहले कर्म करनेकी कोई सामग्री नहि होती है तो कर्मोंका होनाभी असंभव है यह वार्ता पहलेहि कथन कर आये हैं क्योंकि भूमि आकाश सूर्य चन्द्रमा आदिकी उत्पत्तिके पीछेहि सब जीवोंके कर्म हो सकते हैं तिनसें पहले नहि हो सकते और उक्तश्रुतिस्मृतियोंके वचन तो दूसरे बीचके कल्पोंके विषयके हैं आदिसृष्टिविषयके नहि हैं ऐसा जानना चहिये सो ( तिस परमात्माने इच्छा की कि मैं बहुतरूपसें उत्पन्न होवूं ) इत्यादिश्रुतियोंके वचनोंसें ईश्वर अपनी इच्छासेंहि

अपने संकल्पसें जगत्को रचता है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ५९ ॥

ननु बीजादंकुरोंऽकुरतश्च बीजमित्येवं परस्परं जगत्कर्मणोरनादिसंबंधत्वात्कथमुच्यते कर्मापेक्षा नास्तीति तत्राह—

**बीजांकुरवदिति चेन्न पूर्वापरत्वात् ॥ ६० ॥**

कर्मणो जगत् जगतश्च कर्माणीत्येवं बीजांकुरवज्जगत्कर्मणोरनादित्वमस्तीति चेत् नैवं मंतव्यं कुतः पूर्वापरत्वात् विद्यते हि बीजांकुरयोः पूर्वापरत्वं प्रथमतो निखिला वनस्पतयः पृथिव्या रोमरूपाः पृथिव्या सहैव जायंते ततस्तत्प्रवाहार्थं तत्र बीजस्याविर्भावो भवतीति विज्ञेयं ( यथा पृथिव्यामोषधयः संभवंति यथा सतः पुरुषात्केशलोमानी)ति श्रुतिवचनात् तद्वदन्यत्रापि सर्वत्र प्रथमतो वस्त्वाकारनिर्माणं तदनु च तद्बीजनिर्माणं ज्ञातव्यं नह्याकारज्ञानमंतरा तद्बीजं निर्मातुं शक्यते ( ताभ्यो गामानयत् ताभ्योऽश्वमानयत् ताभ्यः पुरुषमानयदि)त्यत्र वेदवाक्येषु प्रथमं शरीरस्यैव निर्माणमुक्तं नतु तद्बीजस्य तद्वत्पूर्वं जगतो निर्माणं जायते तदनु च तत्प्रवाहनिर्वहणार्थं तत्र कर्मणो योजना

भवतीति ज्ञातव्यं तथाच मनुवचनं ( यं तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुंक्त प्रथमं प्रभुः । स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुन )रिति । ततो न बीजांकुरदृष्टांतेन जगत्कर्मणोरनादित्वं भवितुमर्हतीति ॥ ६० ॥

ननु जैसे बीजमें वृक्षका अंकुर होता है और फिर वृक्षसें बीज होता है तैसेहि जगत् और कर्मोंकाभी परस्पर अनादि संबंध है तो फिर तुम कैसे कहते हो कि सृष्टिरचनेमें कर्मोंकी अपेक्षा नहि है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( बीजांकुरवदिति चेन्न पूर्वापरत्वात् ) कर्मोंसें जगत्की उत्पत्ति और जगत्सें कर्मोंकी उत्पत्ति इस प्रकार बीज और वृक्षकी न्यांई जगत् और कर्मोंका अनादिसंबंध है ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि पूर्वापरत्वात् कहिये बीज और वृक्षमें पूर्व अपरपणा होता है अर्थात् वृक्ष पहले होता है और बीज पीछेसें होता है जैसे मनुष्यके शरीरमें विना बीज रोम होते हैं तैसेहि पहले पृथिवीके रोमरूप सब वृक्ष वनस्पतियां पृथिवीके साथहि उत्पन्न होते हैं और पीछे तिनके प्रवाह चलानेके लिये ईश्वरकी इच्छासें तिनमें बीज प्रकट होता है ऐसा जानना चहिये जैसे कि मुंडकउपनिषत्में लिखा

है कि ( जैसे पृथिवीमें स्वभावसेंहि सब वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं तथा जैसे जीतेहुये पुरुषके शरीरमें केश वा रोम उत्पन्न होते हैं ) इति । इसीप्रकार औरभी सब जगामें समझलेना चहिये कि पहले सर्व पदार्थोंके आकार उत्पन्न होते हैं और पीछे तिनके प्रवाहके चलानेके लिये तिनमें बीज उत्पन्न होते हैं क्योंकि आकारके ज्ञान होनेके विना बीजका बनना नहि होसकता है जैसे कि ऐतरेय उपनिषत्में लिखा है कि ( पहले परमेश्वरने मन और इन्द्रियोंको रचा फिर तिनके लिये पहले गौका शरीर बनाया पीछे घोडेका शरीर बनाया और पीछे पुरुषका शरीर बनाया ) इत्यादि श्रुतिवचनोंमें पहले शरीर बनाना लिखा है बीज बनाना नहि लिखा है तैसेहि पहले जगत्का निर्माण होता है और पीछे तिसके प्रवाह चलानेके लिये तिसमें कर्मोंकी योजना होती है जैसा कि मनुस्मृतिमें लिखा है ( सृष्टिके आदिमें परमेश्वरने जिस जीवको जिस योनिके कर्ममें जोड दिया फिर वो जीव पुनः पुनः जगत्में उस योनिमें जन्म होनेसें उसी कर्मको करता रहता है ) इसलिये बीज और वृक्षके दृष्टांतसें जगत् और कर्मोंका अनादिपणा नहि होसकता है इति ॥ ६० ॥

कार्यकारणभावात् ॥ ६१ ॥

कार्यकारणभावादपि न जगत्कर्मणोरुभयोरनादित्वं संभवति दृश्यते हि जगति पदार्थोत्पत्तौ कार्यकारणभावः सर्वत्र प्रथमतः कारणं भवति तदनु च तस्य कार्यमुत्पद्यते यथा पृथिव्या घटः कार्पासाच्च पट इति अनादिप्रवाहेपि सर्वत्र कारणस्य पूर्वपूर्वत्वं कार्यस्य चापरापरत्वं तद्वज्जगत्कर्मणोरपि पूर्वापरत्वं ज्ञातव्यं तस्मान्नेश्वरस्य जगद्रचनायां जीवकर्मणामपेक्षा भवतीति वेदितव्यम् ६१

कार्यकारणभावात् । कार्यकारणके नियम होनेसेंभी जगत् और कर्मको अनादिपणा नहि होसकता क्योंकि सब जगा जगत्में पदार्थोंकी उत्पत्तिमें कार्यकारणका नियम देखनेमें आवे है पहले कारण होता है और पीछे तिसका कार्य होता है जैसे पहले पृथिवी होती है और पीछे उससे घट होता है पहले कपास होती है और पीछे वस्त्र बनता है जगत्का अनादि प्रवाह माननेसेंभी सब जगा कारणका पहले पहले होना और कार्यका पीछे पीछे होना मानना पडता है अर्थात् सब जगा पृथिवीसें घट उत्पन्न होता है घटसें कधी पृथिवी उत्पन्न नहि होसकती तैसेहि जगत् और

कर्मोंका पूर्वापरभाव जानना चहिये अर्थात् सृष्टिसें पहले जीवोंके कर्म नहि हो सकते इसलिये ईश्वरको जगत्रचनामें कर्मोंकी अपेक्षा नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ६१ ॥

विहारजत्वश्रवणाच्च ॥ ६२ ॥

जीवसृष्टेर्विहारजत्वश्रवणादपि नेश्वरस्य कर्मापेक्षा भवतीति ज्ञातव्यं यथोक्तं बृहदारण्यकोपनिषदि ( स इममेवात्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तां समभवत्ततो मनुष्या अजायंत सा गौरभवदृषभ इतरस्तां समेवाभवत्ततो गावोऽजायंत वडवेतराभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरागर्दभ इतरस्तां समेवाभवत्तत एकशफमजायताजेतराभवद्बस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्तां समेवाभवत्तत्तोऽजावयोऽजायंतैवमेव यदिदं किंच मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत ) इत्यत्रादिपुरुषस्य स्वेच्छाविहारेणैव सर्वजीवयोनीनामुत्पत्तिर्निरूपिता न तु कर्मानुसारेणेत्यतः परमेश्वरस्य प्रथमजगन्निर्माणे जीवकर्मणामपेक्षा नास्तीति निश्चेयम् ॥ ६२॥

विहारजत्वश्रवणाच्च । कर्मसें विना केवल विहारसें सृष्टिकी उत्पत्ति वेदमें लिखी होनेसेंभी ईश्वरको

कर्मोंकी अपेक्षा नहि होती है ऐसा जानना चहिये जैसे कि बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है कि सृष्टिके आदिमें एक पुरुष प्रगट हूया उसने अपने शरीरके दो भाग किये तो एक पुरुष बनगया दूसरी स्त्री बनगई उनके संगमसें मनुष्य उत्पन्न हूये फिर वो स्त्री गौ बनगई पुरुष वृषभ बन गया उनके संगमसें गौवें उत्पन्न भई फिर वो स्त्री घोडी बनगई पुरुष घोडा बनगया स्त्री गधी बनगई पुरुष गधा बनगया तिनके संगमसें एक खुरवाले घोडे गधे उत्पन्न हूये स्त्री बकरी बनगई पुरुष बकरा बनगया स्त्री भेड बनगई पुरुष भेडा बनगया तो तिनके संगमसें बकरी भेडें उत्पन्न भई इसीप्रकार कीडीपर्यंत जितने सर्व जीव योनियोंके जोडे हैं सो सबी पुरुषने उत्पन्न किये इति इस श्रुतिवचनमें आदिपुरुषके स्वेच्छाविहारसेंहि सर्व जीवयोनियोंकी उत्पत्ति कथन करी है कर्मोंके अनुसार नहि कथन करी है इसलिये ईश्वरको प्रथम जगत्के रचनेमें जीवोंके कर्मोंकी अपेक्षा नहि होती है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ६२ ॥

ननु जीवकर्मापेक्षां विना कंचिज्जीवं देवं कंचिन्मनुष्यं कंचिच्च पशुं विरचयतः परमेश्वरस्य विषमत्वं भविष्यतीत्यत्राह—

विषमत्वमिति चेन्नावश्यकत्वात् ॥ ६३ ॥

नीचोच्चजीवनिर्माणे परमेश्वरस्य विषमत्वं नैव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः आवश्यकत्वात् अपेक्ष्यते हि जगद्रचनायामुच्चनीचत्वं पदार्थानां सर्वेषां जीवानां तुल्यत्वे तु सर्वस्यापि जगतः सर्वत्र व्यवहारवैकल्यं स्यात् कोऽपि कस्यापि किमपि कार्यं न कुर्यात् अपेक्षाऽभावात् ततः सर्वोऽपि जगद्व्यापारः स्तब्धो भवेत्प्रणश्येद्वा ततस्तत्कर्तुरप्यकुशलत्वं प्रसज्येत नचावश्यकव्यवहारव्यवस्थार्थं कृतमुच्चनीचत्वं दोषाय कल्पते नहि स्वर्णकारः कुंभकारो वा कार्यवशाल्लघुदीर्घाणि भूषणानि पात्राणि वा विरचयन् विषमदृष्टिरभिधीयते यथा शरीरे मुखपादयोरुच्चनीचत्वेप्यावश्यकत्वादुभयोर्निर्माणं समंजसं तद्वत्सर्वत्र जगद्रचनायामपि द्रष्टव्यं तस्मान्नेश्वरस्य विषमत्वादिदोषप्रसंगोऽनुसंधेयः ॥ ६३ ॥

ननु जीवोंके कर्मोंकी अपेक्षाके विनाहि किसी जीवको देवता किसीको मनुष्य किसीको पशु बनानेमें परमेश्वरमें विषमपणेकी प्राप्ति होवेगी ऐसी शंका होनेसें समाधान कहते हैं ( विषमत्वमिति चेन्नावश्यकत्वात् ) नीच ऊंच जीवोंके निर्माण

करनेमें परमेश्वरमें विषमपणा प्राप्त नहि होवेहै क्योंकि आवश्यकत्वात् कहिये जगत्की रचना करनेमें पदार्थोंकी ऊंचनीचताकी आवश्यकता है क्योंकि सर्व जीवोंके बरावर होनेसें तो सर्वजगत्के सब जगा व्यवहार रुकजावेंगे वा नष्ट होजावेंगे क्योंकि किसीको किसीकी अपेक्षा नहि होनेसें कोईभी किसीका कुछ काम नहि करेगा तो फिर जगत्के रचनेवालेकोभी मूर्खपणा प्राप्त होवेगा कि उसने कैसा निकम्मा जगत् रचा है सो आवश्यक व्यवहारकी व्यवस्थाके लिये जगत्में ऊंच नीच जीव बनानेमें कुछ दोष नहि होसकता क्योंकि जैसे सुनार वा कुंभार आवश्यक प्रयोजनके लियें छोटे वडे भूषण वा वर्तन बनानेमें विषमदृष्टिवाला नहि कहा जाता है तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये सो जैसे शरीरमें मुख और चरणोंमें ऊंचनीचपणा होनेपर भी दोनोंका बनाना ठीक है तैसेहि सब जगा जगत्रचनामेंभी समझलेना चाहिये इसलिये ईश्वरमें विषमता आदि दोष नहि होसकता ऐसा जानना चहिये इति ॥६३॥

**सर्वस्य समानानुभवाच्च समानानुभवाच्च ॥ ६४ ॥**

सर्वस्य जीवजातस्य समानानुभवादपि नेश्वरस्य विषमत्वमनुसंधेयं ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यंतं सर्वेषां

जीवानां सर्वत्र सुखदुःखयोः समान एवानुभवो भवतीति ज्ञातव्यं नहि तत्र कश्चिद्विशेषो विद्यते केवलं बाह्यसाधनेष्वेव शरीरेन्द्रियाशनपानादिषु जीवानां भेदः प्रतीयते नतु स्वरूपेण तेषामुच्चनीचत्वमस्ति यथेन्द्रस्य शच्यालिंगनेनाह्लादो जायते तथैव शुनः स्वप्रियालिङ्गनेनाह्लादो जायते यथाच देवानाममृतपानेन तुष्टिर्जायते तद्वदेव पशूनां हरिततृणादिना तुष्टिर्भवति यः किल कश्चिज्जगत्युच्चतमो दृश्यते सोपि कस्यचिदपेक्षया नीचतमो भवति यश्च नीचतमोऽवलोक्यते सोऽपि कस्यचिदपेक्षयोच्चतमो भवति यच्च वस्त्वेकस्य रुच्यास्पदं तदेवान्यस्य घृणास्पदं यदेकस्य घृणास्पदं तदितरस्य रुच्यास्पदं जायते क्षुत्पिपासाशीतोष्णरागद्वेषजन्ममरणाधिव्याधिकामक्रोधलोभमोहतृष्णाप्रभृतयश्च सर्वेषु जीवेषु समाना एवदृश्यंते ततो न स्वरूपेण तेषामुच्चनीचत्वमस्ति केवलं लौकिकदृष्ट्यैव तदवलोक्यते नतु विचारदृष्ट्येत्यतः सर्वजीवजातस्य स्वरूपतः सामानत्वान्नेश्वरस्य विलक्षणसृष्टिनिर्माणे विषमत्वमस्तीति निश्चेयं वीप्सा पादसमाप्त्यर्था ॥ ६४ ॥

सर्वस्य समानानुभवाच्च समानानुभवाच्च ।

सर्व जीवोंको समान अनुभव होनेसें भी ईश्वरमें

विषमता आदि दोषका विचार नहि करना चहिये क्योंकि ब्रह्मासें लेकर कीडीपर्यंत सर्व जीवोंको सब जगा सुखदुःखका अनुभव समानहि होवेहै उनमें कुछ न्यूनाधिकभाव नहि है केवल बाहिरके जो शरीर इन्द्रिय खान-पान आदि साधन हैं तिनसेंहि जीवोंमें परस्पर भेद प्रतीत होता है वास्तव स्वरूपमें तिनमें कुछ भेद नहि है क्योंकि जैसे इन्द्रको अपनी स्त्री शचीके आलिंगनसें आनंद होता है तैसेहि श्वानको अपनी स्त्रीके आलिंगनसें आनंदका अनुभव होवे है तथा जैसे देवतायोंको अमृतपान करनेसें तृप्ति होती है तैसेहि पशुवोंको हरेतृणघाससें तृप्ति होवे है। तथा जो कोई जगत्में बडा ऊंचा दीखता है सो किसी दूसरेकी अपेक्षासें बडा नीच होता है और जो बडा नीच दीखता है वोभी किसीकी अपेक्षासें बडा ऊंचा होता है तथा जो वस्तु एक जीवको रुचिकारक होती है वो दूसरे किसीको घृणायोग्य होती है और जो एकको वस्तु घृणायोग्य होती है वो दूसरेको अत्यंत रुचिकारक होती है तथा क्षुधा पिपासा शीत उष्ण राग द्वेष जन्म मरण आधि व्याधि काम क्रोध लोभ मोह तृष्णा आदि सब बातेंभी सर्वजीवोंमें समानहि देखनेमें आती हैं इसलिये वास्तवमें जीवोंमें कुछ

ऊंचनीचपणा नहि है केवल लौकिकदृष्टिसें ऊंचनीचपणा प्रतीत होता है विचारदृष्टिसें देखनेसें नहि होता है इसलिये सर्व जीवोंको समान होनेसें ईश्वरमें विलक्षण जीव रचनेसें कुछ विषमपणा नहि है ऐसा निश्चय करना चहिये सूत्रमें जो दोवार पदका उच्चारण है सो पादकी समाप्तिके लिये हैं इति ॥ ६४ ॥

इति श्रीब्रह्मानन्दस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शने प्रथमः पादः १

---

## ॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

तदेवमीश्वराराधनावश्यकतां तस्य सृष्टिकर्तृत्वेन तटस्थलक्षणं कारणांतरनिषेधं चाभिधायाधुना तस्येश्वरस्य स्वरूपलक्षणाभिधानार्थमयं द्वितीयः पादः प्रारभ्यते । तत्र जगत्कारणत्वानुमानेनेश्वरस्यास्तित्वमवबुद्धं परंतु तस्य स्वरूपज्ञानाभावात्कथमाराधनं कर्तुं शक्यमित्यत्राह ।

ज्योतिर्मयं तथा श्रुतेः ॥ १ ॥

ईश्वरस्य स्वरूपं ज्योतिर्मयं ज्ञातव्यं कुतः तथा श्रुतेः ( तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतं दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं यज्ज्योतिरंतरमृतं प्रजासु तमेव भांतमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्व-

मिदं विभाती) त्यादिवेदवचनेष्वीश्वरस्य ज्योतिर्मय-मेव स्वरूपं निरूपितमस्तीति ॥ १ ॥

इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसें ईश्वरके आराधनकी आवश्यकता और जगत्का कर्तापणेके निरूपणसें ईश्वरका तटस्थलक्षण कथन करके तथा काल कर्म प्रकृति आदि दूसरे कारणोंका निराकरण करके अब ईश्वरके स्वरूपलक्षणका निरूपण करनेके लिये इस दूसरे पादका आरंभ करते हैं । तहां जगत्के कारणपणेके अनुमानसें ईश्वरका अस्तित्व तो निश्चय होगया परंतु ईश्वरके स्वरूप जानेविना तिसका आराधन किसप्रकार होसके है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( ज्योतिर्मयं तथा श्रुतेः ) ईश्वरका स्वरूप ज्योतीरूप जानना चहिये क्योंकि तथा श्रुतेः कहिये वेदमें ईश्वरका स्वरूप ज्योतिर्मयहि लिखा है जैसे कि ( उस ईश्वरको सूर्य आदि ज्योतियांकाभी ज्योतिः और अमृत आयुरूप देवता उपासना करतेहैं तथा सर्व ज्योतियोंकाभी जो परम ज्योति एक है सो सर्व ब्रह्मांडमें दूरतक व्याप्त है तथा तिस परमात्माके प्रकाशते हूयेके पीछेहि सूर्य आदिक प्रकाशते हैं और उसीके प्रकाशसें यह संपूर्ण जगत् प्रकाशवान् होरहा है) इत्यादि अनेक वेदवचनोंमें ईश्वरका स्वरूप ज्योतीरूपहि निरूपण किया है इति ॥ १ ॥

स्मृतिवचनाच्च ॥ २ ॥

स्मृतिवचनादपीश्वरस्य ज्योतिर्मयं स्वरूपं ज्ञातव्यं तथाहि ( यं विनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः । ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः । विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान् । वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽत्मा तथात्मनि । यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलं । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् । इत्यादिस्मृतिवचनेष्वपीश्वरस्य ज्योतिःस्वरूपत्वं प्रतिपादितमस्तीति वेदितव्यम् ॥ २ ॥

स्मृतिवचनाच्च । स्मृतिवचनोंके प्रमाणसेंभी ईश्वरका स्वरूप ज्योतीरूप जानना चहिये जैसे कि महाभारतमें लिखा है कि ( जिस परमात्माको निद्रा आलस और प्राणोंके जीतनेवाले तथा जितेन्द्रिय संतोषी योगी लोक ध्यान करते हूये ज्योतीरूपसें देखते हैं तिस योगात्माको नमस्कार होवो ) तथा जैसे निर्धूम अग्नि होता है और जैसे तेजरश्मियोंवाला सूर्य होता है तथा जैसे आकाशमें विजलीकी चमक होवे है तैसेहि ध्यानमें परमात्माका शरीरमें दर्शन होवे है । तथा भगवत्गीतामेंभी लिखाहै कि

हे अर्जुन जो तेज सूर्यमें स्थित हूया सर्व जगत्को प्रकाश करता है और जो चन्द्रमा और अग्निमें तेज है सो सर्व तेज तूं मेराहि जान इति । इत्यादि स्मृतिवचनोंमेंभी ईश्वरका ज्योतिर्मयहि रूप निरूपण कियाहै ऐसा जानना चहिये इति ॥ २ ॥

किं तदीश्वरज्योतिरग्निसूर्यादिज्योतिरिवोज्ज्वलं ततो विलक्षणं वेति जिज्ञासायामाह—

**ज्ञानमयत्वात्तच्चैतन्यात्मकम् ॥ ३ ॥**

तदीश्वरस्य स्वरूपभूतं ज्योतिः अग्निसूर्यादिवद्भौतिकं नास्ति किंतु चैतन्यात्मकमेव तज्ज्योतिरस्तीति ज्ञातव्यं कुतः ज्ञानमयत्वात् ज्ञानं वेदनं तद्रूपमित्यर्थः यदिदं सर्वजीवेषु सुखदुःखादिवेदनात्मकं ज्ञानं वर्तते तदखिलमीश्वरज्योतिष एवांशभूतमस्ति ( सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, विज्ञानं ब्रह्म ) इत्यादिश्रुतिष्वीश्वरस्य ज्ञानस्वरूपत्वमेव प्रतिपादितमतश्चिन्मयं ज्ञानप्रकाशात्मकं तज्ज्योतिरवगंतव्यम् ॥ ३ ॥

क्या वो ईश्वरका स्वरूपभूत ज्योति अग्नि सूर्य आदिके समान प्रकाशवान् है किंवा तिससें विलक्षण है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( ज्ञानमयत्वात्त-

चैतन्यात्मकम् ) सो ईश्वरका स्वरूपभूत ज्योतिः अग्नि सूर्य आदिके समान भौतिक नहि है किंतु सो चैतन्यात्मकं कहिये चेतनरूप ज्योति है क्योंकि ज्ञानमयत्वात् कहिये वेदनरूप जो ज्ञान है सोई उसका स्वरूप है यह जो सर्व जीवोंमें जाननारूप ज्ञान है सो सबी ईश्वरकी ज्योतिकाहि अंशरूप है ऐसा जानना चहिये ( सत्य ज्ञान और अनंतरूप ब्रह्म है ज्ञानहि ब्रह्म है ) इत्यादि श्रुतियोंमें ईश्वरको ज्ञानस्वरूपहि प्रतिपादन किया है इसलिये चैतन्यमय ज्ञान प्रकाशरूप सो ज्योति है ऐसा जानना चहिये इति ३

एवमीश्वरस्य चेतनस्वरूपत्वमभिधायाधुना सद्रूपत्वं निरूपयति

तन्नित्यमविकारित्वात् ॥ ४ ॥

तदीश्वरस्य चैतन्यात्मकं ज्योतिर्नित्यं सद्रूपं विज्ञेयं कुतः अविकारित्वात् विकाराभावादित्यर्थः यद्धि वस्तु विकारशीलं भवति तदेवांते विनश्यति यथेदं शरीरं जायते वर्द्धते क्षीयते च ततो विनश्यति अवस्थांतरप्राप्तिर्हि विकारोऽभिधीयते तदभावादीश्वरस्याविनाशित्वं बोद्धव्यं ( अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा, नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां, अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं

ततं, स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्) इत्यादि श्रुतिस्मृतिष्वपीश्वरस्याविनाशित्वं निरूपितं ततो विनाशाभावान्नित्यत्वमवसेयम् ॥ ४ ॥

इसप्रकार ईश्वरका चेतनस्वरूपपणा निरूपण करके अब तिसका सत्यपणा वर्णन करते हैं ( तन्नित्यमविकारित्वात् ) सो ईश्वरका चेतनमय ज्योतिःस्वरूप सत्यरूप जानना चहिये क्योंकि अविकारित्वात् कहिये विकारसें रहित होनेसें जो पदार्थ विकारवाला होता है उसीका अंतमें नाशभी होवेहै जैसे यह शरीर जन्मता वढता क्षीण होता है और पीछे अंतमें नाश होजाता है तैसेहि दूसरेभी पदार्थोंमें समझलेना एक अवस्थासें दूसरी अवस्थाको प्राप्त होनेको विकार कहते हैं सो ईश्वरके स्वरूपमें नहि होनेसें तिसका अविनाशीपणा जानना चहिये तथा वृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है कि ( अरे मैत्रेयि यह आत्मा अविनाशी तथा क्षयवृद्धिसे रहित है ) तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( सो परमेश्वर प्रकृति आदि नित्य पदार्थोंकाभी नित्य है और मन बुद्धि आदि चेतनोंकाभी चेतन है ) तथा भगवत्गीतामेंभी लिखा है कि ( जिस परमात्माके स्वरूपसें यह सर्व जगत् व्याप्त होरहाहै उसको तूं

अविनाशी जान ) तथा पातंजलयोगसूत्रोंमेंभी लिखा है कि सो ईश्वर पहलेके ब्रह्मा आदि वडोंकाभी वडा है क्योंकि उसका कवी कालसें अंत नहि होता है। इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंमें ईश्वरका अविनाशीपणा कथन किया है इसलिये विनाशसें रहित होनेसें तिसका सत्यपणा निश्चय करना चहिये इति ॥ ४ ॥

तदेवं सूत्रद्वयेनेश्वरस्वरूपस्य चेतनत्वं सद्रूपत्वं च प्रदर्श्याधुना तस्यानंदरूपत्वमपि दर्शयति

**परप्रेमास्पदत्वाच्चानंदमयम् ॥ ५ ॥**

तदीश्वरस्य स्वरूपं आनंदमयमपि ज्ञातव्यं कुतः परप्रेमास्पदत्वात् सर्वेषां जीवानां जीवनहेतुत्वादात्मस्वरूपतया सुखहेतुत्वाच्चानंदमयत्वमीश्वरस्य निश्चीयते ( न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवंत्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवंति न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेय ) इत्यादि श्रुतिषु तदंशरूपस्यात्मनः परप्रेमास्पदत्वं प्रसिद्धमेव ( आनंदो ब्रह्म विज्ञानमानंदं ब्रह्म एष ह्येवानंदयाति एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंती ) तिश्रुतिवचनेषु चेश्वरस्यानंद-

मयमेव स्वरूपं निरूपितं ततः सच्चिदानंदमयमीश्वरस्य स्वरूपं विज्ञेयमिति सूत्रत्रयस्य समुच्चितोर्थः ५

इसप्रकार दोसूत्रोंकरके ईश्वरके स्वरूपका चेतनपणा और सत्यपणा निरूपण करके अत्र तिसका आनंदमयपणाभी वर्णन करते हैं ( परप्रेमास्पदत्वाच्चानंदमयम् ) सो ईश्वरका स्वरूप आनंदमयभी जानना चहिये क्योंकि परप्रेमास्पदत्वात् कहिये सबसें अधिक प्रेमका स्थान होनेसें और सो सर्व जीवोंके जीवनका हेतु होनेसें तथा आत्मरूपसें सबको सुखका हेतु होनेसें ईश्वरका स्वरूप आनंदमय समझना चहिये तथा बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है कि ( अरे मैत्रेयि पुत्र पुत्रोंके लिये प्यारे नहि होते किंतु अपने आत्माके लिये पुत्र प्यारे होते हैं तथा धन धनके लिये प्रिय नहि होता किंतु आत्माके लिये धन प्रिय होता है इसलिये यह आत्मा सबसें प्यारा है पुत्रसें प्यारा है धनसें प्यारा है ) इत्यादि श्रुतियोंमें ईश्वरके अंशरूप आत्माका परप्रेमका आस्पदपणा प्रसिद्धहि है तथा ( आनंद ब्रह्म है ज्ञान और आनंदस्वरूप ब्रह्म है येहि सर्व जीवोंको आनंद देता है इसी परमात्माके आनंदकी लेशमात्रको सर्व जीव भोगते हैं ) इत्यादि श्रुतियोंमेंभी ईश्वरका स्वरूप आनंदमय निरूपण किया है

सो इस रीतिसें सत् चित् आनंदमय ईश्वरका स्वरूप जानना चहिये यह पिछले तीनों सूत्रोंका एकठा अर्थ है इति ॥ ५ ॥

नन्वेकस्येश्वरस्य सच्चिदानंद इति त्रिप्रकारं स्वरूपं कथं भवितुमर्हतीत्यत्राह

**विशेष्यविशेषणभावत्वादेकविधम् ॥ ६ ॥**

ईश्वरस्यैकविधं चिन्मयं ज्योतीरूपमेव स्वरूपमस्ति न त्रिविधमिति ज्ञातव्यं कुतः विशेष्यविशेषणभावत्वात् चिद्रूपस्यैव सदानंदपदे विशेषणीभूते स्तः। तदीश्वरस्य चिन्मयं स्वरूपं त्रिकालाबाध्यत्वात्सदित्युच्यते सुखहेतुत्वाच्चानंदमयमित्यभिप्रायः। यथा वह्नेः प्रकाशात्मकं स्वरूपं दहनत्वं स्वभावस्तद्वदीश्वरस्यापि चिन्मयं स्वरूपमानंदस्तस्य स्वभावः सदिति विशेषणमित्येवमेकविधमेवेश्वरस्य स्वरूपं वेदितव्यम् ॥ ६ ॥

ननु एक ईश्वरका सत् चित् आनंद इसप्रकारसें तीन प्रकारका स्वरूप कैसे होसकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (विशेष्यविशेषणभावत्वादेकविधम्) ईश्वरका एक प्रकारका चैतन्य ज्योतिर्मय स्वरूपहि जानना चहिये तीन प्रकारका

नहि क्योंकि विशेष्यविशेषणभावत्वात् कहिये चित् रूपकेहि सत् और आनंद यह दोनों पद विशेषणरूप हैं अर्थात् ईश्वरका स्वरूप सर्वदास्थायी त्रिकालाबाध्य होनेसें सत् कहिये हैं और सब जीवोंको सुखका हेतु होनेसें आनंदरूप कहिये हैं यह अभिप्राय है जैसे अग्निका प्रकाश स्वरूप है और दाहकपणा स्वभाव है तैसेहि चैतन्यरूप तो ईश्वरका निजस्वरूप है और आनंद उसका स्वभाव है तथा सत् यह उसका विशेषण है इसप्रकार चैतन्यमय एक प्रकारकाहि ईश्वरका स्वरूप है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ६ ॥

एवंचेत् तर्हि वेदांतशास्त्रेषु ब्रह्मेश्वरभेदेन किमर्थं परमात्मनो द्विविधं स्वरूपं निरूपितमित्यत्राह

**एकस्यैव संज्ञाभेदोऽवस्थाभेदात् ॥ ७ ॥**

एकस्यैव परमात्मनोऽवस्थाभेदात् संज्ञाभेदो भवति नतु स्वरूपभेदेनेति ज्ञातव्यं सृष्ट्यादौ निर्विकल्पशांतरूपेण स्थितस्य परमात्मनो व्यापकत्वात् ब्रह्मेति संज्ञा भवति तस्यैव च पुनर्जगद्रचनयेशितृत्वभावेनेश्वर इति संज्ञा जायते यथैकस्यैव पुरुषस्य समाहितचित्तस्य योगीति संज्ञा भवति यज्ञादिकर्मसु प्रवर्तमानस्य च कर्मीति संज्ञा जायते तद्वद-

त्रापि द्रष्टव्यं तस्मादेकविधमेव परमात्मनः स्वरूपमस्तीति निश्चेयम् ॥ ७ ॥

जो इसप्रकारसें परमात्माका एकहि प्रकारका स्वरूप है तो फिर वेदान्तशास्त्रोंमें ब्रह्म और ईश्वर भेदसें शुद्ध और शबल दो प्रकारका परमात्माका स्वरूप क्यों कथन किया है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( एकस्यैव संज्ञाभेदोऽवस्थाभेदात् ) एकहि परमात्माका केवल अवस्थाके भेदसें दो प्रकारका नाम होवे है स्वरूपभेदसें नहि ऐसा जानना चहिये सो जब सृष्टिके आदिमें परमात्मा निर्विकल्प शांतरूपसें सर्वत्र समान व्यापक होवे है तो तब वो ब्रह्म कहलाता है और जब जगत्की रचना करनेसें सर्व जीवोंका अंतर्यामी होवे है तो उसका नाम ईश्वर होता है जैसे एकहि पुरुष जब समाधिमें स्थित होवे है तो योगी कहलाता है और जब यज्ञादिकर्मोंको करता है तब कर्मी कहा जावे है तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये इसलिये परमात्माका एकहि प्रकारका स्वरूप है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ७ ॥

ननु ब्रह्मेति नपुंसकलिंगमीश्वर इति पुंलिंगमेवं लिंगभेदाद्ब्रह्मेश्वरयोः कथमेकत्वं संभवतीत्यत्राह

लिङ्गभेदान्नेति चेन्नैकार्थाभिधायित्वात् ॥८॥

ब्रह्मेश्वरादिशब्दानां लिंगभेदाद्ब्रह्मेश्वरयोरेकत्वं न संभवतीति चेत् नैवं शंकनीयं कुतः एकार्थाभिधायित्वात् नपुंसकपुंलिंगशब्दानामेकस्यैवार्थस्य वाचकत्वात् । ( सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, आत्मा वा एक एवाग्र आसीत्, तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय, सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, पुरुष एवेदꣳ सर्वं, ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं, ईशावास्यमिदꣳ सर्वं, तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् । यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ) इत्यादिश्रुतिवचनैर्नपुंसकपुंलिंगशब्दानामेकार्थविषयत्वमेवावसीयते ततो ब्रह्मेश्वरयोः पृथक्त्वं नास्तीति वेदितव्यं तद्वदन्यत्रापि सर्वत्र पुंलिंगनपुंसकसगुणनिर्गुणादिब्रह्मविशेषणानामेकार्थविषयत्वमेवावसेयं यत्तु क्वचिन्माण्डूक्याद्युपनिषत्सु परमात्मनश्चतुष्पात्त्वनिरूपणेन ब्रह्मेश्वरयोः पृथक्त्वं प्रतीयते तदपि सृष्ट्यवस्थाशान्तावस्थाभेदेनैव विज्ञेयं नतु स्वरूपभेदेन नो चेदुक्तश्रुतिवचनानां परस्परं विरोधो भविष्यतीति ज्ञातव्यम् ॥ ८ ॥

ननु ब्रह्म यह शब्द नपुंसकलिंग है और ईश्वर यह शब्द पुंलिंग है इस प्रकार लिंगके भेद होनेसें ब्रह्म और ईश्वर दोनों एक कैसे होसकते हैं ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( लिङ्गभेदान्नेति चेन्नैकार्थाभिधायित्वात् )। ब्रह्म और ईश्वर आदि शब्दोंके लिंगभेदहोनेसें ब्रह्म और ईश्वरका एकपणा कैसे हो सकता है ऐसी शंका नहि करनी चाहिये क्योंकि एकार्थाभिधायित्वात् कहिये नपुंसक और पुंलिंग शब्द दोनों एकहि परमात्माके वाचक हैं दो पदार्थोंके वाचक नहि हैं जैसे कि ( सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ) यहां नपुंसकलिंग है और ( आत्मा वा एक एवाग्र आसीत् ) यहां पुंलिंग है ( तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय) यहां नपुंसकलिंग है और (सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय ) यहां पुंलिंग है ( सर्वं खल्विदं ब्रह्म ) यहां नपुंसकलिंग है और ( पुरुष एवेदꣳ सर्वं ) यहां पुंलिंग है ( ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं ) यहां नपुंसकलिंग है और ( ईशावास्यमिदं सर्वं ) यहां पुंलिंग है ( तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ) यहां नपुंसकलिंग है और ( यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते )

यहां पुंलिंग शब्द है सो इन श्रुतिवचनोंमें नपुंसक और पुंलिंग शब्दोंका एकहि अर्थ वर्णन किया है और ब्रह्म ईश्वरका एकपणा निरूपण किया है इसलिये ब्रह्म और ईश्वरमें भिन्नपणा नहि है ऐसा जानना चहिये । तैसेहि औरभी सब जगा पुंलिंग नपुंसक सगुण निर्गुण आदि जितने ब्रह्मकेविशेषण है सोसबी एक ईश्वरकेहिजान लेने चहिये और जो कहीं मांडूक्य आदि उपनिषदोंमें परमात्माके चार पाद निरूपण करनेमें ब्रह्म और ईश्वरका भिन्नपणा कथन किया प्रतीत होवेहै सो भी सृष्टि अवस्था और शांत अवस्थाके भेदसें कथन किया हूया है स्वरूपभेदसें नहि ऐसा जानना चहिये नहि तो ऊपर लिखे श्रुतिवचनोंमें परस्परविरोध होवेगा इसलिये ब्रह्म ईश्वर दोनों एक परमात्माके हि नाम हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ८ ॥

**एतेन मायाभासः प्रत्युक्तः ॥ ९ ॥**

एतेन ब्रह्मेश्वरयोरेकत्वप्रतिपादनेन मायायां ब्रह्मणः प्रतिबिंबेनेश्वरो भवतीति यन्नवीनवेदांतिनां मतं तदपाकृतं वेदितव्यं । एकमेवाद्वितीयमिति श्रुतेः सृष्ट्यादौ द्वितीयस्य वस्तुनः प्रतिषेधात्

अन्यस्य ह्यन्यस्मिन् प्रतिबिंबो जायते नतु स्वस्य स्वस्मिन् प्रतिबिंबः संभवति न च स्वशक्तावपि स्वस्य प्रतिबिंबो युज्यते नहि वह्नेः स्वदहनशक्तौ प्रतिबिंबो जायते मायाशक्तेर्ब्रह्मणः स्वरूपभूतत्वान्न ततः पृथक्त्वमस्तीति पूर्वमेव निर्णीतं तस्याः पृथक्त्वे त्वनिर्वचनीयत्वेपि भावरूपत्वब्रह्मविलक्षणत्वानादित्वाद्यंगीकारात् द्वैतापत्तिर्भवेदेव ततश्चाद्वैतश्रुतिविरोधो दुर्निवारः स्यात् । ( मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतदि)त्यादि वेदवचनानीश्वरस्य मायाख्यशक्तिमत्त्वं प्रतिपादयंति न तु तत्संबंधेन तस्योद्भूतत्वं नच जीवदृष्टांतेनेश्वरस्याप्युपाधिमत्त्वकल्पना युक्ता (निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनमि)त्यादिश्रुतिवचनेषु तस्य शुद्धत्वाभिधानात् तस्मात् शुद्धसच्चिदानंदमयमेवेश्वरस्य स्वरूपमस्तीति ज्ञातव्यं ( माया चाविद्या च स्वयमेव भवति मायाभासेन जीवेश्वरौ करोती)ति श्रुतिवचनं तु केवलं स्थूलमतीनां साक्षादद्वैतबोधासंभवात् जीवेश्वरयोरविद्यामायोपाधित्वं प्रकल्प्य भागत्यागलक्षणया शुद्धब्रह्मावबोधयतीति वेदितव्यं । नहि माया चाविद्या च स्वयमेव भवतीति जडायाः प्रकृते रूपद्वयेन

स्वयमेव परिणमनं संगच्छते नो चेत् सा जगद्रूपापि स्वयमेव भविष्यति तथा सति चेश्वरस्य कर्तृत्वाभावान्निरर्थकत्वं सेत्स्यति ( स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ईक्षतेर्नाशब्दमि)त्यादिश्रुतिस्मृतयश्चापार्थाः स्युः । न च ब्रह्मसंकल्पेनेश्वरसंकल्पेन वा तस्याः परिणमनं संभवति ब्रह्मणि संकल्पानंगीकारात् ईश्वरस्य च प्रकृतिविभागानंतरभावित्वात् । न चापि ब्रह्मसंनिधानेन तस्याः परिणमनं युक्तं नित्यसृष्टिप्रसंगात् तस्मादीश्वरस्य मायाभासत्वं नास्तीति निश्चेयम् ॥ ९ ॥

एतेन मायाभासः प्रत्युक्तः । इस प्रकार उक्त रीतिसें ब्रह्म और ईश्वरके एकत्वके निरूपणसें मायामें ब्रह्मके प्रतिबिंब पडनेसें ईश्वर होता है ऐसा जो नवीन वेदांतियोंका मत है सो निराकरण किया जान लेना क्योंकि ( एकमेवाद्वितीयं ) इस श्रुतिवचनमें सृष्टिसें पहले एक ब्रह्मके सिवाय दूसरी वस्तुका निषेध किया है सो प्रतिबिंब तो दूसरेका दूसरी वस्तुमें पडता है अपने आपमें अपना प्रतिबिंब नहि हो सकता तथा अपनी शक्तिमें भी अपना प्रतिबिंब नहि होसकता जैसे अग्निका अपनी दहनशक्तिमें प्रतिबिंब नहि होता है सो मायाशक्ति तो ब्रह्मका स्वरूपहि होनेसें ब्रह्मसें

भिन्न नहि है इस वार्ताका पीछे निर्णय कर आये हैं और जो मायाको ब्रह्मसें भिन्न मानें तो अनिर्वचनीय माननेपरभी भावरूप वस्तु होनेसें ब्रह्मसें विलक्षण होनेसें और अनादि होनेसें द्वैतपणेकी प्राप्ति होवेगी तो फिर अद्वैतप्रतिपादकश्रुतिवचनोंका विरोध होवेगा किंच ( प्रकृतिको माया जानना चहिये और मायावालेको ईश्वर जानना चहिये सो मायावाला इस जगत्को रचता है ) इत्यादिश्रुतियोंके वचन ईश्वरको मायानामक शक्तिवाला कहते हैं मायाके आभाससें तिसको उत्पन्न हूया नहि कहते और जैसे जीव अंतःकरणउपाधिवाला है तैसे ईश्वरसेंभी उपाधिकी कल्पना करनी ठीक नहि है क्योंकि ईश्वरका स्वरूप तो ( निष्कल निष्क्रिय शांत निर्मल और निरंजन है ) इत्यादिश्रुतियोंमें उपाधिरहित शुद्ध कथन किया है इसलिये शुद्ध सच्चिदानंदमय ईश्वरका स्वरूप है ऐसा निश्चय करना चहिये और जो ( प्रकृति माया और अविद्या आपहि हो जाती है और माया आभाससें जीव और ईश्वरको बनाती है ) ऐसा जो श्रुतिवचन है सो तो केवल स्थूलबुद्धिवाले जिज्ञासुवोंको साक्षात् अद्वैत ब्रह्मका बोध नहि होनेसें जीव और ईश्वरकी अविद्या और माया उपाधिकी कल्पना करके फिर भागत्यागलक्षणासें शुद्धब्रह्मस्वरूपके बो-

धन करनेके लिये है ऐसा जानना चहिये क्योंकि ( माया और अविद्या आपहि होजाती है ) इस प्रकार जड होनेसें प्रकृति दोरूपसें आपहि परिणामको प्राप्त नहि हो सकती है नहि तो सर्व जगत्‌रूपभी आपहि होजावेगी तो फिर ईश्वरको जगत्‌का कर्तापणा नहि होनेसें निरर्थकपणा होवेगा ( ईश्वरने विचार किया कि मैं जगत्‌को रचुं विचारकरके ईश्वर जगत्‌को रचता है प्रकृति नहि रचती ) इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंके वचनभी निरर्थक होवेंगे तथा ब्रह्मके संकल्पसें वा ईश्वरके संकल्पसेंभी प्रकृतिका दोरूपसें परिणाम नहि हो सकता क्योंकि वेदांतमतमें ब्रह्ममें संकल्प नहि माना है और ईश्वर प्रकृतिके माया और अविद्या दो रूप होने पीछे बनताहै। तथा ब्रह्मकी समीपता मात्रसेंभी प्रकृतिका परिणाम होना मानना ठीक नहि है क्योंकि वैसा माननेमें तो फिर नित्यसृष्टिप्रसंगदोषकी प्राप्ति होवेगी इसलिये ईश्वरको मायाभासपणा नहि है अर्थात् शुद्ध सच्चिदानंदमय ईश्वरका स्वरूप है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥९॥

तदेवमीश्वरस्य स्वरूपलक्षणमभिधायाधुना तस्य विशेषबोधार्थमन्यान्यपि लक्षणानि निरूपयति

**सर्वत्र क्रियाप्रवृत्तिस्तद्योगात् ॥ १० ॥**

सर्वत्र ब्रह्मांडे चराचरेषु जीवेषु या क्रिया दृश्यते तस्याः समस्तायाः परमेश्वरचैतन्यसंयोगेनैव प्रवृ-

त्तिर्भवतीति ज्ञातव्यं क्वचिज्जडपदार्थेष्वपि या क्रियाऽवलोक्यते तत्रापि परंपरान्वेषणेन चैतन्ययोग एवोपलभ्यते वृष्टिपतननदीचलनादिक्रियास्वपीश्वरसंकल्पयोगोऽनुसंधेयः एवं सर्वत्र क्रियाशक्तेरीश्वरचैतन्यसंयोगेनैव स्फुरणं जायते ततः क्रियाप्रवृत्तिहेतुत्वेन सर्वत्रेश्वरचैतन्यस्य ज्ञानं संपादनीयमित्यभिप्रायः ॥ १० ॥

सो इसप्रकार ईश्वरका स्वरूपलक्षण वर्णन करके अब जिज्ञासु जनोंको तिसके विशेष बोध होनेके लिये औरभी लक्षण निरूपण करते हैं ( सर्वत्र क्रियाप्रवृत्तिस्तद्योगात् ) सर्व ब्रह्मांडमें चराचर जीवोंमें जो क्रिया होरही है सो सब तिस ईश्वरकी चेतनताके संयोगसेंहि प्रवृत्त होवे है ऐसा जानना चहिये तथा कहीं जड पदार्थोंसेंभी जो क्रिया देखनेमें आती है तहांभी परंपरा विचारकर देखनेसें चेतनका संयोग प्रतीत होता है और जो वृष्टिका पडना नदीयोंका चलना आदि क्रियामें प्रत्यक्ष चेतनताका संयोग नहि प्रतीत होता तहांभी ईश्वरके संकल्पकी प्रेरणासेंहि वृष्टिआदि क्रिया जगत्में होती है इसप्रकार सब जगा ईश्वरके चैतन्यके संयोगसें क्रियाशक्तिका स्फुरण होवे है सो क्रियाकी प्रवृत्तिका हेतु होनेसें सब जगा ईश्वरके

चैतनस्वरूपका अनुभवसे ज्ञान संपादन करना चहिये इति ॥ १० ॥

किंच ।

तदाधारो विश्वस्य ॥ ११ ॥

तदीश्वरस्य चैतन्यमेवास्य चराचरस्य सर्वस्य जगतः किलाधारोस्तीति ज्ञातव्यं तेनैव विधृतान्येतानि चन्द्रादित्यादिग्रहाणां मंडलान्याकाशे परिवर्तंते सर्वाणि जलस्थलनभश्चारिणां जीवानां शरीराण्यपीश्वरचैतन्याश्रितान्येव सर्वत्र कार्येषु प्रवर्तंते वृक्षलतावनौषधयश्चापि तद्युक्ता एव परितः फलंति वर्धंते च चैतन्यवियुक्तानि त्वाकाशगतमंडलानि जीवानां शरीराणि वनस्पतयश्च न क्षणमपि स्थातुं शक्नुवंत्यधः पतंति म्रियंते विशीर्यंते वेति ॥ ११ ॥

तथा ( तदाधारो विश्वस्य ) सो ईश्वरकी चेतनता इस चराचर संपूर्ण जगत्का आधार है ऐसा जानना चहिये उसीकरके धारण किये हूये आकाशमें चन्द्रमा सूर्य ग्रह तारागणोंके मंडल परिभ्रमण करते हैं तथा जल स्थल और आकाशमें विचरनेहारे सब जीवोंके शरीरभी तिस ईश्वरकी चेतनताके आश्रयसेंहि सवप्रकार व्यवहारोंमें वर्तते हैं तथा वृक्ष लता और वनकी सव औषधियांभी तिस चेतनताके सहारेसेंहि

सर्व तरफसें फूलती फलती और वृद्धिको प्राप्त होती रहती हैं और तिस चेतनताके वियोग होनेसें तो आकाशमें रहनेहारे मंडल जीवोंके शरीर और वनस्पतियां सब एक क्षणभरभी ठहर नहि सकते हैं अर्थात् मंडल तत्काल नीचे गिरजाते हैं शरीर मर जाते हैं वृक्ष लता सूक जाते हैं विखर जाते हैं इसलिये सर्व जगत्का आधार एक ईश्वरहि है ऐसा जानना चहिये ॥ ११ ॥

ननु परमेश्वरचैतन्यस्याशनपानचलनवलनादिक्रियातः स्वशरीरे त्वनुभवो जायते परंत्वन्यशरीरेषु वा सूर्यचन्द्रादिमंडलेषु वा स्वर्गस्थदेवादिशरीरेषु तस्य कथं ज्ञानं भवेदित्यत्राह

स्वशरीरवदन्यत्र व्याप्तिः ॥ १२ ॥

यथा स्वशरीरे चैतन्यस्यानुभवो जायते तद्वदेवान्यत्रापि स्थिरचरदृश्यादृश्यशरीरेषु सर्वत्रेश्वरचैतन्यस्य व्यापकत्वमवसेयं यथा सर्वजीवानां शरीराणि पांचभौतिकानि संत्येवं चैतन्ययुक्तान्यप्यखिलानि संतीति ॥ १२ ॥

ननु परमेश्वरकी चेतनताका खान पान चलन वलन आदि क्रियासें अपने शरीरमें तो अनुभव होवे है परंतु दूसरे शरीरोंमें वा सूर्य चन्द्रमा आदि

मंडलोंमें वा स्वर्गमें रहनेहारे देवता आदि शरीरोंमें तिस चेतनताका कैसे अनुभव होसके है ऐसी अपेक्षा होनेसें कहते हैं ( स्वशरीरवदन्यत्र व्याप्तिः ) जैसे अपने शरीरमें चेतनताका अनुभव होवे है तैसेहि दूसरी जगाभी चराचर दृश्य और अदृश्य शरीरोंमेंभी सब जगा ईश्वरकी चेतनताका व्यापकपणा निश्चय करना चहिये जैसे सर्व जीवोंके शरीर पंचभूतमय हैं तैसेहि सवी शरीर चेतनताकरकेभी युक्त समझलेने चहिये इति ॥ १२ ॥

एकशरीरगतचैतन्यज्ञानेनाखिलब्रह्मांडगतजीवशरीरेषु तस्य केन प्रकारेण ज्ञानं भवतीति जिज्ञासायामाह

**एकांशात्सर्वज्ञानं मृत्पिंडवत् ॥१३॥**

पदार्थस्यैकांशज्ञानात्तस्य सर्वज्ञानं जायते तत्रेदं निदर्शनं मृत्पिंडवदिति ( यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् ) इत्यादिश्रुतिवचनानुसारेणैकत्रैकस्य मृत्पिंडस्य ज्ञानेन सर्वत्र सर्वं मृन्मयं घटशरावादि वस्तुजातं ज्ञातं भवत्येवमेकत्रैकस्मिन् शरीरे चैतन्यज्ञानेन सर्वत्र सर्वशरीरेष्वीश्वरचैतन्यस्य ज्ञानं संभवतीति ज्ञातव्यम् ॥ १३ ॥

एक शरीरगत चैतन्यके ज्ञानसें संपूर्ण ब्रह्मांडगत जीवोंके शरीरमें तिसका ज्ञान किसीरीतिसें होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( एकांशात्सर्वज्ञानं मृत्पिंडवत् ) पदार्थके एक अंशके ज्ञान होनेसें तिस संपूर्ण पदार्थका ज्ञान होजाता है जैसे कि छांदोग्य उपनिषत्में लिखा है कि ( हे सोम्य जैसे एक मृत्तिकाके पिंडके ज्ञानसे संपूर्ण मृत्तिकाके बने हूये घट शराव कूंडे सटकी आदि सर्व वर्तनोंका ज्ञान होजाता है तैसेहि एक शरीरमें एक जगा चैतन्यके ज्ञान होनेसें सर्व ब्रह्मांडगत सर्व जीवोंके शरीरोंमें ईश्वरकी चेतनताका ज्ञान होजाता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १३ ॥

ननु ( द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योऽभिचाकशीति ) इत्यत्र जीवात्पृथगीश्वरस्य सर्वशरीरेषु स्थितिः श्रूयते तत्कथमेकस्य चैतन्यांशज्ञानेन सर्वज्ञानं भवितुमर्हतीत्यत्राह

**पृथक्त्वोक्तेरिति चेन्नासंगत्वबोधनार्थत्वात्॥**

जीवस्वरूपात्पृथगन्यरूपेणेश्वरस्य शरीरेषु स्थितिर्नास्तीति ज्ञातव्यं कुतः असंगत्वबोधनार्थत्वात् नह्युक्तश्रुतेरीश्वरस्य स्वरूपेण शरीरेष्ववस्थानं प्रयो-

जनं किंतु कर्मफलानशनेनेश्वरस्यासंगत्वबोधनमेव प्रयोजनमस्तीत्यवगंतव्यम् ॥ १४ ॥

ननु ( शरीररूप एक वृक्षमें जीव और ईश्वररूप दो पक्षी रहते हैं तिनमें एक जीव तो कर्मफलको भोगता है और दूसरा ईश्वर नहि भोगता हूया साक्षीरूप है ) इस श्वेताश्वतर उपनिषत्के वाक्यमें सर्वशरीरोंमें जीवसें भिन्न ईश्वरकी स्थिति कथन करी है तो फिर एक चेतन अंशके ज्ञानसें सर्व चैतन्यका ज्ञान कैसे होसके है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करे हैं ( पृथक्त्वोक्तेरिति चेन्नासंगत्वबोधनार्थत्वात् ) जीवसें भिन्न रूपसें ईश्वरकी शरीरोंमें स्थिति नहि हैं ऐसा जानना चहिये क्योंकि (असंगत्वबोधनार्थत्वात्) उक्तश्रुतिका अपने स्वरूपसें ईश्वरकी शरीरोंमें स्थिति बतलानेका प्रयोजन नहि है किंतु केवल कर्मफलके नहि भोगनेसें ईश्वरके असंगपणेके जाननेका प्रयोजन है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १४ ॥

कुत एतज्ज्ञायते श्रुतेरिदं प्रयोजनं तदाह

**परिच्छिन्नत्वाभावेनासंभवात् ॥ १५ ॥**

सर्वव्यापकस्येश्वरस्य परिच्छिन्नत्वाभावेन हेतुना जीवशरीरेषु पृथक् स्वरूपेणावस्थानं नैव संगच्छते नहि महाकाशस्य घटाकाशेन सह स्वकीयरूपेणापि

स्थितिः संभवति नचेश्वरस्यांतःकरणोपाधित्वमस्ति येन तस्य परिच्छिन्नत्वं स्यात् ततो जीवयुक्तेषु शरीरेष्वीश्वरस्य पृथगवस्थानं नैव संभवतीति विज्ञेयम् ॥ १५ ॥

यह वार्ता कैसी जानी जावे कि उक्त श्रुतिका यह प्रयोजन है तहां कहे हैं ( परिच्छिन्नत्वाभावेनासंभवात् ) सर्वव्यापक ईश्वरका परिच्छिन्नपणा नहि होनेसें जीवोंके शरीरोंमें अपने स्वरूपसे जुदा स्थिति नहि होसकेहै जैसे घटमें घटाकाशके साथ महाकाशकी जुदा अपने रूपसे स्थिति नहि होसके है क्योंकि ईश्वरकी अंतःकरणउपाधि नहि है जिससें कि उसका परिच्छिन्नपणा होवे इसलिये जीवात्माके सहित जीवोंके शरीरोंमें ईश्वरकी जुदा स्थिति नहि होसकती है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १५ ॥

इतश्च नेश्वरस्य शरीरेषु पृथगवस्थानं

**जीवत्वेन प्रवेशाभिधानाच्च ॥ १६ ॥**

अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति वेदवचनादीश्वरस्य जीवस्वरूपेणैव शरीरेषु प्रवेशो जायते नतु पूर्णस्वरूपेणेत्यतो नेश्वरस्य जीवात्पृथक् शरीरेषु स्थितिरस्तीति ॥ १६ ॥

इससेंभी ईश्वरकी जुदा स्थिति नहि हो सक्ती है ( जीवत्वेन प्रवेशाभिधानाच्च ) ईश्वरने विचार किया कि इस जीवात्मारूपसें प्रवेश करके मैं नामरूपको प्रगट करूं सो इस च्छांदोग्य उपनिषत्के वचनसें ईश्वरका शरीरमें जीवरूपसेंहि प्रवेश होवे है अपने निजपूर्णस्वरूपसे नहि होवे है इसलिये शरीरोंमें जीवसें जुदा ईश्वरकी स्थिति नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १६ ॥

यद्येवं तर्हि द्वासुपर्णा सयुजा सखाया इत्यस्य वेदवचनस्य का गतिरित्यत्राह

**सामीप्यात्तु तद्वचनं व्यापकत्वात् ॥१७॥**

तुशब्देन शंकां व्यावर्तयति ईश्वरस्य सर्वव्यापकत्वात् सर्वदा सर्वजीवशरीरेषु सांनिध्यं वर्तते यथा घटेषु महाकाशस्य ततो गंगायां घोष इतिवत्सामीप्यभावेनांतर्यामितया स्थितस्येश्वरस्य शरीरेषु स्थितिरिव स्थितिरुच्यते तस्मान्नोक्तश्रुतेर्विरोधोऽस्तीति ज्ञातव्यम् ॥ १७ ॥

जो यह ऐसी वार्ता है तो फिर द्वासुपर्णा सयुजा सखाया इस पूर्वोक्त वेदवचनकी क्या व्यवस्था होगी तहां कहते हैं (सामीप्यात्तु तद्वचनं व्यापक-

त्वात् ) ईश्वरको सर्वव्यापक होनेसें तिसकी सर्व शरीरोंमें समीपता रहती है जैसे सर्व घटोंमें महाकाशकी समीपता रहती है तो जैसे कोई कहे गंगामें ग्राम है तैसेहि समीपभावसें अंतर्यामिरूपसें स्थित हूये ईश्वरकी सर्वशरीरोंमें स्थितिकी न्यांई स्थिति कही जावे है इसलिये उक्त श्रुतिवचनका यहां विरोध नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १७ ॥

ननु भवतु नाम सर्वशरीरेषु जीवात्मन एव चैतन्यं परंतु तेन जीवचैतन्यज्ञानेनेश्वरचैतन्यस्य कथं ज्ञानं भवितुमर्हति तत्राह

घटसागरांबुवदेकरूपकत्वात् ॥ १८ ॥

जीवेश्वरयोः परस्परं भेदो नास्तीति ज्ञातव्यं कुतः एकरूपत्वात् सच्चिदानंदमयत्वेनोभयोरेकमेव हि रूपं विद्यते केवलमुपाधिभेदादेव तयोर्भेदः प्रतीयते न तु स्वरूपेण घटसागरांबुवदिति दृष्टांतोपादानं यथा घटजलस्य सागरजलेन स्वरूपतो भेदो नैव भवत्येवं जीवेश्वरयोरप्यभेदो विज्ञेयः। तस्माज्जीवचैतन्यज्ञानेनेश्वरचैतन्यस्य बोधो भवितुमर्हतीति ॥ १८ ॥

ननु सर्वशरीरोंमें जीवात्माकी चेतनता रहो परंतु तिस जीवकी चेतनताके ज्ञानसें ईश्वरके चैतन्यका कैसे

ज्ञान होसकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( घटसागरांबुवदेकरूपत्वात् ) जीव और ईश्वरका परस्पर आपसमें कुछ भेद नहि है क्योंकि एकरूपत्वात् कहिये सत् चित् आनंद स्वरूप होनेसें दोनोंका एकहि रूप है घटसागरांबुवत् यह दृष्टांत है जैसे घटके जलका और समुद्रके जलका केवल छोटी वडी उपाधिसें भेद प्रतीत होताहै परंतु तिनके जलमात्र स्वरूपसें कुछ भेद नहि होता तैसे हि जीव और ईश्वरमेंभी कुछ भेद नहि है ऐसा जानना चाहिये इसलिये जीवके चैतन्यके ज्ञानसें ईश्वरचैतन्यका ज्ञान होना संभवे है इति ॥ १८ ॥

दृष्टांतांतरमाह

## दीपादित्यवच्च ॥ १९ ॥

दीपादित्यवदपि जीवेश्वरयोरेकरूपत्वमवसेयं यथा दीपादित्ययोः परिमाणतो लघुदीर्घत्वेपि तेजस्तत्त्वेनोभयोरेकरूपत्वमस्ति तद्वज्जीवेश्वरयोरपि परिच्छिन्नापरिच्छिन्नत्वेपि सच्चिदानंदमयत्वेनोभयोरेकस्वरूपत्वमवगंतव्यं ( तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् , ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः

सनातनः ) इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनानुसारेणेश्वरस्यांशभूतो हि किलायं जीवस्ततस्तस्यैकत्र शरीरे चैतन्यज्ञानेन सर्वत्र व्यापकस्याखिलजगद्गतजीवशरीरगतस्येश्वरचैतन्यस्य सुतरां ज्ञानं भवितुं शक्यमिति ॥ १९ ॥

अब जीवईश्वरके एकरूपपणेमें दूसरा दृष्टांत कहते हैं ( दीपादित्यवच्च ) दीपक और सूर्यकी न्यांईभी जीव और ईश्वरका एकरूपपणा समझना चहिये सो जैसे दीपक और सूर्यमें परिमाणमें वडा छोटापण होनेपरभी अग्नितत्त्वरूपसें दोनोंका एक जैसा स्वरूप है तैसेहि जीव और ईश्वरमेंभी परिच्छिन्नपणा और व्यापकपणेका भेद होनेपरभी सत् चित् आनंद स्वरूपपणेमें दोनोंका एक जैसाहि स्वरूप है ऐसा जानना चहिये ( तिस ईश्वरकेहि अवयवरूप जीवोंकरके यह सर्व जगत् पूर्ण हो रहा है ) तथा हे अर्जुन इस जगत्में मेराहि अंश जीवरूप बना हूया है, इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंके वचनके अनुसार यह जीव ईश्वरकाहि अंशरूप है सो एकशरीरमें तिस चेतनपणेके ज्ञान होनेसें सर्वत्र व्यापक सर्वजगत्के जीवोंके शरीरोंमें रहनेहारे ईश्वरके चैतन्यका सहजमें हि ठीक ज्ञान होसकता है इति ॥१९॥

## अतएवैक्यनिरूपणम् ॥ २० ॥

यतः परमेश्वरस्यैवांशभूतोयं जीवो न वस्त्वंतरमतएव ( ईशावास्यमिदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः, जीवो ब्रह्मैव नापरः ) इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनेषु जीवेश्वरयोरेकत्वनिरूपणं कृतमस्तीत्यवगंतव्यम् ॥ २० ॥

अतएवैक्यनिरूपणम् । जिसलिये यह जीवात्मा परमेश्वरका अंशभूत है कोई दूसरी वस्तु नहि है इसीलिये (इस सर्व जगत्को ईश्वररूपहि जानना चहिये, यह सर्व जगत् ब्रह्मरूप है, यह सर्व विश्व श्रेष्ठ ब्रह्मरूपहि है, यह जीवात्मा ब्रह्म है, तुं ब्रह्म है, प्रज्ञान ब्रह्म है, हे अर्जुन सर्व भूतप्राणियोंके हृदयमें मैंहि जीवात्मा रूपसे स्थित हूं, यह जीव ब्रह्मरूप है दूसरी वस्तु नहि है ) इत्यादि अनेक श्रुतिस्मृतियोंके वचनोंमें जीव और ईश्वरकी एकताका निरूपण किया है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २० ॥

ननु जीवेश्वरयोरेकत्वे तयोः परिच्छिन्नत्वव्यापकत्वाल्पज्ञत्वसर्वज्ञत्वाल्पशक्तित्वसर्वशक्तित्वबद्ध-

त्वनित्यमुक्तत्वादिवैलक्षण्यं कथं जातमिति जिज्ञासायामाह

व्यष्टिसमष्ट्योर्वैलक्षण्यम् ॥ २१ ॥

जीवेश्वरयोः स्वरूपतस्तुल्यत्वेपि व्यष्टिसमष्टिभावेन वैलक्षण्यं जायते तत्र जीवो व्यष्टित्वेन स्वल्पाकारत्वादल्पैरेव ज्ञानशक्त्यादिगुणैरुपेतो भवति परमेश्वरस्तु समष्टित्वेनातिविपुलाकारत्वात्पूर्णज्ञानशक्त्यादिगुणैर्युक्तो भवतीति ज्ञातव्यं यथा दीपादित्योः स्वरूपतस्तुल्यत्वेपि प्रकाशादिगुणेषु न्यूनाधिक्यं भवत्येवं जीवेश्वरयोरपि विज्ञेयं यथैकमेव गृहं दीपः प्रकाशयति सूर्यश्चाखिलमपि ब्रह्मांडं प्रकाशयत्येवं जीवेश्वरयोरल्पज्ञत्वसर्वज्ञत्वादिकं भवतीति बोद्धव्यम् ॥ २१ ॥

यदि जीव और ईश्वर दोनों एकरूप हैं तो फिर तिन दोनोंमें जीव परिच्छिन्न ईश्वरव्यापक जीव अल्पज्ञ ईश्वर सर्वज्ञ जीव अल्पशक्ति ईश्वर सर्वशक्ति जीव बद्ध ईश्वर नित्यमुक्त इत्यादि विलक्षणपणा किस कारणसें होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेसें समाधान कथन करते हैं (व्यष्टिसमष्ट्योर्वैलक्षण्यम्) यद्यपि जीव और ईश्वर दोनों स्वरूपसें तुल्यहि हैं तोभी व्यष्टिसमष्टिपणेके

कारणसे तिनमें विलक्षणता होजाती है तहां जीव व्यष्टिपणेसें तुच्छ आकारवाला होनेसें अल्पज्ञान अल्पशक्ति आदि गुणोंकरके युक्त होता है और ईश्वर समष्टिपणेसें अतिविपुल आकारवाला होनेसें संपूर्ण ज्ञान संपूर्ण शक्ति आदि गुणोंसें संयुक्त है जैसे दीपक और सूर्य दोनों स्वरूपसें एक जैसे होनेपरभी तिनमें प्रकाश उष्णता आदि गुणोंका न्यून अधिकपणा होवे है तैसेहि जीव और ईश्वरमेंभी समझलेना चहिये जैसे दीपक एकहि घरको प्रकाशता है और सूर्य सर्व ब्रह्मांडको प्रकाशता है तैसेहि जीव और ईश्वरमें अल्पज्ञता सर्वज्ञता अल्पशक्तिता सर्वशक्तिता आदि विलक्षणता होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २१ ॥

तत्र समष्टेरीश्वरत्वे किं कारणमित्यत्राह—

**पूर्णशक्तित्वादीश्वरत्वम् ॥ २२ ॥**

तत्र व्यष्टिसमष्ट्योः समष्टेः पूर्णशक्तित्वादीश्वरत्वं भवतीति ज्ञातव्यं ब्रह्मचैतन्यस्य समष्टिभागे हि पूर्णशक्तिर्भवत्यतस्तस्यैवेश्वरत्वं न जीवस्येत्यभिप्रायः ॥ २२ ॥

तहां समष्टिको ईश्वरपणा किसकारणसें होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( पूर्णशक्तित्वादी-

श्वरत्वम् ) तहां व्यष्टि और समष्टि दोनोंके वीचमें समष्टिको पूर्णशक्तिवाला होनेसें ईश्वरपणा होवे है अर्थात् ब्रह्म चैतन्यके समष्टिभागमेंहि पूर्णशक्ति रहती है इसलिये उसीको ईश्वरपणा होवे है जीवको व्यष्टि-पणेके कारणसें अल्पशक्तिपणा होनेसें ईश्वरपणा नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २२ ॥

ईश्वरस्य पूर्णशक्तित्वे किं निगमकं तत्राह—

**जगन्निर्माणात्तत्सिद्धिः ॥ २३ ॥**

जगतोऽस्य चराचरप्रपंचस्यानेकभुवनरचनावि-भूषितस्य नानाविधजीवजातिसमाकुलस्यानेकविध-भोगसामग्रीसंवलितस्य निर्माणकारित्वादीश्वरस्य पूर्णशक्तित्वं निश्चीयते नहि केनचिदल्पशक्तिके-नैवंभूतं महत्कार्यं संपादयितुं शक्यते महाविचि-त्रस्यास्य जगतो रचनैवेश्वरस्य पूर्णशक्तित्वं निग-मयतीति ॥ २३ ॥

ईश्वरमें पूर्णशक्ति है इस बातका किससें निश्चय होवे तहां कहते हैं ( जगन्निर्माणात्तत्सिद्धिः ) यह जो चराचर प्रपंच अनेक भुवनोंकी रचनासें शोभाय-मान है और नानाप्रकारके जीवोंकरके भराहूया है तथा सर्वप्रकारकी भोगोंकी सामग्री करके संयुक्त है

इसके निर्माण करनेसें ईश्वरका पूर्णशक्तिपणा निश्चय होवे है क्योंकि कोई अल्पशक्तिवाला इस प्रकारके बडे कामको नहि करसकता है इस बडे भारी विचित्र जगत्की रचनाहि ईश्वरका पूर्णशक्तिपणा बताती है इति ॥ २३ ॥

ननु ब्रह्मविष्ण्वादीनामपि वेदशास्त्रपुराणेषु सृष्टिकर्तृत्वमभिहितं तत्कथमीश्वरस्यैव जगन्निर्माणकारित्वमुच्यते तत्राह—

**द्वारभूतत्वात्तु नान्येषां तत्कर्तृत्वम् ॥ २४ ॥**

अन्येषां ब्रह्मविष्ण्वादीनां मुख्यं जगत्कर्तृत्वं नैव संभवति कुतः द्वारभूतत्वात् जगन्निर्माणे केवलं द्वारभूता हि ते भवंति प्रथमतः परमेश्वररचितैरेव पंचतत्त्वादिभिः पदार्थैस्ते पश्चाल्लब्धाधिकारा जगन्निर्माणं कुर्वंतीति वेदितव्यम् ॥ २४ ॥

ननु ब्रह्मा विष्णु आदि देवतायोंकाभी सृष्टिकर्तापणा वेदशास्त्रपुराणोंमें लिखा हूया है तो केवल ईश्वरकोहि जगत्का कर्तापणा कैसे कहते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( द्वारभूतत्वात्तु नान्येषां तत्कर्तृत्वम् ) ब्रह्मा विष्णु आदि देवतायोंको मुख्य जगत्का कर्तापणा नहि संभवे है क्योंकि द्वारभूतत्वात् कहिये जगत्की रचना करनेमें

सो केवल द्वारभूतहि होते हैं अर्थात् पहलेसें ईश्वरके रचेहूये पांच महाभूत आदि पदार्थोंसेंहि सो ईश्वरसें सृष्टि रचनेके अधिकारको प्राप्त हुये पीछे जगत्की रचना करते हैं इसलिये उनका मुख्य जगत्कर्तापणा नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २४ ॥

सृष्ट्यंतर्गतत्वाच्च ॥ २५ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यखिलदेवानां सृष्ट्यंतर्गतत्वादपि न तेषां मुख्यं जगत्कर्तृत्वं संभवति जलशायिनो भगवतो महाविष्णोर्नाभिकमलादुत्पन्नेन ब्रह्मणेदं जगन्निर्मितमित्येवं हि सर्वत्र पुराणेतिहासेष्वाख्यायते ततो जलादिपदार्थानां ब्रह्मविष्ण्वादितः पूर्वत्वमवसीयते तस्मान्न तेषां मुख्यं जगत्कर्तृत्वं संभवतीति निश्चेयम् ॥ २५ ॥

सृष्ट्यंतर्गतत्वाच्च । ब्रह्मा विष्णु शिव आदि सर्व देवतायोंको जगत्रचनाके अंतर्गत होनेसेंभी तिनको मुख्य जगत्का कर्तापणा नहि होसके है क्योंकी जलमें शयन करनेहारे विष्णु भगवान्की नाभिकमलसें उत्पन्न हूये ब्रह्माने इस जगत्को रचा है ऐसाहि सब जगा पुराणोंके इतिहासोंमें सुननेमें आता है तो इससें ब्रह्मा विष्णु आदिकोंसें जल आदि पदार्थोंका पहले विद्यमान होना निश्चय होवे है इसलिये तिनको मुख्य ज-

गत्का कर्तापणा नहि संभवे है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ २५ ॥

यद्येवं तर्हि भगवद्गीता-शिवगीता-गणेशगीतादिपुस्तकेषु कथं कृष्णशिवादिभिरात्मनो जगत्कर्तृत्वं परमेश्वरत्वं च प्रदर्शितं तत्राह—

**अभेदभावात्तु तदभिधानं संबंधात् ॥२६॥**

तुशब्देनाक्षेपं निराकरोति कृष्णशिवादीनां स्वशास्त्रेष्वात्मनः परमेश्वरत्वप्रदर्शनमभेदभावादेव विज्ञेयं ते हि सर्वव्यापकेन जगत्कर्त्रा परमेश्वरेण सहात्मनः सततमभेदं पश्यंति कुतः संबंधात् तदंशरूपत्वेन कृष्णशिवादीनां परेण ब्रह्मणा सह संबंधो वर्तते निरवयवस्यापि परमात्मनोऽशरूपत्वमुपाधिवशाद्विज्ञेयं तस्माद्ब्रह्मसंबंधात्तेषामात्मनि ब्रह्मत्वाभिमानो भवति यदा (अहं मनुरभवं सूर्यश्च) इत्यादिवेदवचनानुसारेणेतरब्रह्मज्ञानिनामप्यात्मनि ब्रह्मत्वाभिमानो जायते तदा साक्षात्तदंशानां कृष्णशिवादीनां ब्रह्मत्वाभिमाने किमु वक्तव्यं यथा राज्ञः पुत्रस्य पौत्रस्य वा मदीयमिदं राज्यमिति कथनं नानुचितं भवत्येवं कृष्णशिवादीनामप्यात्मनो जगत्कर्तृत्वादिकथनं संगच्छत इति वेदितव्यम् ॥ २६ ॥

जो इसप्रकार ब्रह्मा विष्णु शिव आदिकोंका मुख्य-जगत्कर्तापणा नहि है तो फिर भगवद्गीता शिवगीता गणेशगीता आदि पुस्तकोंमें कृष्ण शिव आदिकोंने अपनेको जगत्का कर्ता और ईश्वर क्यों कथन किया है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( अभेदभावात्तु तदभिधानं संबंधात् )तुशब्दसें शंकाका निवारण करते हैं कृष्ण शिव गणेश आदिकोंने जो अपने गीता आदि पुस्तकोंमें अपनेको परमेश्वररूप कथन किया हैसो तो अभेदभावकेकारणसें किया जानना चहिये क्योंकि सो कृष्ण शिव आदिक सर्वव्यापक जगत्कर्ता परमेश्वरसें सर्वदाकाल अपना अभेद देखते हैं क्योंकि संबंधात् कहिये परमेश्वरके विशेष अंशरूप होनेसें तिनका परब्रह्मके साथ संबंध है निरवयव परमात्माकाभी शरीररूप उपाधियोंके कारणसें अंशरूपपणा होवे है ऐसा जानना चहिये सो ब्रह्मके साथ संबंध होनेसें तिनको अपने आत्मामेंभी ब्रह्मपणेका अभिमान होता है जबकि ( मैं मनु होता भया मैंहि सूर्य हूं। ) इस बृहदारण्यक उपनिषत्के वचनके अनुसार वामदेव आदिक ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंको भी अपने आत्मामें ब्रह्मपणेका अभिमान होता है तो फिर साक्षात् परमेश्वरके अंशरूप कृष्ण शिव आदिकोंमें उसके होनेमें

क्या कहना चहिये । सो जैसे राजाका पुत्र वा पौत्र कहे कि यह राज्य हमारा है तो उसका कहना अनुचित नहि होता है तैसे हि कृष्ण शिव आदिकोंका अपनेको जगत्कर्ता ईश्वर कहना बनसकता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २६ ॥

एवमीश्वरस्य जगत्कर्तृत्वेन सर्वशक्तित्वं निरूप्य प्रासंगिकमाक्षेपं च समाधायाधुना तस्य सर्वज्ञत्वं निरूपयति—

सर्वज्ञत्वं च तस्मात् ॥ २७ ॥

तस्मादुक्ताज्जगन्निर्माणादेवेश्वरस्य सर्वज्ञत्वमपि निश्चेयं सर्वत्र ज्ञानपूर्विका हि क्रियाः प्रवर्तंते करणीयस्य वस्तुनः स्वरूपाकारोपयोगादि प्रथमं मनसि निधायैव पश्चात् करोति सर्वोपि कर्तृवर्गः संपूर्णजगद्गतपदार्थजातज्ञानयुक्तेनैव परमेश्वरेणेदं सचराचरं विश्वं निर्मीयते ततस्तस्य सर्वज्ञत्वमवसीयते ( यः सर्वज्ञः सर्वविदि )ति श्रुतिवचनात् ॥ २७ ॥

इस प्रकार जगत्कर्तापणेसें ईश्वरका पूर्णशक्तिपणा वर्णन करके अब तिसका सर्वज्ञपणा निरूपण करते हैं ( सर्वज्ञत्वं च तस्मात् ) तस्मात् कहिये तिस पूर्वोक्त जगत्के निर्माण करनेसें हि ईश्वरका सर्वज्ञपणाभी निश्चय करना चहिये क्योंकि सब जगा ज्ञानके पीछे-

हि सर्वक्रियायोंकी प्रवृत्ति होवे है अर्थात् करनेयोग्य वस्तुके स्वरूप आकार और उपयोगको पहले अपने मनमें विचार करके पीछे हि सब लोक कार्यको बनाते हैं सो संपूर्ण जगत्के पदार्थोंके ज्ञानयुक्त हूयाहि ईश्वर इस चराचरविश्वको निर्माण करता है इसलिये तिसके सर्वज्ञपणेका निश्चय होवे है। तथा मुंडकउपनिषत्में लिखा है कि ( जो परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वके जाननेहारा है ) इति ॥ २७ ॥

ननु संति हि ब्रह्मादयो देवा वसिष्ठाद्या महर्षयश्चापि सर्वज्ञाः तत्कथमीश्वरस्यैव सर्वज्ञत्वमभिधीयते तत्राह—

निरतिशयत्वात्तु तद्विलक्षणम् ॥ २८ ॥

तुशब्देनाक्षेपं परिहरति ब्रह्मादिदेवानां वसिष्ठादिमहर्षीणां योगिनां सिद्धानां च यद्भूतभविष्यदर्थज्ञानं वर्तते ततः परमेश्वरस्य ज्ञानं विलक्षणमस्तीति ज्ञातव्यं कुतः निरतिशयत्वात् सर्वातिशयवर्जितं हि किलेश्वरस्य सर्वज्ञत्वं देवादीनां ज्ञानं तु सातिशयत्वान्न तत्सदृशं भवितुमर्हति समालोचनपूर्वकं च देवादीनां ज्ञानं भवति परमेश्वरस्य त्वालोचनानपेक्षं नित्यं सर्वपदार्थविषयं ज्ञानं वर्तते

तस्मात्तस्य युक्तमेव त्रिलक्षणत्वं तथाच पातंजलसूत्रं ( तत्र निरतिशयं सर्वज्ञवीज)मिति ॥ २८ ॥

ननु ब्रह्मा इन्द्रादि देवता और वसिष्ठ नारदादि महर्षिभी वहुतसे त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ हैं तो फिर केवल ईश्वरकाहि सर्वज्ञपणा कैसे कथन करतेहो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( निरतिशयत्वात्तु तद्विलक्षणम् ) ब्रह्मा आदि देवतायोंका और वसिष्ठ आदि महर्षियोंका योगियोंका सिद्धोंका जो भूत भविष्यत् पदार्थोंका ज्ञान है उससें ईश्वरका ज्ञान विलक्षण है अर्थात् विशेष है क्योंकि निरतिशयत्वात् कहिये उसके वरावर किसी दूसरेका ज्ञान नहि है ब्रह्मा आदि देवतायोंका वा महर्षियोंका ज्ञान तो अतिशयवाला होनेसें ईश्वरके वरावर नहि होसकता किंच देवता और महर्षियोंका ज्ञान विचारपूर्वक होवे है अर्थात् वो जिस पदार्थका भूत भविष्यत् देखा चाहते हैं तो पहले अंतर्मुखहोकर मनमें विचार करते हैं तो उनको ज्ञान होता है और ईश्वरको तो विचारके विनाहि सर्वदाकाल सर्वपदार्थोंका स्फुट ज्ञान रहता है इसलिये उसका दूसरोंसें विलक्षणपणा ठीकहि है तथा योगशास्त्रमें पतंजलि मुनिनेभी कहा है कि ( तिस ईश्वरमें सवसें अधिक सर्वज्ञपणा है ) इति ॥ २८ ॥

अतएव नित्यमुक्तत्वम् ॥ २९ ॥

अतएव सर्वज्ञत्वादेवेश्वरस्य नित्यमुक्तत्वमपि ज्ञातव्यं अल्पज्ञो हि किलात्मस्वरूपाज्ञानाद्देहादिष्व-हंभावं कुर्वाणः शुभाशुभैः कर्मबंधनैर्बद्धो भवति नतु सर्वज्ञस्ततः सर्वज्ञत्वादसंगत्वाद्देहादिव्यतिरि-क्तत्वादीश्वरस्य नित्यमुक्तत्वमवसेयम् ॥ २९ ॥

अतएव नित्यमुक्तत्वम् । अतएव कहिये इसी सर्वज्ञपणेसें ईश्वरका नित्यमुक्तपणाभी जानलेना चहिये क्योंकि अल्पज्ञ जीवहि अपने आत्माके स्वरू-पको भूल करके देह इन्द्रिय आदि संघातमें अहंप-णा करके शुभाशुभ कर्मोंके बंधनोंसें बंधायमान होवे है सर्वज्ञ नहि होवे है सो सर्वज्ञ होनेसें और असंग होनेसें तथा देह आदि संघातसें रहित होनेसें ईश्वरका नित्यमुक्तपणा निश्चय करना चहिये इति ॥ २९ ॥

एवमीश्वरस्य नित्यमुक्तत्वमभिधायाधुना तस्या-नादित्वं निरूपयति—

अकार्यत्वादनादित्वम् ॥ ३० ॥

नित्यमुक्तत्ववदीश्वरस्यानादित्वमपि विज्ञेयं कुतः अकार्यत्वात् कस्यचिदन्यस्य कार्यस्यैव सादित्वं भवति जन्माद्यभावात्त्वीश्वरस्यान्यकार्यत्वं नास्त्य-

तस्तस्यानादित्वमवसीयते (न जायते म्रियते वा विपश्चित्, स कारणं करणाधिपाधिपो नचास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः) इत्यादिश्रुतिवचनात् ॥ ३० ॥

इसप्रकार ईश्वरका नित्यमुक्तपणा कथन करके अब तिसका अनादिपणा निरूपण करते हैं (अकार्यत्वादनादित्वम्) नित्यमुक्तपणेकी न्यांई ईश्वरका अनादिपणाभी जानना चहिये अर्थात् ईश्वर सर्व जगत्का आदिकारण है और आप अनादि है क्योंकि अकार्यत्वात् कहिये ईश्वर किसी दूसरेका कार्य नहि है जो पदार्थ किसीका कार्य होता है वोहि आदिवाला होता है और ईश्वर तो जन्मआदि विकारोंसे रहित होनेसें किसी दूसरेका कार्य नहि है इसलिये उसका अनादिपणा निश्चय होवे है जैसे कि कठउपनिषत्में लिखा है कि (सर्वज्ञ परमात्मा जन्मता मरता नहि है) इति तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्में लिखा है कि (सो ईश्वर सर्व जगत्का कारण है और जीवात्माका अधिपति है उसका कोई उत्पन्न करनेवाला और अधिपति नहि है) इति ॥ ३० ॥

नन्वीश्वरस्य जगत्कारणत्वात्तेनापि सकारणेनैव भवितव्यं नहि लोके किंचित्स्वतःसिद्धं वस्त्ववलोक्यते तत्राह—

न तत्परोऽनवस्थाप्रसंगात् ॥ ३१ ॥

ईश्वरस्यापि जनकः कश्चिदन्यः परो भवितुमर्हतीति न वक्तुं युक्तं कुतः अनवस्थाप्रसंगात् तथा सति तस्यापि परस्तस्यापि पर इत्येवं सर्वत्रानवस्था भविष्यति न कुत्राप्येकत्र स्थितिर्भविष्यति तस्मान्नेश्वरस्य कारणांतरकल्पना समीचीना तथोक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि (न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते, न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिंग)मिति ॥ ३१ ॥

ननु जो ईश्वर सर्व जगत्का कारण है तो उसकाभी कोई दूसरा कारण अवश्य मानना चहिये क्योंकि जगत्में विना उत्पन्न हुई स्वतःसिद्ध कोई वस्तु देखनेमें नहि आती है ऐसी शंका होनेसें समाधान निरूपण करते हैं ( न तत्परोऽनवस्थाप्रसंगात् ) ईश्वरकाभी कोई दूसरा उत्पन्न करनेवाला होना चाहिये ऐसा कहना ठीक नहि है क्योंकि वैसा माननेसें तो अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवेगी अर्थात् ईश्वरका कोई दूसरा उत्पन्न करनेवाला मानेंगे तो फिर उसकाभी कोई तीसरा उत्पन्न करनेवाला मानना पडेगा फिर उसका चौथा उसका पांचवा इस प्रकार किसीभी एक जगापर स्थिति नहि हो सकेगी अर्थात् आगेसें आगे

अनेक ईश्वर मानने पडेंगे सो वार्ता ठीक नहिं हो सकती इसलिये ईश्वरके दूसरे कारणकी कल्पना करना ठीक नहि है तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( उस ईश्वरके कोई दूसरा बराबरका नहि है और उससें कोई अधिकभी नहि है तथा तिसका इस जगत्‌में कोई दूसरा अधिपति वा नियंता नहि है और उसका कोई स्थूल चिन्हभी नहि है, इति ॥ ३१ ॥

इतश्चेश्वरात्परोऽन्यो नास्ति

**काष्ठाश्रवणात् ॥ ३२ ॥**

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, पतिं पतीनां परमं परस्तात्, पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः, मत्तः परतरं किंचिन्नान्यदस्ति धनंजय इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनेष्वीश्वरस्यैव सर्वेषामवधिभूतत्वं निरूपितमतो न तस्य परः कश्चिदन्योस्तीति वेदितव्यम् ॥ ३२ ॥

श्वेताश्वतर उपनिषत्‌में लिखा है कि ( सो ईश्वर ब्रह्मा आदि ईश्वरोंकाभी परम ईश्वर है और सो सब प्रजापतियोंकाभी अधिपति है और पर जो प्रकृति उससें भी परे है ) तथा कठउपनिषत्‌में लिखा है कि ( सबसे परे परमात्मा पुरुष है उससें परे कोई नहि है सोई सर्वजगत्‌का अवधिरूप है ) तथा भगवत्‌गीतामें

भी लिखा है कि (हे धनंजय अर्जुन मैं सबसे परे हूं मेरेसें परे दूसरा कोई नहि है ) इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंके वचनोंमें ईश्वरको सर्व जगत्का अवधिरूप निरूपण किया है इसलिये उसका कोई दूसरा कारण नहि हो सकता ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३२ ॥

दर्शनाच्च ॥ ३३ ॥

सर्वेषां पदार्थानामेकत्रावधिदर्शनादपि परमेश्वरस्य सर्वस्मात्परत्वमवबोद्धव्यं दृश्यते हि लोके पदार्थानामेकत्रावसानं तद्यथा जलाशयानां सागरे पर्वतानां हिमालये शरीराणां हस्तिनि वनचराणां सिंहे जलचराणां मकरे वृक्षाणां वटे धातूनां च सुवर्णे । इत्येवं सर्वत्रान्यत्रापि द्रष्टव्यं तद्वदेवेश्वरस्यापि सर्वस्यावधिभूतत्वं निश्चेयम् ॥ ३३ ॥

दर्शनाच्च । सर्वपदार्थोंकी एकजगा अवधिदेखनेसें भी ईश्वरका सबसें परेपणा निश्चय करना चहिये क्योंकि जगत्में सब जगा पदार्थोंकी एकजगा अवधि देखनेमें आवे है जैसे कि वापी कूप तडाग आदि सर्व जलाशयोंकी समुद्रमें अवधि है अर्थात् समुद्रसें बडा कोई जलाशय नहि है तैसेहि सर्व पर्वतोंकी हिमालयमें अवधि है और सर्व शरीरोंकी हा-

थीके शरीरमें अवधि है सर्व वनचर जानवरोंकी सिंहमें अवधि है सर्व जलचरोंकी मकरमें अवधि है और सर्व वृक्षोंकी वटवृक्षमें अवधि है तथा सर्व धातुवोंकी सुवर्णमें अवधि है तैसेहि सर्व जगत्की अवधि ईश्वरमें समझलेना चहिये इति ॥ ३३ ॥

एवमीश्वरस्यानादित्वमभिधायाधुना तस्य व्यापकत्वं निरूपयति—

सर्वव्यापकत्वमनंतत्वात् ॥ ३४ ॥

सर्वज्ञसर्वशक्त्यादिवदीश्वरस्य सर्वव्यापकत्वमपि ज्ञातव्यं कुतः अनंतत्वात् देशकालादितः किलांतवदेव हि वस्तु परिच्छिन्नं भवति तदभावादीश्वरस्य सर्वव्यापकत्वं बोद्धव्यं सर्वब्रह्मांडगतचराचरशरीरेष्वीश्वरस्य हि चैतन्यमनुस्यूतं वर्तते तेन तस्य सर्वव्यापकत्वमवसीयते तथाच वेदवचनं (एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मे)ति जडपदार्थेष्वपि तस्य सर्वत्र समानमेव व्यापकत्वं विद्यते परंतु तेष्वंतःकरणाभावात्स्फुरणं नास्तीति ज्ञातव्यम् ॥ ३४ ॥

इसप्रकार ईश्वरका अनादिपणा निरूपण करके अब तिसका सर्वव्यापकपणाभी कथन करते हैं ( सर्व-

व्यापकत्वमनंतत्वात् ) सर्वज्ञ सर्वशक्ति आदिकी न्यांई ईश्वरका सर्व व्यापकपणाभी जानना चहिये क्योंकि अनंतत्वात् कहिये ईश्वरका स्वरूप अनंत है इसलिये सर्वव्यापक है क्योंकि जिस वस्तुका देश और कालसे अंत होवे है वोही परिच्छिन्न होती है सो ईश्वरका देशकालसें अंत नहि होता इसलिये तिसका सर्वव्यापकपणा निश्चय होवे है सर्वब्रह्मांडमें रहनेहारे चराचर शरीरोंमें ईश्वरकी चेतनताका अनुगतपणा है इसलिये उसका सर्वव्यापकपणा जानलेना चहिये। तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( एक परमात्मा देवहि सर्व भूतप्राणियोंके शरीरोंमें गुप्त हो रहा है और सर्वव्यापक तथा सबका अंतरात्मारूप है ) इति तैसेहि जड पदार्थोंमेंभी तिसका सर्वत्र समानहि व्यापकपणा है परंतु तिनमें अंतःकरणके नहि होनेसें चैतन्यका स्फुरण नहि होता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३४ ॥

यदुक्तं व्यापकत्वमनंतत्वादित्यत्रानंतत्वे किं निगमकमित्यत्राह–

**आकाशादिकारणत्वादानंत्यम् ॥ ३५ ॥**

आकाशादिपंचमहाभूतानां कारणत्वादीश्वरस्यानंतत्वं सिद्ध्यति यदा तद्रचितानामाकाशादि-

पदार्थानां क्वचिदंतो नाधिगम्यते तदा किमु वक्त-व्यं तत्कारणस्येश्वरस्यानंतत्वे कार्यादधिकवृत्तित्वं हि कारणस्य सर्वत्र प्रसिद्धं तेनाकाशादिकारणत्वे-नेश्वरस्यानंतत्वं निश्चेयं तथाच वेदवचनं (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मे)ति ॥ ३५ ॥

पूर्वसूत्रमें जो कहा है कि ईश्वरका व्यापकपणा अनंत होनेसें जानना चहिये सो तिसका अनंतपणा कैसे निश्चय होसके है तहां कहते हैं ( आकाशादि-कारणत्वादानंत्यम् ) आकाश आदि पंचमहाभूतोंका कारण होनेसें ईश्वरका अनंतपणा सिद्ध होवे है क्योंकि जब ईश्वरके रचेहुये आकाश वायु आदि पदार्थोंका हि कहीं अंत नहि आता तो फिर तिनके कारण ईश्व-रके अनंतपणेमें क्या कहना है क्योंकि कार्यसें सब जगा कारण वडा होता है सो आकाशआदिकोंका कारण होनेसें ईश्वरका अनंतपणा निश्चय करना चहिये तथा तैत्तिरीयउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( परमात्मा सत्य ज्ञान और अनंत स्वरूप है ) इति ॥ ३५ ॥

एवमीश्वरस्यानंतत्वमुक्त्वाऽधुना तस्यांतर्यामि-त्वमुपपादयति—

## कर्मफलदानादंतर्यामित्वम् ॥ ३६ ॥

अनंतत्ववदीश्वरस्यांतर्यामित्वमपि ज्ञातव्यं कुतः कर्मफलदानात् सर्वेभ्यो जीवेभ्यः शुभाशुभकर्मणामीश्वर एव फलं ददात्यतस्तस्यांतर्यामित्वं निश्चीयते नहीश्वरः साक्षादागत्य कस्मैचित्कर्मफलं प्रयच्छति किंतु तदंतःकरणप्रेरणद्वारैव प्रयच्छतीति ज्ञातव्यं प्रेरकत्वं चांतर्यामित्वमंतरा न संभवति तथाच श्रुतिवचनं (यः सर्वाणि भूतान्यंतरो यमयत्येष त आत्मांतर्याम्यमृतः ) इति ॥ ३६ ॥

इसप्रकार ईश्वरका अनंतपणा कथन करके अब तिसका अंतर्यामिपणा निरूपण करते हैं ( कर्मफलदानादंतर्यामित्वम् ) अनंतपणेकी न्यांई ईश्वरका अंतर्यामिपणा भी जानना चाहिये क्योंकि कर्मफलदानात् कहिये सर्वजीवोंको शुभाशुभकर्मोंका फल ईश्वरहि देता है इसलिये तिसका अंतर्यामिपणा निश्चय होवे है क्योंकि ईश्वर साक्षात् किसी जीवको आप आय करके कर्मोंका फल नहि देता किंतु उसके अंतःकरणके प्रेरणद्वाराहि देता है ऐसा जानना चहिये सो अंतःकरणका प्रेरण करना अंतर्यामिपणेके विना नहि होसकता तथा बृहदारण्यकउपनिषत्मेंभी लिखा

है कि ( जो सर्वभूतप्राणियोंको अंदरसें प्रेरणा करता है सो अंतर्यामी परमात्मा मोक्षरूप है ) इति ॥३६॥

ईश्वर एव कर्मफलं प्रयच्छति नान्यः कश्चिदित्यत्र किं कारणं तत्राह–

सर्वविरवात्तु तदुपपत्तेः ॥ ३७ ॥

ईश्वरस्यैव कर्मफलदातृत्वमुपपद्यते नान्यस्य कस्यचिद्देवतादेरिति ज्ञातव्यं कुतः सर्वविस्त्वात् ईश्वरस्यैव सर्वज्ञत्वात् सर्वेषां जीवानां शुभाशुभकर्मणां ज्ञानं विद्यते कर्मणां ज्ञातैव च तत्फलं दातुं शक्नोति कस्य जीवस्य कीदृशं कर्मेति ज्ञानाभावात्तु नान्यः कश्चिदसर्वज्ञस्तत्फलदाने समर्थो भवति सर्वज्ञत्वं चेश्वरस्यैव सर्वत्र प्रसिद्धं ततः सर्वेषां कर्मणामीश्वर एव फलं ददातीति वेदितव्यं तथाच वेदवचनं (कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः) इति २७

ईश्वरहि जीवोंको कर्मोंका फल देता है दूसरा कोई नहि देता इसमें क्या कारण है ऐसी जिज्ञासा होनेसें समाधान कथन करते हैं ( सर्वविस्त्वात्तु तदुपपत्तेः ) ईश्वरमेंहि कर्मफलका दातापणा संभवे है दूसरे किसी देवता आदिमें नहि संभवे है क्योंकि सर्वविस्त्वात् कहिये ईश्वरहि सर्वज्ञ होनेसें सर्व जीवोंके

शुभाशुभ कर्मोंको जानता है सो कर्मोंको जाननेवाला हि तिनका फल देसकता है किस जीवका कैसा कर्म है ऐसा ज्ञान नहि होनेसें दूसरा कोई असर्वज्ञ तिनके फल देनेमें समर्थ नहि हो सकता है और सर्वज्ञपणां तो ईश्वरकाहि सब जगा शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है इसलिये एक ईश्वरहि कर्मफलका देनेवाला है ऐसा जानना चहिये तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( सो ईश्वर कर्मोंका साक्षी और फल देनेवाला है ) इति ॥ ३७ ॥

ननु कर्माण्येव परिपक्वानि स्वयमेव स्वकीयं फलं दास्यंति किमु तत्रेश्वरेणेत्यत्राह—

न स्वतो विवेकाभावात् ॥ ३८ ॥

कर्मणां स्वतः फलदातृत्वं नोपपद्यते कुतः विवेकाभावात् कर्मणां जडत्वात् केन कदा कुत्र किमर्थं किं कर्म कृतं कस्मै कस्य कर्मणः कुत्र कदा फलं देयमिति विवेकाभावात् न स्वतः फलदातृत्वं संगच्छते ॥ ३८ ॥

ननु कर्म हि परिपक्व भये अपना फल आपहि देदेगें तहां ईश्वरकी क्या आवश्यकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( न स्वतो विवेका-

भावात् ) कर्मोंको स्वतः फल दातापणा नहि हो-सकता क्योंकि विवेकाभावात् कहिये कर्मोंको जडरूप होनेसें किसने कब कहां किसलिये कौन कर्म किया था और किस जीवको किस कर्मका कब किस जगा फल देना चहिये ऐसा विचार विवेक नहि होनेसें कर्मोंको अपने आप अपना फल देना नहि हो सकता है इति ॥ ३८ ॥

यथा पृथिव्यां वीजमुप्तं स्वत एवांकुरतयोत्पद्यते तद्वदेव कर्माण्यपि कृतानि स्वतएव स्वकीयं फलं जनयिष्यंतीत्यत्राह

**वीजारोपणवदिति चेन्न निमित्तापेक्षणात्॥३९**

वीजारोपणवत्स्वत एव कर्माणि स्वकीयं फलं जनयिष्यंतीति नैवं मंतव्यं कुतः निमित्तापेक्षणात् पृथिव्यामुप्तानि वीजानि किलात्मोद्भवे निमित्तम-पेक्षंते न स्वत एवोत्पद्यंते तद्यथा स्निग्धा भूमिर्वर्षा-जलमनुकूलो वायुरवकाशश्चाकाशस्येत्यादिनिमित्त-जातमपेक्ष्यैव तानि फलाय कल्पंते न स्वभावात् तद्वदत्रापीश्वरकृतसंकेतात्मकनिमित्तमपेक्ष्यैव कर्मा-णि फलं जनयंति न स्वभावादिति विज्ञेयम् ॥३९॥

जैसे पृथिवीमें डालाहूया वीज अपने आपहि अंकुररूपसें उत्पन्न होजाता हैं तैसे हि जीवोंके कियेहूये कर्मभी अपना आपहि फल देदेवेगें उसमें ईश्वरकी क्या आवश्यकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( बीजारोपणवदिति चेन्न निमित्तापेक्षणात् ) वीजके आरोपणकी न्यांई कर्म अपना फल आपहि उत्पन्न करदेंगे ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि निमित्तापेक्षणात् कहिये पृथिवीमें डालाहूया वीज अपनी उत्पत्तिमें वहुतसे निमित्तोंकी सहायताकी अपेक्षा करता है स्वतः अपने आपहि नहि उत्पन्न होजाता ऐसा जानना चहिये सो जैसे एक तो चिकनीभूमि दूसरा वर्षा आदिका जल तीसरा अनुकूल वायु चौथा आकाशका अवकाश इत्यादि पदार्थोंकी सहायतासेंहि सवी वीज फलके उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं स्वतः अपने आप नहि होते तैसे हि यहांभी ईश्वरके कियेहूये संकेतरूप निमित्तकी सहायतासेंहि कर्मफल देते हैं स्वतः स्वभावसें नहि देते हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३९ ॥

ननु विषभक्षणेन कूपादिनिपतनेन शस्त्रादिना स्वशरीराघातेन च स्वत एव मृत्युरुपजायते न तत्र

निमित्तांतरापेक्षा दृश्यते तत्कथमुच्यते कर्माणि न स्वतः फलं प्रयच्छंतीत्यत्राह—

स्वनिधनादिष्वपि प्रेरकत्वात् ॥ ४० ॥

विषभक्षणकूपादिनिपतनात्मघातादिना स्वनिधनादिष्वपि निमित्तापेक्षा भवतीति ज्ञातव्यं कुतः प्रेरकत्वात् परमेश्वरकृतसंकेतानुसारेण मारककर्मणि फलदानाभिमुखे सत्येव बुद्धिप्रेरणेन विषभक्षणादिषु जीवस्य प्रवृत्तिर्जायते न स्वभावात् नोचेत् कथं न सर्वे जनास्तत्र प्रवर्तंते प्रेरकत्वं च कर्मणां जडत्वान्न स्वतः संभवति किंत्वीश्वरसंकल्पानुसारेणैव कर्माणि बुद्धिं प्रेरयंति तथाच वेदवचनं (भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयादिति ॥ ४० ॥

ननु जैसे कोई पुरुष आपहि विष खाय करके वा कूआ वावलीमें पड करके वा अपने शरीरपर शस्त्रघात करके मरजाते हैं तो तहां कोई दूसरा निमित्त देखनेमें नहि आता है तो तुम कैसे कहते हो कि कर्म स्वतः फल नहि देसकते ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (स्वनिधनादिष्वपि प्रेरकत्वात्) विष खानेमें वा कूआ वावलीमें पडनेसें

वा शस्त्रघातसें मरणेमें भी दूसरे निमित्तकी अपेक्षा होती है ऐसा जानना चहिये क्योंकि प्रेरकत्वात् कहिये परमेश्वरके कियेहूये नियमके अनुसार जब जिस जीवका मृत्युकारक कर्म फल देनेको आता है तो उसकी बुद्धिकी प्रेरणा होनेसें हि विषभक्षण आदिमें जीवकी प्रवृत्ति होवे है अपने आप स्वभावसें नहि होती क्योंकि जो स्वभावसें होती होवे तो फिर सब लोक विष खायके वा कूवामें पडके क्यों नहि मरते और सो प्रेरकपणा कर्मोंको जड होनेसें वो स्वतः नहि कर सकते किंतु ईश्वरके संकल्पके अनुसारहि कर्म जीवकी बुद्धिको प्रेरते हैं ऐसा जानना चहिये तथा यजुर्वेदमेंभी लिखा है कि ( उस परमात्मा देवके तेजका हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धिवृत्तियोंको प्रेरता है ) इति ॥ ४० ॥

ननु नित्यं जीवकर्मणां गणने तत्फलप्रदाने चेश्वरस्य सर्वदा व्यग्रत्वेनातिप्रयासो भविष्यतीत्यत्राह-

**संकेतानुसारित्वान्न नित्यायासः ॥४१॥**

सृष्ट्यादावीश्वरेण सर्वेषां पदार्थानामुत्पत्त्यादिनियमवत्कर्मणामपि फलप्रदानं संकेतितमस्ति ( य-

थाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवती)त्यादिश्रुतिवचनानुसारेण यो जीवो यादृशं कर्माचरणं कुरुते तादृशमेव फलं तत्परिपाके तस्योपजायते न तत्रेश्वरस्य नित्यं प्रयासो भवति यथा जलस्याधोगमनं वह्नेरूर्ध्वगमनं वायोस्तिरोगमनं सूर्यादिग्रहाणामुदयास्तत्वं चेत्यादिसर्वपदार्थानामीश्वरेण सृष्ट्यादौ यथा संकेतः कृतस्तथैव सर्वदा प्रलयांतं प्रचलति यथैकदा प्रेरितं घटीसंज्ञकं यंत्रं सर्वदिनं स्वयमेव प्रधावत्येवमत्रापि द्रष्टव्यं तस्मान्न कर्मणां स्वतः फलदातृत्वं संभवतीति ॥ ४१ ॥

ननु नित्यप्रति जीवोंके कर्मोंके गिननेमें और तिनके फल देनेमें लगे रहनेसें तो ईश्वरको बहुत परिश्रम पडता होगा ऐसी शंका होनेसें कहते हैं ( संकेतानुसारित्वान्न नित्यायासः ) जगत् सृष्टिके आदिमें ईश्वरनें जैसे सब पदार्थोंके उत्पत्ति नाश आदिके नियम बनाये हूये हैं तैसेहि कर्मोंके फल देनेकाभी नियम कर रखा है ऐसा जानना चहिये ( जो जीव जैसा कर्म करता है वा आचरण करता है सो तैसाहि होता है श्रेष्ठ कर्म करनेवाला श्रेष्ठ होता

है और पाप कर्म करनेवाला पापी नीच होता है ) इस बृहदारण्यक उपनिषत्के वचनके अनुसार जो जीव जैसा कर्म करता है तैसाहि तिस कर्मके परिपक्व होनेपर उसको फल मिलता है तहां ईश्वरको नित्यंप्रति परिश्रम करना नहि पडता है जैसे जलका नीचेको वहना अग्निका ऊपरको उठना वायुका टेढा चलना सूर्य चंद्रमा आदि ग्रहोंका उदय और अस्त होना इत्यादि सर्व पदार्थोंका सृष्टिके आदिमें जैसा ईश्वरने संकेत करदिया है तैसाहि सर्वदा काल प्रलयपर्यंत चलता रहता है जैसे घडीको एकवार चावी देनेसें सो सारा दिन चलती रहती है तैसे यहांभी समझलेना इसलिये कर्मोंको स्वतः फल देना नहि हो सकता है इति ॥ ४१ ॥

ननु पूर्वं तु जीवकर्मविनैवेश्वरस्य जगन्निर्माणमुक्तं तत्कथमधुना तस्य कर्मानुसारेण फलदातृत्वमभिधीयते तत्राह

**कालभेदान्न विरोधः ॥ ४२ ॥**

प्रथमपादे यदीश्वरस्य जीवकर्मानपेक्षं सृष्टिकर्तृत्वमुपपादितं तत्त्वादिसृष्टिकालविषयं नतु जगद्रचनानंतरकालविषयं जगद्रचनानंतरं तु सर्वत्र जी-

वकर्मानुसारेणैवेश्वरः शुभाशुभं फलं प्रयच्छतीत्येवं कालभेदान्नात्र कश्चिद्विरोधोस्तीत्येवमन्यत्रापि सर्वत्र कर्मविषये वोद्धव्यम् ॥ ४२ ॥

ननु पहले प्रथम पादमें तुमने जीवोंके कर्मोंके विनाहि ईश्वरका जगत्कर्त्तापणा निरूपण किया है तो फिर अब कर्मोंके अनुसार ईश्वरका फल देना क्यों कथन करते हो ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं ( कालभेदान्न विरोधः ) कालभेद होनेसें पूर्वोक्त कर्ताका इस जगामें विरोध नहि है ऐसा जानना चहिये क्योंकि प्रथम जो कर्मोंके विना ईश्वरका जगत्कर्तापणा निरूपण किया है सो तो आदिसृष्टि-कालविषयका है जगत्की रचनाके अनंतर कालवि-षयका नहि है सो जगत्की रचनाके अनंतर तो सब जगा जीवोंके कर्मोंके अनुसारही ईश्वर शुभाशुभ फल देता है इस लिये कालके भेद होनेसें पूर्वोक्तवार्ता-का यहां कुछ विरोध नहि है इसी प्रकार औरभी सब जगा कर्मोंके विषयमें समझ लेना चहिये अर्थात् जहां कर्मानुसार रचना वा फलका प्रसंग आवे तो तहां तहां सब जगा प्रथम सृष्टिरचनाके अनंतरकाल विषयकाहि जानना चहिये इति ॥ ४२ ॥

नन्वीश्वरस्य नित्यशुद्धासंगरूपत्वाज्जीवानां कर्मफलदानादिकार्येषु किं प्रयोजनमित्यत्राह—

**जगन्निर्वहणार्थं तत्प्रवृत्तिः ॥ ४३ ॥**

जगतोस्य चराचरप्रपंचस्य निर्वहणार्थं परंपराप्रवाहसंतानार्थमीश्वरस्य कर्मफलदानादिकार्येषु प्रवृत्तिर्भवतीति ज्ञातव्यं नहि किंचिन्निमित्तमंतरा जगन्निर्वहणं भवितुमर्हति ततस्तदर्थमीश्वरेण कर्मणो निमित्तत्वं प्रकल्पितमस्त्यतस्तत्फलदानमपीश्वरस्य समंजसमेवेति ॥ ४३ ॥

ननु ईश्वर तो नित्य शुद्ध बुद्ध असंगरूप है तो उसका जीवोंके कर्मोंके फल देने आदि कार्योंमें क्या प्रयोजन है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं (जगन्निर्वहणार्थं तत्प्रवृत्तिः) इस चराचर प्रपंचके प्रवाह चलानेके लिये ईश्वरकी कर्मोंके फल देने आदि कार्योंमें प्रवृत्ति होती है ऐसा जानना चहिये क्योंकि किसी निमित्तविना जगत्का निर्वाह चलाना नहि होसकता इसलिये तिसके लिये ईश्वरने कर्मोंको निमित्त कर रखा है सो तिनका जीवोंको फल देनाभी ईश्वरको योग्यहि है इति ॥ ४३ ॥

इतश्चेश्वरस्य कर्मफलदानं युक्तं

**ग्रामाधिपस्येवावश्यकत्वात् ॥ ४४ ॥**

यथा ग्रामाधिपो ग्राम्यजननिग्रहानुग्रहादिना ग्रामं सुव्यवस्थितं करोत्येवं जगदीश्वरस्यापि जगतो व्यवस्थाकरणमावश्यकं नोचेदुपेक्षितं सत्तदखिलमेवाव्यवस्थापन्नं परस्परं विहन्येत ततश्च तदधिपस्यापि मौर्ख्यमापतेदतः कर्मफलदानादिष्वीश्वरस्य प्रवृत्तिर्युक्तैवेति वोद्धव्यम् ॥ ४४ ॥

किंच ( ग्रामाधिपस्येवावश्यकत्वात् ) जैसे ग्रामका मालिक राजा वा ठाकुर अपने ग्रामके निवासी दुष्ट लोकोंको दंड देकर और भले लोकोंपर कृपाकरके ग्रामकी ठीक ठीक व्यवस्था करता है तिसी प्रकार जगत्के मालिक ईश्वरकोभी अपने जगत्की व्यवस्था करना आवश्यक है नहि तो ईश्वरकी उदासीनतासें सारा जगत् व्यवस्थासें रहित भया परस्पर खंडित होकर नाशको प्राप्त हो जावेगा तो फिर उसके मालिककीभी मूर्खता सिद्ध होवेगी इसलिये कर्मोंके फल देने आदि कार्योंमें ईश्वरकी प्रवृत्ति होना ठीकहि है ऐसा जानना चहिये इति ४४

## दयालुत्वाच्च ॥ ४५ ॥

दयालुत्वादपीश्वरस्य कर्मफलदानं ज्ञातव्यं यथा पिता स्वतनयांस्तद्वांछितार्थप्रदानेन दयया पालयति तद्वदीश्वरस्यापि दयालुस्वभावत्वात्स्वतनयोपमेभ्यो जीवेभ्यः कर्मफलदानं वेदितव्यम् ॥ ४५ ॥

( दयालुत्वाच्च )। ईश्वरको दयालु होनेसेंभी जीवोंको कर्मोंका फल देना ठीक जानना चहिये सो जैसे पिता अपने पुत्रोंको दया करके उपयोगी पदार्थोंको देकरके तिनकी पालना करता है तैसेहि ईश्वरभी दयालु स्वभाव होनेसें जीवोंको यथायोग्य कर्मोंका फल देता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४५ ॥

ईश्वरस्य दयालुत्वे किं निगमकं तत्राह

## तत्कार्यदर्शनात्तत्सिद्धिः ॥ ४६ ॥

तस्येश्वरस्य कार्यदर्शनेन दयालुत्वस्य सिद्धिर्भवतीति ज्ञातव्यं तद्यथा पृथिव्यां बीजमुप्तं शतधासहस्रधा वा जायते । बालोत्पत्तितः पूर्वमेव मातुःस्तने क्षीरोद्गमो भवति । जलस्थलनभश्चारिणां सर्वजीवानां सर्वत्राशनादिलाभः प्रदृश्यते । सूर्यचंद्रभूमिजलाग्निवाय्वादिभिरुपयोगिपदार्थैर्जीवानां सर्वतः साहाय्यं क्रियते । महापातकोपेतानां च जी-

धानां स्वशरणागमनेन मुक्तिः प्रदीयत इत्येवमन्यत्रापि सर्वत्र द्रष्टव्यं ततः परमेश्वरस्य दयालुत्वं निश्चेयम् ॥ ४६ ॥

ईश्वर दयालु है इस वार्ताका कैसे निश्चय होसके है ऐसी जिज्ञासा होनेपर उत्तर कथन करते हैं (तत्कार्यदर्शनात्तत्सिद्धिः ) ईश्वरके कार्य देखनेसें तिसके दयालुपणेका निश्चय होवे है सो जैसे पृथिवीमें बीज डाला हूया सौ गुणा वा हजार गुणा उत्पन्न होता है अगर ईश्वर दयालु नहि होता तो एक बीजका एकही दाना उत्पन्न होता। और बालकके जन्मसें पहलेहि माताके स्तनोंमें दूध प्रकट होजाता है यहभी ईश्वकी दयालुताका काम है क्योंकि बालकके कुछ कर्म नहि करनेपरभी उसको भोजन दिया जाता है। और जीवोंके कर्मोंसें विना पहलेसें बनेहूये सूर्य चंद्र पृथिवी जल अग्नि वायुआदि उपयोगी पदार्थोंसें सर्व तरफसें सर्व जीवोंकी सहायता की जाती है। यहभी ईश्वरकी परम दयालुताका काम है। तथा अपनीशरणमें आयेहूये जीवोंके अनेक जन्मोंके पापदोष क्षमा करके उनको मुक्तिप्रदान की जाती है यहभी ईश्वरकी दयालुताका काम सब जगा वेदशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है इसी प्रकार औरभी सब जगामें समझ

लेना इसलिये ईश्वर दयालु है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ४६ ॥

ननु प्रयोजनमनुदिश्य तु मंदोपि न प्रवर्तते तदीश्वरस्याप्तकामत्वेन नित्यतृप्तत्वात्किमर्थं जगन्निर्माणे तन्निर्वहणे च पुनरनर्थिका प्रवृत्तिर्जायते तत्राह—

**लीलामयत्वात्तु नानर्थक्यम् ॥ ४७ ॥**

तुशब्देन शंकां व्यावर्तयति परमेश्वरस्य जगन्निर्माणं तन्निर्वहणं च निरर्थकं नास्तीति ज्ञातव्यं कुतः लीलामयत्वात् परमेश्वरस्य लीलामयं हि किलेदं सर्वं जगत् नहि लोके लीलार्थं विनिर्मितानि वस्तूनि निरर्थकानि भवंति किंतु मनोरंजकत्वेन तान्यखिलानि सप्रयोजनान्येव भवंत्येवमीश्वरस्यापि जगद्रचनादिकार्यं निरर्थकं नैव भवतीति वेदितव्यम् ॥ ४७ ॥

ननु प्रयोजनके विना तो मूर्ख पुरुषकीभी किसी काममें प्रवृत्ति नहि होवे है तो ईश्वर अपने पूर्णकाम आनंदमय स्वरूपसें नित्य तृप्त है तो तिसको जगत्के भोगोंकी इच्छा नहि होनेसें फिर बिनाप्रयोजन निरर्थक उसकी जगत्रचनेमें और उसका प्रवाह चलानेमें क्यों प्रवृत्ति होवे है ऐसी शंका होनेसें समाधान

कथन करते हैं ( लीलामयत्वात्तु नानर्थक्यम् ) तुशब्दसें शंकाका निवारण जानलेना ईश्वरका जगत्रचना और तिसका प्रवाह चलाना निरर्थक नहि है ऐसा जानना चहिये क्योंकि लीलामयत्वात् कहिये यह संपूर्ण जगत् परमेश्वरकी लीलाविलासरूप है सो जैसे लोकोंमें लीलाविलासके लिये वनाईहुई वस्तुवों निरर्थक नहि कही जासकती किंतु मनोरंजन करनेवाली होनेसें सबी वस्तुवें प्रयोजनवालीहि होती हैं तैसेहि ईश्वरका जगत्रचना आदि कार्यभी निरर्थक नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४७ ॥

ननु निरपेक्षस्य प्रशांतात्मनः परमेश्वरस्वलीलया किं प्रयोजनमित्यत्राह—

**स्वतंत्रविहारार्थं लोकवत् ॥ ४८ ॥**

स्वतंत्रविहारार्थमीश्वरेण लीला क्रियत इति ज्ञातव्यं नहि सर्वत्र सापेक्षिकैव लीला भवतीति नियमोस्ति समर्थानां प्रभूणां निरपेक्षैव लीला भवति लोकवदिति दृष्टांतोपादानं यथा लोके महांतो राजानः समधिगताखिलविभूतयोपि केवलं स्वतंत्रविहाराय वनजंगलादिषु मृगयादि लीलाविहारं कु-

र्वेत्येवमीश्वरस्यापि लीलाविहरणमवसेयं तथाच वेदव्याससूत्रं ( लोकवत्तु लीलाकैवल्यमिति ) ॥४८॥

ननु निरपेक्ष और शांतस्वभाव ईश्वरको लीला करणेसें क्या प्रयोजन है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( स्वतंत्रविहारार्थं लोकवत् ) स्वतंत्र विहारके लिये ईश्वर अपनी लीला करता है किसी स्वार्थके लिये नहि करता है ऐसा जानना चहिये क्योंकि सब जगा स्वार्थसेंहि लीला होती है ऐसा कुछ नियम नहि है समर्थ और प्रभुलोकोंकी लीला प्रायः बिना स्वार्थकी स्वतंत्र होती है लोकवत् यह यहां दृष्टांत है सो जैसे लोकमें बडे राजालोक सर्वपदार्थोंको घरमें प्राप्त हूयेभी स्वतंत्र विहारके लिये वनजंगलोंमें जायकरके शिकार आदि लीलाविहार करते हैं तैसेहि ईश्वरकाभी स्वतंत्र लीला विहार करना समझलेना चहिये तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीने भी लिखा है कि ( राजा आदि लोकोंकी न्यांई ईश्वर स्वतंत्र जगत्रूप लीला करता है) इति ॥ ४८ ॥

विपक्षे बाधकमाह—

निरर्थकत्वापत्तेरन्यथा ॥ ४९ ॥

अन्यथा जगन्निर्माणाभावे तु परमेश्वरस्य निरर्थकत्वमेव प्रसज्येत नहि किंचिदपि वस्तु किमपि

कार्यमकुर्वत्सार्थकं भवति तस्मादात्मशक्त्युपयोगार्थेश्वरस्य जगन्निर्माणादिकार्यं समंजसमेवेत्यवगंतव्यम् ॥ ४९ ॥

अब दूसरे पक्षमें बाधक कहते हैं ( निरर्थकत्वापत्तेरन्यथा ) जो ईश्वर जगत्का निर्माण नहि करे तो फिर उसको निरर्थकपणा होजावेगा क्योंकि जगत्में जो वस्तु कुछ कार्य नहि करती है सो सार्थक नहि कहाती है अर्थात् उसको निरर्थक कहते हैं सो अपनी शक्तिको काममें लानेके लिये ईश्वरका जगत्रचना और तिसका प्रवाह चलानारूप लीला करना उचितहि है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ४९ ॥

जडत्वापत्तेश्च ॥ ५० ॥

जगद्रचनादिकार्यमकुर्वतः परमेश्वरस्य जडत्वापत्तिरपि प्रसज्येत यो हि किमपि कार्यं न करोति स क्रियाशून्यत्वाज्जड एव भवति यथा काष्ठपाषाणादयः पदार्थाः क्रियाशून्यत्वाज्जडा इत्युच्यंते ततः परमेश्वरस्य चेतनस्वरूपत्वाज्जगद्रचनादिकार्यं समुचितमेवेति ॥ ५० ॥

जडत्वापत्तेश्च । जो परमेश्वर जगत्की रचना आदि कुछ कार्य नहि करे तो फिर उसको जडपणेकी

प्राप्ति होवेगी अर्थात् सो जडरूप माननना पडेगा क्योंकि जो पदार्थ जगत्में कुछ कार्य नहि करता है तो सो क्रियाशून्य होनेसें जडहि होता है जैसे कि काष्ठ पाषाण आदि पदार्थ क्रियाशून्य होनेसें जड कहे जाते हैं सो बात ईश्वरके लिये कहनी ठीक नहि है क्योंकि ईश्वर तो चेतनस्वरूप है इसलिये उसका जगत्रचना आदि कार्य करना यथार्थ है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५० ॥

नन्वीश्वरो जगद्रचनादिप्रवृत्तिकार्यं न करोति किंतु स्वभक्तानां परिरक्षणं मुमुक्षूणां ज्ञानप्रदानं मुक्तानां च मोक्षप्रदानमित्यादिनिवृत्तिकार्यं करोतीति चेत्तत्राह—

कृतिसाम्यादुभयत्र तुल्यत्वम् ॥ ५१ ॥

यथा प्रवृत्तिकार्येषु कर्तृत्वं भवति तथैव निवृत्तिकार्येष्वपि कर्तृत्वं भवति कार्यसंकल्पश्चोभयत्र समानो भवत्यतः प्रवृत्तिनिवृत्त्योरुभयोरपीश्वरस्य तुल्यत्वमेव बहुप्रयासाल्पप्रयासत्वं चेश्वरस्येतरजीववन्न कल्पयितुं युक्तं सर्वशक्तिमत्त्वात् यदि च पुनर्निवृत्तिकार्यमेवेश्वरः कुर्यान्न प्रवृत्तिकार्यं तदाऽस्य दृश्यमानस्य प्रवृत्तिकार्यस्याशेषप्रपंचस्यान्यः

कर्ता कश्चिद्द्वितीयः परमेश्वरोंऽगीकरणीयः स्यात् द्वितीयत्वं चेश्वरस्य पूर्वमेव निराकृतमतो जगद्रचनात्मकमीश्वरस्य लीलाविहरणं समंजसमेवेति निश्चेतव्यम् ॥ ५१ ॥

ननु ईश्वर जगत्की रचना पालना आदि प्रवृत्तिके काम नहि करता है किंतु अपने भक्तोंकी रक्षा करनी मुमुक्षुवोंको ज्ञान देना और मुक्त पुरुषोंको मोक्ष देना इत्यादि निवृत्तिके काम करता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( कृतिसाम्यादुभयत्र तुल्यत्वम् ) जैसे प्रवृत्तिके कर्मोंमें कर्तापणा होता है तैसेहि निवृत्तिके कामोंमेंभी कर्तापणा होवे है कर्तव्य कार्यमें संकल्पभी दोनोंमें बरावर होवे है और प्रवृत्तिमें विशेप परिश्रम होता है और निवृत्तिमें थोडा परिश्रम पडता है ऐसा विचारभी जीवोंकी न्यांई ईश्वरमें करना ठीक नहि है क्योंकि उसको सर्वशक्तिमान् होनेसें छोटा और बडा दोनों काम बरावरहि हैं और जो ईश्वर केवल निवृत्तिकेहि काम करे प्रवृत्तिके नहि करें तो फिर यह जो प्रत्यक्ष प्रवृत्तिका काम सारा प्रपंच दीखरहा है इसका कर्ता कोई दूसरा ईश्वर मानना पडेगा और सो ईश्वर दोनहि होसकते इस वार्ताका पहलेहि खंडन कर आये हैं

इसलिये ईश्वरका जगत्‌रचना करना पालना करना जीवोंको कर्मफल देना इत्यादि लीलाविहार करना ठीक है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ५१ ॥

भवतु नाम जगतो लीलामयत्वमीशस्य परंतु जीवानां निग्रहानुग्रहादिना विश्वनिर्माणप्रलयादिना च कर्मणेश्वरस्य संसर्गजो दोषस्तु भविष्यतीत्यत्राह—

**न दोषप्रसक्तिरसंगत्वात् ॥ ५२ ॥**

ईश्वरस्य जगन्निर्माणप्रलयादिकर्मसु दोषप्रसंगो नैव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः असंगत्वात् असंगो हि किलेश्वरः नहि जीवस्येव स कर्मभिर्लिंप्यते जीवो हि देहेन्द्रियादिष्वहंभावमाश्रित्य कर्मसु प्रवर्तमानस्तैर्लिप्तो भवति परमेश्वरस्य तु तदभावान्न कर्मलेपः प्रजायते ( असंगो नहि सज्जते असंगो ह्ययं पुरुषः न मां कर्माणि लिपंति न मे कर्मफले स्पृहेत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रमाणादीश्वरस्यासंगत्वमवसीयत इति ॥ ५२ ॥

ननु यह संपूर्ण जगत् ईश्वरकी लीलारूपहि होवो परंतु जीवोंको भले बुरे कर्मोंके फल देनेमें और जगत्‌की रचना वा प्रलय आदि कर्म करनेसें ईश्वरको

तिनके संबंधसें दोषकी प्राप्ति तो अवश्य होवेगी ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (न दोषप्रसक्तिरसंगत्वात्) ईश्वरको जगत्‌की उत्पत्ति प्रलय आदि कर्मोंमें दोषकी प्राप्ति नहि होवे है क्योंकि असंगत्वात् कहिये ईश्वर सर्वदा काल सर्वकर्मोंमें असंग रहता है सो जीवोंकी न्यांई कर्मोंसें लिपायमान नहि होता है क्योंकि जीव तो देह इन्द्रिय आदि संघातमें अहंभाव करके कर्मोंको करता हूया तिनसें लिपायमान होता है और ईश्वरको तो तिस अहंभावके नहि होनेसें सो कर्मोंसें लिपायमान नहि होता है जैसे कि बृहदारण्यक उपनिषत्‌में लिखा है कि (परमात्मा पुरुष असंग है सो लिपायमान नहि होता यह पुरुष असंग है इति) तथा भगवत्‌गीतामेंभी लिखा है कि (हे अर्जुन मेरेको कर्म लिपायमान नहि करते क्योंकि मुझको कर्मोंके फलकी इच्छा नहि है इति ॥ ५२ ॥

इतश्च नेश्वरस्य कर्मश्लेषो जायते

**अलुप्तज्ञानत्वाच्च ॥ ५३ ॥**

अलुप्तज्ञानत्वादपीश्वरस्य कर्मश्लेषदोषो न भवतीति ज्ञातव्यं जीवस्य हि मायामोहितस्य बाह्य-

विषयेषु सर्वदा प्रसक्तस्य स्वरूपज्ञानं लुप्तं भवति परंत्वीश्वरस्य तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपत्वात् जगद्रचनादिकार्यं कुर्वतोपि स्वरूपज्ञानं न लुप्यते ततो न तस्य जगद्रचनादिकार्येषु संसर्गदोषो भवतीति ॥ ५२ ॥

किंच ( अलुप्तज्ञानत्वात् ) ज्ञानके लोप नहि होनेसेंभी ईश्वरको कर्मोंके संबंधका दोष नहि होवे है ऐसा जानना चहिये क्योंकि जीव तो मायासें मोहित हूया सांसारिक विषयोंमें सर्वदाकाल आसक्त हुया बहिर्मुख होनेसें अपणे स्वरूपज्ञानसें रहित होजाता है अर्थात् उसको आत्मस्वरूपका विस्मरण होजाता है परंतु ईश्वर तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप है इसलिये जगत्की रचना प्रलय आदि कर्म करते हूयेभी तिसको अपने स्वरूपका ज्ञान विस्मरण नहि होता है अर्थात् उसका ज्ञान सर्वदाकाल अखंड एकरस रहता है इसलिये तिसको जगत्रचना आदि कार्योंमें संसर्गदोष नहि होता है ऐसे जानना चहिये इति ॥ ५२ ॥

ननु जन्ममृत्युजराक्षुत्पिपासादिदुःखैरावलितत्वाज्जीवानां दुःखात्मकमेवेदमखिलं जगत् तत्कथमीश्वरस्य लीलामयं भवितुमर्हतीत्यत्राह

दुःखात्मकमिति चेन्नाभीष्टत्वात् ॥ ५४ ॥

अस्य जगतो दुःखमयत्वं नास्तीति ज्ञातव्यं कुतः अभीष्टत्वात् सर्वमेवेदं जगज्जीवानामानंदहेतुत्वादभीष्टं वर्तते नहि दुःखात्मकं वस्तु कस्यापि जीवस्याभीष्टं प्रियं वा जायते नहीश्वरस्य जीवैः सह वैरं विद्यते येन तदर्थं दुःखमयं जगदुत्पादयेत् यदि चेदं दुःखमयमेव स्यात् तदा न कोपि क्षणमपि जीवो जीवितुमुत्सहेत सर्वदा वयं जीवाम इत्येवं सर्वेषां जीवानां मनस्यभिलाषोऽनिशं वर्तते ततो न दुःखमयत्वं जगतोस्त्यपि तु सुखमयत्वमेति वेदितव्यम् ॥ ५४ ॥

ननु जन्म मृत्यु जरा क्षुधा पिपासा आदि दुःखोंकरके युक्त जीवोंको तो यह संपूर्ण जगत् दुःखरूप है तो फिर यह कैसे ईश्वरकी लीलारूप होसकता है क्योंकि लीला तो सुखरूप होती है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (दुःखात्मकमिति चेन्नाभीष्टत्वात्) यह जगत् दुःखरूप नहि है क्यों कि अभीष्टत्वात् कहिये यह सर्व जगत् जीवोंको अनंदका हेतु होनेसें सुखरूप है दुःखरूप नहि है क्योंकि दुःखरूप वस्तु किसी जीवकोभी अभीष्ट वा

प्रिय नहि होती है किंच जीवोंके साथ ईश्वरका कुछ वैर नहि है जो तिनके लिये वो दुःखरूप जगत्को रचे जो यह जगत् दुःखरूप होता तो फिर इस संसारमें कोईभी जीव एक क्षणमात्रभी जीना नहि चाहता किंतु सब जीवोंके मनमें सदा येही अभिलाषा रहती है कि हम सर्वदाकाल जीतेहि रहें कभीभी मरें नहि इससें यह जगत् दुःखरूप नहि है किंतु सुखरूप हि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५४ ॥

इतश्च जगतः सुखरूपत्वं ।

भोगहेतुत्वाच्च ॥ ५५ ॥

जीवानां भोगहेतुत्वादपि सुखमयमेवेदं जगदस्तीति ज्ञातव्यं तद्यथा सर्वजीवानां श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणाख्यानि पंच ज्ञानेन्द्रियाणि विषयाणां ग्राहकाणि वर्तंते तदर्थं शब्दस्पर्शरूपरसगंधाभिधाना विषयास्तेषामेकैकस्याप्यनेकभेदाश्चेश्वरेण निर्मिताः संति ते च यथाधिकारं सर्वैरपि जीवैरुपलभ्यंते भुज्यंते च महता दुःखेन रोगेण वा निपीडिता अपि जीवा नेदं कलेवरं त्यक्तुमिच्छंत्यतः सर्वस्यास्य जगतः सुखमयत्वमेवावसेयं केवलं स्वप्रमादेन कैश्चिज्जीवैस्तत्र कदाचिद्दुःखमनुभूयते

यथा मिष्टान्नस्य सुखहेतुत्वेपि प्रमादादधिकभक्षणेन तस्य दुःखकारित्वमुपजायते तद्वदत्रापि द्रष्टव्यम् ॥ ५५ ॥

किंच ( भोगहेतुत्वाच्च ) सर्वजीवोंके भोगका हेतु होनेसेंभी यह जगत् सुखरूप जानना चहिये सो जैसे सर्वजीवोंकी श्रोत्र त्वचा नेत्र जिन्हा नासिका यह पांच ज्ञानइन्द्रियां विषयोंके ग्रहण करनेवाली हैं और तिनके लिये बाहिर शब्द स्पर्श रूप रस और गंध यह पांच विषय बनेहूये हैं और तिन विषयोंमेंभी एकएकके अनेक प्रकारके भेद ईश्वरने बनाये हूये हैं और सो पांचो विषय सर्वजीवोंको अपने अपने अधिकारके अनुसार प्राप्तभी हैं और वो उनको भोगतेभी हैं और सो जीव वडे दुःख वा रोगसें पीडित हूयेभी इस शरीरको छोडना नहि चाहते हैं इसलीये यह संपूर्ण जगत् सुखरूपहि है ऐसा निश्चय करना चहिये केवल अपने प्रमादसें कोई जीव तिससें कदाचित् दुःखका अनुभव करते हैं जैसे मिष्टान्नभोजन सुखका हेतु है परंतु प्रमादसें क्षुधासें अधिक भोजन करलेनेसें सो दुःखका कारण हो जाता है तैसेहि यहां भी समझलेना चहिये इति ॥ ५५ ॥

ननु नरककारागाररोगादिषु जीवैर्महद्दुःख मनुभूयते न तत्र सुखलेशोपि विद्यते तत्कथं जगतः सुखमयत्वमभिधीयते तत्राह

**नरकादिष्वभावान्नेतिचेन्नतत्साधनत्वात् ५६**

नरककारागारादिषु सुखाभावान्न जगतः सुखमयत्वं संभवतीति चेत् नैवं शंकनीयं कुतः तत्साधनत्वात् नरकादीनां पापनिवृत्तिहेतुत्वेन परिणामे सुखहेतुत्वात् नरकादिषु पापफलानि भुक्त्वा परिशुद्धो जीवस्तदंते यथेष्टविहरणादिसुखं प्राप्नोति तथैवान्यत्रापि सर्वत्राध्यात्मिकाधिदैविकादिदुःखेष्वपि ज्ञातव्यं यथा किल कटुतिक्ताद्यौषधसेवनं रोगनिवृत्तिहेतुत्वेन परिणामे सुखहेतुरुपजायते तद्वदत्रापि द्रष्टव्यमतोऽस्य जगतः सुखमयत्वमेवावसेयम् ॥ ५६ ॥

ननु नरककारागारजरादि रोगोमें जीव बहुत दुःखका अनुभव करते हैं तिनमें सुखका लेशभी नहि होता है तो तुम कैसे जगत्को सुखरूप कहते हो ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं (नरकादिष्वभावान्नेतिचेन्नतत्साधनत्वात्) नरक कारागार रोगादिकोंमें सुखका अभाव होनेसें जगत् सुख-

रूप नहि होसकता ऐसी शंका नहि करनी चहिये क्योंकि तत्साधनत्वात् कहिये नरककारागाररोगादिभी पापकी निवृत्तिके हेतु होनेसें परिणाममें सुखकेहि साधन होते हैं सो नरकादिकोंसें पापोंका फलभोग करके सर्वतरफसें शुद्ध हूया जीव स्वतंत्र विहार आदि सुखको प्राप्त होता है तैसेहि औरभी सब जगा आध्यात्मिकाधिदैविक आदि दुःखोंमेंभी जानलेना सो जैसे कडवी वा कषेली औषध खानेसें पहले दुःखरूप प्रतीत होती है और पीछे परिणाममें रोगनिवृत्तिकी हेतु होनेसें सुखका साधनरूप होजाती है तैसेहि नरकादि दुःखकी बाबतभी समझलेना चहिये इस लिये सर्व जगत्को सुखरूपहि निश्चय करना चहिये इति ॥ ५६ ॥

यद्येवं जीवानां भोगार्थमेव शब्दादिविषयाणामीश्वरेण निर्माणं कृतं तदा विषयसेविनां जनानां शास्त्रेषु किमर्थं दोषित्वमभिधीयते तत्राह

**विशेषासक्त्या दोषित्वं न भोगमात्रात् ५७**

शब्दादिविषयाणां भोगमात्रेण जीवस्य दोषित्वं नैव जायते तद्भोगस्तु जीवानां स्वभाव एव भोगोपयोगित्वेनैव हि श्रोत्रादीन्द्रियाणां तद्विषयाणां

च साफल्यं नहीश्वरेण केवलं दर्शनार्थं विषयाणां निर्माणं कृतमपि तु भोगार्थमेव जीवात्मनो मनुष्य-पशुपक्ष्यादिशरीरेष्ववस्थानं चापि भोगनिमित्तक-मेवातो विषयाणां भोगमात्रेण जीवस्य दोषित्वं न संभवति किंतु तत्रात्यंतासक्तिरेव हि दोषस्य कारणं विषयेष्वासक्तः सततं तदर्जनरक्षणसेवनपरः पर-मार्थसाधनाद्विमुखो भवत्यतस्तस्य परमार्थलाभ-शून्यत्वात् शास्त्रमर्यादामुलंघ्य विषयसेवनाच्च दो-षित्वं प्रजायते यदि च विषयभोगमात्रेण जीवस्य दोषित्वं स्यात् तदा तु सर्वेषां ब्रह्मादिपिपीलिकां-तानां जीवानां दोषित्वमेव प्रसज्येत विषयसंबंधस्य सर्वत्र विद्यमानत्वात् न कोपि क्वचिन्निर्दोषो मुक्तो वा भवितुमर्हेत् श्रूयते च पुराणेतिहासेषु पृथुरघु-रामजनकयुधिष्ठिरादीनां राज्ञां विषयसंबंधादपि मुक्तिभाक्त्वं तस्मादासक्तिं विहायेश्वराज्ञात्मक-शास्त्रमर्यादानुसारेण भुज्यमाना विषया न दोषाय कल्पंत इति ॥ ५७ ॥

इसप्रकार जब जीवोंके भोगके लियेहि ईश्वरने शब्द स्पर्श आदि विषयोंका निर्माण किया है तो फिर विषयोंके सेवन करनेवाले पुरुषोंको वेदांत आदि शास्त्रोंमें दोषीपणा किसलिये कथन किया है ऐसी

शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (विशो-पासक्त्या दोषित्वं न भोगमात्रात्) शब्द स्पर्श आदि विषयोंके भोगनेमात्रसें जीवको दोषीपणा नहि होवे है क्योंकि विषयोंका भोगना तो जीवोंका स्वभावहि है और श्रोत्र त्वचा आदि इन्द्रियोंकी वा शब्द स्पर्श आदि विषयोंकी भोगनेमेंहि सफलता है नहि तो इन्द्रियां और विषय दोनों निरर्थक होजावेंगे सो ईश्वरने केवल देखनेके लिये विषय नहि बनाये हैं किंतु जीवोंके भोगनेके लिये हि बनाये हैं तथा मनुष्य पशु पक्षी आदि शरीरोंमें जीवात्मांकी स्थितिभी भोगभोगनेके लिये हि है इसलिये विषयोंके भोगनेमात्रसें जीवको दोषीपणा नहि होसके है किंतु विषयोंमें अत्यंत आसक्ति करनीहि दोषका कारण है क्योंकि शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें सर्वदा-काल आसक्त भया जीव तिनके संपादन रक्षण और सेवन करनेमें तत्पर हूया परमार्थसाधनसें विमुख हो जावे है सो परमार्थलाभसें रहित होनेसें और शास्त्रकी मर्यादाको उल्लंघन करके विषयोंके सेवन करनेसें दोषीपणेको प्राप्त होवे है और जो केवल विषय भोगनेसेंहि यह पुरुष दोषी होता होवे तो फिर ब्रह्मासें लेकर चीटीपर्यंत सबहि जीव दोषी

समझेजावेंगे क्योंकि विषयोंका संबंध सब जगा सबको रहता है तो फिर कोईभी जीव कहींभी निर्दोष वा मुक्त नहि होसकेगा परंतु पुराणोंके इतिहासोंमें सुननेमें आवे है कि पृथु रघु रामचंद्र जनक युधिष्ठिर आदि अनेक राजालोक विषयोंके पूर्ण संबंध होनेपरभी मुक्तिको प्राप्त होते भये हैं इसलिये आसक्ति छोडकर ईश्वरकी आज्ञारूप शास्त्रकी मर्यादासें विषय भोगनेमें दोषकी प्राप्ति नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५७ ॥

यद्येवं तर्हि ( ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते । विषयान् विषवत्त्यजेत् । ) इत्यादिशास्त्रवचनेषु विषयाणां चिंतनसेवनादिकं किमर्थं निषिद्धमित्यत्राह—

वैराग्यार्थं तूपदेशो मुमुक्षूणाम् ॥ ५८ ॥

तुशब्देनाक्षेपं वारयति यत्तु वेदांतादिशास्त्रेषु विषयाणां वर्जनं श्रूयते तदखिलं जन्ममरणात्मकसंसारबंधनान्मोक्षेप्सूनां पुरुषाणामेव वैराग्योत्पाददनार्थं निरूपितं नतु सर्वेषां जीवानां हेतोरिति ज्ञातव्यम् ॥ ५८ ॥

जब विषयभोगमें दोष नहि है तो फिर ( विषयोंके ध्यान करनेसें उनमें आसक्ति हो जाती है विषयोंको विषकी न्यांई परित्याग देना चहिये ) इत्यादिभगवत्गीता अष्टावक्रगीता आदि शास्त्रोंके वचनोंमें विषयोंका चिंतन वा सेवन करनेका क्यों निषेध किया है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( वैराग्यार्थं तूपदेशो मुमुक्षूणाम् ) तुशब्दसें शंकाका निवारण समझना चहिये वेदांत आदि शास्त्रोंमें जो विषयभोगका निषेध किया है सो तो जन्ममरणरूप संसारबंधनसें मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये कथन किया है सब जीवोंके लिये निषेध नहि किया है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५८ ॥

मुमुक्षूणां वैराग्यजनने किं प्रयोजनमित्यत्राह—

तदधीनत्वान्मोक्षस्य ॥ ५९ ॥

यतस्तस्य वैराग्यस्यैवाधीना जीवानां मुक्तिर्विद्यते ततस्तदभिलाषुकाणां वैराग्योपदेशकरणं समञ्जसं नहि सांसारिकविषयेष्वासक्तैर्जनैः सम्यक्तया श्रवणमननादिमोक्षसाधनं कर्तुं पार्यते परवैराग्यवत एव मुक्तिलाभो भवतीति शास्त्रसिद्धांतः

तथा च श्रुतिवचनं ( यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च नोपसर्पंत्यतर्षुलम् । हीनश्च करणैर्देही न देहं पुनरर्हतीति स्मृतिवचनाच्चेति ॥ ५९ ॥

मुमुक्षुवोंको वैराग्य उत्पन्न करनेका क्या प्रयोजन है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( तदधीनत्वान्मोक्षस्य ) जिससें कि वैराग्यके अधीनहि जीवोंकी मुक्ति है इसलिये मोक्षके अभिलाषी पुरुषोंको वैराग्यका उपदेश करना ठीक है क्योंकि सांसारिक विषयोंमें आसक्त हूये जीवोंसें श्रवण मनन आदि मोक्षके साधनोंका ठीक ठीक साधन नहि हो सकता है पर वैराग्यवालेको हि मुक्तिकी प्राप्ति होवे है ऐसा सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत है जैसे कि कठउपनिषत्में लिखा है कि ( जिसकालमें इस पुरुषके हृदयकी सर्व कामना छूट जाती हैं तो उसी कालमें सो मुक्तिको पाता है और यहां इसी शरीरमें ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होजाता है इति ) तथा महाभारतके मोक्षपर्वमेंभी लिखा है कि ( इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषय वैराग्यवान् पुरुषके समीप नहि आते हैं और वो इन्द्रियां और अंतःकरणसें

रहित भया फिर जन्मको धारण नहि करता अर्थात् मोक्षको प्राप्त होजाता है इति ॥ ५९ ॥

ननु यदि संसारः सुखमयो विषयभोगे च दोषाभावस्तदा मुक्तेः किं प्रयोजनं दुःखपंके निमग्नो हि ततः समुद्धरणमभिलषति न तु सुखीत्यत्राह–

**सुखाधिक्यात्तु तदभिलाषो विवेकिनाम् ६०**

नहि जगति सुखाभावान्मुक्तेरभ्यर्थना भवति किंतु सुखाधिक्यादेव विज्ञजना मुक्तिपदमभिवाञ्छंति यस्य ब्रह्मणः किलैकेनानंदस्यांशेनाखिलमेव जगदानंदानुभवं करोति तस्य प्राप्त्या कीदृशं सुखं भविष्यतीति सुतरामेवानुमीयते ततः सांसारिकसुखादधिकसुखाभिलाषिभिर्जनैर्मोक्षस्याभ्यर्थना क्रियते न तु जगतो दुःखमयत्वेनेत्यवगंतव्यम् ॥६०॥

ननु जो यह संसार सुखरूप है और शास्त्रमर्यादासें विषय भोगनेमें दोष नहिं है तो फिर मुक्तिकी क्या आवश्यकता है क्योंकि मुक्ति तो दुःखी पुरुष चाहता है सुखी नहि चाहता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( सुखाधिक्यात्तु तदभिलाषो विवेकिनाम् ) जगत्में कुछ सुख नहि है इस प्रयोजनसें लोक मुक्तिकी इच्छा नहि करते किंतु

विवेकी पुरुष अधिक सुखके लिये मोक्षपद्की इच्छा करते हैं ऐसा जानना चहिये क्योंकि जिस ब्रह्मके आनंदके एक अंशसें सर्वजगत्के भूतप्राणी आनंदका अनुभव करते हैं तो मुक्तिमें साक्षात् तिस ब्रह्मकी प्राप्ति होनेसें तो सुखकी अधिकताका सहजमेंहि अनुमान हो सकता है इसलिये सांसारिक विषय सुखसें अधिक सुखके अभिलाषी पुरुष मोक्षकी इच्छा करते हैं जगत्को दुःखरूप होनेसें नहि करते ऐसा जानना चहिये इति ॥ ६० ॥

अविनाशित्वाच्चाविनाशित्वाच्च ॥ ६१ ॥

न केवलं सुखाधिक्यादेवापि तु मुक्तिसुखस्याविनाशित्वादपि मुक्तेरभ्यर्थना विवेकिनां भवतीति ज्ञातव्यं विषयसुखं हि स्वल्पकालमेव तिष्ठति कतिपयदिनैरेव मासैर्वर्षैर्वा वियोगं वा विनाशं प्रयात्येवं स्वर्गादिसुखमपि ( तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ) क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंतीत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनानुसारेण विनश्वरमेवातो न तद्विज्ञजनैरभ्यर्थ्यते नित्यब्रह्मसंबंधेन मोक्षसुखं तु नित्यमेकरसं तिष्ठति ततस्तदर्थमेव सुधियो मुक्तेरभिलाषं कुर्वंतीति बोद्धव्यं सूत्रे द्विरुच्चारणं तु पादसमाप्त्यर्थम् ॥ ६१ ॥

अविनाशित्वाच्चाविनाशित्वाच्च । केवल सुखकी अधिकताके कारण हि मुक्तिकी इच्छा नहि की जाती है किंतु अविनाशित्वात् कहिये मोक्ष-सुखको अविनाशी होनेसेंभी विवेकी लोक तिसकी वांछा करते हैं ऐसा जानना चहिये क्योंकि विषय-सुख तो थोडा कालहि रहता है कुछ दिनोंमें महीनोंमें या वर्षोंमें वियोग वा नाशको प्राप्त होजाता है ( जैसे इस लोकमें कर्मसें उत्पन्न किये खेती आदि पदार्थ क्षीण होजाते हैं तैसेहि पुण्यकर्मोंसें प्राप्त हूया स्वर्गसुखभी क्षीण होजाता है ) तथा पुण्योंके क्षीण होनेसें स्वर्गसें गिरकर जीव मर्त्यलोकमें प्रवेश करते हैं इति । इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके वचनोंके अनुसार स्वर्ग-सुखभी विनश्वरहि है इसलिये विवेकी पुरुष विषय-सुखकी इच्छा नहि करते हैं और ब्रह्म तो नित्य अविनाशी स्वरूप है सो उसके संबंधसें मोक्षसुखभी नित्य एकरस निरंतर रहता है इसलिये उसकी प्राप्तिके लियेहि बुद्धिमान् मुमुक्षु लोक अभिलाषा करते हैं ऐसा जानना चहिये सूत्रमें पदका दुबारा उच्चारण पादसमाप्तिके लिये है इति ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शने द्वितीयः पादः २

---

## ॥ अथ तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

तदेवं द्वितीयपादे परमेश्वरस्य स्वरूपलक्षणं तत्स्वभावो जगद्रचना कारणत्वं च प्रतिपादयित्वाऽधुना जगदुत्पत्तिप्रकारनिरूपणार्थमयं तृतीयः पादः प्रारभ्यते। तत्र ज्ञातमीश्वरस्य स्वरूपं तस्य जगत्कर्तृत्वसर्वज्ञत्वादिविशेषलक्षणं च परंतु स केन प्रकारेण जगद्रचनां करोतीति जिज्ञासायामाह—

**बहुस्यामितीच्छया प्रारंभः ॥ १ ॥**

प्रथमं बहुस्यां प्रजायेयेतीश्वरस्येच्छा जायते तदनंतरं जगद्रचनायाः प्रारंभो भवतीति ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥

बहुस्यामितीच्छया प्रारंभः । जगत् सृष्टिसें पहले मैं एकसें बहुतरूप होकर उत्पन्न होवुं ऐसी ईश्वरको इच्छा होती है तिसके पीछे जगत्की रचनाका प्रारंभ होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १ ॥

सेयमीश्वरस्येच्छा कस्यचिदन्यस्य प्रेरणया भवति स्वतो वा तत्राह—

**स्वातंत्र्येण निरपेक्षत्वात् ॥ २ ॥**

स्वातंत्र्येण स्वैरत्वेनैवेश्वरस्येयमिच्छा जायते न तत्रान्यस्य कस्यचित्प्रेरणा भवति कुतः निरपेक्षत्वात्

निरपेक्षो हि किलेश्वरः स्वलीलात्मकसृष्टिनिर्माणे न हि किंचित्कारणांतरं प्रतीक्षते परतंत्रः सामर्थ्यविकलो हि किल कर्ता कार्यारंभे निमित्तांतरमपेक्षते ननु स्वतंत्रः सर्वशक्तिमानिति ॥ २ ॥

सो यह इसप्रकारकी ईश्वरकी इच्छा किसी दूसरेकी प्रेरणासें होवे है कि स्वतः अपने आपसे होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं (स्वातंत्र्येण निरपेक्षत्वात्) यह इच्छा ईश्वरको स्वतंत्रपणेसें स्वतःहि होवे है किसी दूसरेकी प्रेरणासें नहि होवे है क्योंकि निरपेक्षत्वात् कहिये अपनी लीलारूप सृष्टि रचनेमें ईश्वर स्वतंत्र है वो किसी दूसरेकी अपेक्षा नहि करता है क्योंकि जो कर्ता परतंत्र वा सामर्थ्यसें रहित होता है वोहि कार्यके आरंभ करनेमें किसी दूसरेकी प्रतीक्षा करता है स्वतंत्र और शक्तिमान् नहि करता है सो ईश्वर तो स्वतंत्र और शक्तिमान् है इस लिये सो जगत्की रचना करनेमें किसी दूसरे निमित्तकी अपेक्षा नहि करता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २ ॥

ननु वेदांतादिशास्त्रमतानुसारेण जीवानां कर्मफलभोगार्थमेवेश्वरस्य जगन्निर्माणेच्छा जायते तत्कथं तस्याः स्वतंत्रत्वमुच्यते तत्राह—

**जीवकर्मभोगार्थमितिचेन्न तदसिद्धेः ॥३॥**

ईश्वरस्य जगन्निर्माणेच्छायां जीवकर्मणां निमित्तत्वं नास्तीति ज्ञातव्यं कुतः तदसिद्धेः तस्य जीवस्यैवासिद्धत्वात् ब्रह्मादिसृष्टितः पूर्वं जीवस्य सद्भावो भवितुमर्हति ततो जीवस्यासिद्धत्वान्न तदर्थमीश्वरस्येच्छा संभवतीति ॥ ३ ॥

ननु वेदांत आदि शास्त्रोंके अनुसार जीवोंके कर्मोंके फल भुगानेके लिये ईश्वरकी जगत्‌रचनेमें इच्छा होवे है तो तुम उसका स्वतंत्र होना कैसे कहते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (जीवकर्मभोगार्थमितिचेन्न तदसिद्धेः) ईश्वरकी जगत्‌रचनेकी इच्छामें जीवोंके कर्मोंको निमित्तपणा नहि है क्योंकि तदसिद्धेः कहिये प्रथम सृष्टिके आदिमें जीवकीहि सिद्धि नहि होवे है सो जीवकी सिद्धि नहि होनेसें तिसके भोगके लिये ईश्वरकी इच्छा नहि होसके है इति ॥ २ ॥

कुतो न जीवसिद्धिर्भवितुमर्हतीत्यत्राह—

**सामर्थ्याभावात् ॥ ४ ॥**

अंतःकरणेन्द्रियादिसमन्वितं हि ब्रह्मणश्चैतन्यं जीव इत्यभिधीयते प्रथमं सृष्ट्यादौ चांतःकरणेन्द्रि-

यादिरूपाया जीवभावस्य सामग्र्याः किलाभावान्न जीवस्य सद्भावः संभवतीति ॥ ४ ॥

सृष्टिके आदिमें जीवकी क्यों नहि सिद्धि होसकती तहां कहते हैं ( सामग्र्यभावात् ) अंतःकरण और इन्द्रिय आदिकोंसें मिला हुयाहि ब्रह्मका चैतन्य जीव कहलाता है सो प्रथम सृष्टिके आदिमें अंतःकरण इन्द्रिय आदि जीवपणेकी सामग्रीके नहि होनेसें जीवका होना नहि होसकता है इति ॥ ४ ॥

किंच

## उत्पत्तिश्रवणात् ॥ ५ ॥

उत्पत्तिश्रवणादपि नादिसृष्टेः पूर्वं जीवस्य सद्भावः सिद्ध्यतीति ज्ञातव्यं तद्यथा (यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति, यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरंत्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरंति, एते जीवाश्चिराद्भावाद्भवभावनयाहिताः । ब्रह्मणः कलिकाकाराः सहस्रायुतकोटयः । संख्यातीताः पुरा जाता जायंतेऽद्यापि चाभितः । उत्पत्स्यंते तथैवान्ये कणौघा इव निर्झरादिति ॥ ५ ॥

उत्पत्तिश्रवणात् । अनेक जगा श्रुतिस्मृतियोंमें जीवकी उत्पत्ति कथन करी है इस लिये भी आदिसृष्टिसें

पहले जीवका होना सिद्ध नहि होसकता जैसे कि तैत्त-रीय उपनिषत्‌में लिखा है कि ( जिसपरमात्मासें यह सर्वभूत प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिससें यह सर्व-भूत प्राणी जीते हैं इति । तथा बृहदारण्यक उपनिष-त्‌में भी लिखा है कि (जैसे जलती अग्निमें छोटी छोटी चिनगारियां निकलती हैं तैसेहि इस परमात्मासें सर्व प्राण और सर्व लोक तथा सर्व देवता और सर्वभूतप्राणी उत्पन्न होते हैं इति । तथा योगवा-सिष्ठमेंभी लिखा है कि (यह जो संसारकी वासनायोंसें भरेहूये जीव हैं सो जैसे वृक्षसें अंकुर निकलते हैं और जैसे झरणेसें जलके कणके निकलते हैं तैसेहि परमात्मासें हजारों लाखों करोडों अनगिणत जीव उत्पन्न होतेभये हैं और अबभी हो रहे हैं तथा आगे भी उत्पन्न होवेंगे इति ॥ ५ ॥

इतश्च न जीवसद्भावः संभवति—

इतराभावनिर्देशाच्च ॥ ६ ॥

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं, ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव, आत्मावाइदमेक एवाग्रआसी-न्नान्यत्किंचनमिषदित्यादिश्रुतिवचनेष्वादिसृष्टितः पूर्वं ब्रह्मव्यतिरिक्तस्येतरपदार्थमात्रस्याभावनिर्वच-नादपि न तदा जीवसद्भावः सिद्ध्यतीति ॥ ६ ॥

इससेंभी सृष्टिसें पहले जीवका सद्भाव सिद्ध नहि होसके है (इतराभावनिर्देशाच्च) हे सोम्य सृष्टिके आदिमें एकअद्वितीय सत्‌रूप ब्रह्महि था, सृष्टिसें पहले एक ब्रह्महि था, सृष्टिके पहले एक आत्माहि था दूसरी कोई वस्तु नहिथी। इस छांदोग्य बृहदारण्यक और ऐतरेय उपनिषत्‌के वचनोंमें आदिसृष्टिसें पहले एक ब्रह्मके सिवाय और दूसरे सर्व पदार्थोंका निषेध किया है इसलियेभी तिस कालमें जीवका होना नहि होसकता है इति ॥ ६ ॥

नन्वेकमेवाद्वितीयमित्यादिश्रुतिवचनेषु राजादिवदेकवचनेन जीवादिसमन्वितस्य ब्रह्मणः कथं न ग्रहणं क्रियते तत्राह

**राजादिवदेकत्वमिति चेन्नैवकारात् ॥७॥**

यथा राजा समागत इत्यत्रैकवचनेन मन्त्र्यादिसमन्वितस्य राज्ञो ग्रहणं जायते आदिपदेन छत्रिदंडिवृक्षादयो गृह्यंते तथैव ब्रह्मणोप्येकत्वं भविष्यतीति चेत् नैवं मंतव्यं कुतः एवकारात् एकमेवाद्वितीयमित्यत्रैवकारेणान्यस्य सर्वपदार्थजातस्याभावः प्रतिपाद्यते राजा समागत इत्यत्रसाधारणवचनत्वात् कथंचिन्मन्त्र्यादियुक्तस्य राज्ञो ग्रहणं कर्तुं शक्यते

परंत्वेक एव राजा समागतो मृतो वेत्युक्ते केवल-मेकस्य राज्ञ एव ग्रहणं भवति नान्यस्य कस्यचि-दित्येवमत्रापि द्रष्टव्यं तथा (साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्चेतिश्रुतिवचनात्केवलत्वाद्ब्रह्मणो निरवयव-त्वाच्च छत्रिदंडिवृक्षादिवदपि नैकत्वं संभवतीति ज्ञातव्यम् ॥ ७ ॥

ननु एकमेवाद्वितीयं इत्यादिश्रुतिवचनोंमें राजा आदिकोंकी न्यांई जीव और प्रकृतिके सहित ब्रह्मका क्यों नहि ग्रहण करते ऐसी शंका होनेसें समा-धान कथन करते हैं (राजादिवदेकत्वमिति चेन्नैवकारात्) आदि शब्दसें छत्री दंडी वृक्ष आदि-कोंका ग्रहण जानना सो जैसे राजा आया इसजगा एक-वचनसें मंत्री भृत्य आदिसहित राजाका ग्रहण होवे है तैसेहि ब्रह्मकाभी जीव आदि सहित एकपणा होवेगा ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि एवकारात् कहिये एकमेवाद्वितीयं इसजगा एवकारका प्रयोग किया है इसका अर्थ एकलाहि ब्रह्म होता है दूसरेके सहित अर्थ नहि होसकता राजा आया इसजगा साधारण वचन होनेसें किसीप्रकार मंत्रीभृत्यआदि सहित राजाका ग्रहण होसकता है परंतु एकहि राजा आया वा मरगय तो इसजगामें केवल एकले राजाकाहि ग्रहण होवे है

दूसरे किसीका नहि होवे है तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये तथा (सो परमात्मा सर्वका साक्षी चेतनशक्ति-देनेवाला केवल और निर्गुण है इति। इस श्रुतिवच-नसें ब्रह्मको केवल और निरवयव होनेसें छत्री दंडी वृक्ष आदिकोंकी न्यांईभी एकपणा नहि हो सकता इसलिये एकवचनसें केवल एक शुद्ध ब्रह्मकाहि निश्चय करना चहिये इति ॥ ७ ॥

**तद्भावेपि कर्माभावो योग्यताऽभावात् ॥८॥**

यदि कथंचिद्वेदांतमतानुसारेणाविद्योपाधित्वेन जीवस्यादिसृष्टितः पूर्वं सद्भावोप्यभ्युपेयते चेत् तदापि तस्य कर्मणां त्वभाव एव सिद्ध्यति कुतः योग्यताऽभावात् आकाशादिपंचमहाभूतोत्पत्त्य-नंतरमेव हि शरीरेन्द्रियादीनामुत्पत्तिर्जायते ततः सृष्ट्यादौ शरीरेन्द्रियादिकर्मसामग्र्यभावात्कर्मानु-ष्ठाने जीवात्मनो योग्यता नैव संभवति योग्यताऽ-भावाच्च न कर्मणामुत्पत्तिर्जायते यद्येवं सृष्ट्यादौ क-र्मणामेवास्तित्वं नास्ति कथं तर्हि तत्फलभोगार्थमी-श्वरस्येच्छा भविष्यति ततः स्वतंत्रतयैवेश्वरस्य जगन्निर्माणेच्छा भवतीति वेदितव्यम् ॥ ८ ॥

तद्भावेपि कर्माभावो योग्यताऽभावात्। जो क़दाचित् वेदांतमतके अनुसार जीवकी अविद्या उपाधि

मानकर आदिसृष्टिसें पहले जीवका होनाभी अंगीकार कियाजावे तोभी तिसके कर्मोंका तो अभावहि मानना पडेगा क्योंकि योग्यताऽभावात् कहिये आकाशादि पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होनेके अनंतरहि जीवके शरीर इन्द्रियादिकोंकी उत्पत्ति होतीहै इसलिये सृष्टिके पहले शरीर इन्द्रिय आदि कर्म करनेकी कुछ सामग्री नहि होनेसें कर्मोंके करनेमें जीवात्माकी योग्यता नहि होसकती और योग्यता नहि होनेसें कर्मोंकी उत्पत्ति नहि होती सो जब इस रीतिसें सृष्टिके पहले जीवोंके कर्महि नहि होते तो फिर तिनके फल भुगानेकेलिये ईश्वरकी इच्छा कैसे होवेगी इसलिये जगत् निर्माण करनेमें ईश्वरकी स्वतंत्रपणेसेंहि इच्छा होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ८ ॥

ननु सष्ट्यादौ जीवस्य कर्मकरणे योग्यताऽभावेपि पूर्वसृष्टिकालकृतकर्मणां संस्कारतया सूक्ष्मरूपेणावस्थानादुत्तरसृष्टौ हेतुत्वमुपपद्यते तत्राह

**पूर्वं हेतुरिति चेत्तदुक्तम् ॥ ९ ॥**

पूर्वमिति जात्यभिप्रायेणैकवचनं । जीवस्य पूर्वकर्माणि नवीनसृष्टिनिर्माणे हेतुतां गमिष्यंतीति चेत् तदुक्तं तस्य समाधानं पूर्वमेव । तदनंतरभावित्वाच्च

बीजांकुरवदिति चेन्न पूर्वापरत्वादित्यादिसूत्रैर्निरूपितं । अत्रेदं तात्पर्यं प्रथमतः परमेश्वरेच्छयाऽऽकाशादिपंचमहाभूतानामुत्पत्तिर्भवति ततः क्रमेण जीवस्य सूक्ष्मं स्थूलं च शरीरमुपजायते तदनंतरं कर्मणामारंभो भवति तदेवं पश्चादुत्पन्नानां कर्मणां कथमाकाशादिसृष्टेः कारणत्वं संभवति न कथंचिदित्यर्थः। नहि क्वचित्प्रपौत्रः प्रपितामहस्य जनको भवितुमर्हति सृष्टिकर्मणोश्चक्रवत्परंपरान्वेषणेपि सर्वत्राकाशादि सृष्टेरेव पूर्वपूर्वत्वं कर्मणश्चोत्तरोत्तरत्वमवगम्यते यद्यप्यावृत्तिसर्गेषु पूर्वपूर्वकर्मणामुत्तरोत्तरसृष्टिहेतुत्वमुपपद्यते परंत्वादिसृष्टौ तु तन्नोपपद्यते पूर्वत्वाभावात् सृष्टीश्वरयोरुभयोरनादित्वेन सहभावेंगीक्रियमाणे तु तयोः पूर्वापरत्वाभावात्परस्परं कार्यकारणभावो न स्यात् द्वैतापत्तिश्चापि जायते ततश्चेश्वरस्याद्वितीयत्वजगत्कारणत्वप्रतिपादकान्यनेकश्रुतिस्मृतिवचनानि निरर्थकानि स्युरित्यतो जगतोऽनादित्वाभावान्नादिसृष्टौ पूर्वकर्मणां हेतुत्वं संभवतीत्यतः स्वतंत्रतयैवेश्वरस्येच्छा भवतीति निश्चेयम् ॥ ९ ॥

ननु सृष्टिके आदिकालमें जीवकी कर्म करणेमें योग्यता नहि होनेपरभी पूर्वसृष्टिकालमें कियेहूये

कर्मोंको सूक्ष्म संस्काररूपसें विद्यमान होनेसें उत्तरसृष्टि-
की रचनामें हेतुपणा होजावेगा ऐसी शंका होनेसें
समाधान कथन करते हैं (पूर्वं हेतुरिति चेत्तदुक्तम्)
जीवके पूर्वसृष्टिमें कियेहूये कर्म नवीन सृष्टिनिर्माणमें
हेतु होजावेंगे इस शंकाका समाधान तो तदनंतरभा-
वित्वाच्च, बीजांकुरवदिति चेन्न पूर्वापरत्वात् इत्यादि
सूत्रोंकी व्याख्यामें पहलेहि कथनकर आये हैं सो जान
लेना। यहां यह तात्पर्य है कि सृष्टिके आदिमें प्रथम
ईश्वरकी इच्छासें आकाश वायु अग्नि आदि पंचमहा-
भूतोंकी उत्पत्ति होवे है तिसके पीछे क्रमसें जीवोंके
सूक्ष्म और स्थूल शरीर उत्पन्न होते हैं फिर तिसके पीछे
स्थूल शरीरोंसें शुभाशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति होवे है सो
इसप्रकार बहुत पीछेसें उत्पत्ति हूये कर्म आकाशादि-
सृष्टिके कारण कैसे होसकते हैं अर्थात् नहि होसकते
क्योंकि कवी किसी जगामेंभी प्रपौत्र अपने प्रपितामह-
हके जन्मका कारण नहि हो सकता है किंच सृष्टि और
कर्मोंका चक्रकी न्यांई अनादि प्रवाह माननेपरभी
सर्वत्र आकाशवायुआदि सृष्टिकाहि पहले पहले होना
और कर्मोंका पीछे पीछे होना निश्चय होवे है सो य-
द्यपि आवृत्तिकी सृष्टियोंमें पूर्व पूर्व कर्म उत्तर उत्तर सृ-
ष्टिमें कारण होसकते हैं परंतु आदि सृष्टिमें कारण नहिं

होसकते क्योंकि उसमें पूर्वसृष्टिका अभाव होनेसें कर्मोंका होना नहि हो सकता और जो ईश्वर और जगत् दोनोंको साथ साथ स्वरूपसें अनादिमानें तो फिर तिनमें पूर्व अपर भाव नहि होनेसें कार्यकारण भाव नहि होसकेगा अर्थात् जगत् ईश्वरका कार्य नहि होसकेगा और फिर दोपदार्थ अनादि होनेसें ब्रह्ममें द्वैतपणेकीभी प्राप्ति होवेगी और फिर ईश्वरको जगत्का कारण कहनेवाले और ब्रह्मको अद्वितीय कहनेवाले अनेक श्रुतिस्मृतियोंके वचन निरर्थक होवेंगे इसलिये जगत्को अनादिपणा नहि होनेसें आदिसृष्टिमें पूर्वकर्मोंको कारणपणा नहि होवे है इसलिये स्वतंत्रपणेसेंहि ईश्वरकी इच्छा होवे है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ९ ॥

नन्विच्छा तु संकल्पविकल्पात्मके मनस्येवोपजायते जगदादौ तस्यानुत्पन्नत्वात्कथमिच्छायाः संभव इत्यत्राह—

चेतनत्वात्स्वतःस्फुरणम् ॥ १० ॥

मनःसंयोगेन तु जीवात्मनामिच्छादिस्फुरणं भवति नत्वीश्वरस्य तस्य तु चेतनस्वरूपत्वादात्मशक्त्यैव स्वतःस्फुरणं भवति यः किल जीवानां

संकल्पविकल्पात्मकं मनो विरचयति स किं स्वयं संकल्पं कर्तुं न शक्नोति मनोविनेच्छाऽसंभवे त्वीश्वरस्य चक्षुरादीन्द्रियैर्विना दर्शनादिकमपि न स्यात् तन्न युक्तं ततः ( अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ) इति श्रुतिवचनानुसारेणेश्वरस्य मनोविनाऽपीच्छा संभवतीति बोद्धव्यम् ॥ १० ॥

ननु इच्छा तो संकल्पविकल्परूप मनमें होती है सो सृष्टिसें पहले मन तो होताहि नहि है क्योंकि वो तो पीछे उत्पन्न होता है तो फिर ईश्वरकी इच्छा कैसे होसकती है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( चेतनत्वात्स्वतःस्फुरणम् ) मनके संयोगसें तो जीवात्मायोंकी इच्छाका स्फुरण होवे है ईश्वरकी इच्छा मनद्वारा नहि होती है किंतु ईश्वरको चेतनस्वरूप होनेसें अपनी शक्तिसें स्वतःहि सर्वदाकाल स्फुरण होवे है जो ईश्वर जीवोंके संकल्पविकल्परूप मनको रचता है तो क्या वो आप संकल्प वा इच्छा नहि कर सकता है और जो मनके विना इच्छा नहि होसकती तो फिर नेत्र श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके विना ईश्वर देख सुनभी नहि सकेगा सो वार्ता ठीक नहि है इसलिये ( सो ईश्वर विना हाथोंके ग्रहण करता

हैं विना पैरोंके चलता है विना नेत्रोंसें देखता हैं और विना कानोंके सुनता है ) इस श्वेताश्वतर उपनिषत्के वचनके अनुसार ईश्वरकी मनके विनाहि इच्छा होती है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १० ॥

यदेश्वरस्य चेतनस्वरूपत्वेन नित्यं स्वतःस्फुरणं भवति तदा तस्य सृष्टिरपि नित्यं भविष्यतीत्यत्राह—

**नित्यसृष्टिप्रसंग इति चेन्नेच्छाधीनत्वात् ११**

ईश्वरस्य नित्यसृष्टिप्रसंगो नैव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः इच्छाधीनत्वात् स्फुरणस्वभावत्वेपीश्वरस्येच्छाधीनैव जगद्रचना भवति स यदेच्छति तदैव सृष्टिर्भवति न सर्वदा तस्य संकल्पानुसारित्वाज्जगद्रचनायास्तदधीनत्वं युक्तं यदा जीवोपि यत्कार्यमारभते तद्यदेच्छति निरोधयति तन्नेश्वरस्य किमु वक्तव्यम् ॥ ११ ॥

जो चेतनस्वरूप होनेसें ईश्वरमें सदा स्फुरण रहता है तो फिर उसके स्फुरणस्वभावसें जगत्की रचनाभी सर्वदाकाल होती रहेगी कबी रुकेगी नहि ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( नित्यसृष्टिप्रसंग इति चेन्नेच्छाधीनत्वात् ) ईश्वरको नित्यसृष्टिरच-

नाका प्रसंग नहि होता ऐसा जानना चहिये क्योंकि इच्छाधीनत्वात् कहिये ईश्वरमें नित्य स्फुरणशक्ति होनेपरभी नित्यसृष्टिरचना नहि होसकती सो जब चाहता है तबी जगत्की रचना होती है सर्वदाकाल नहि होती है सो जगत्रचनाको ईश्वरके संकल्पके अनुसारी होनेसें ईश्वरके अधीन होना ठीक है जब जीव जिस कार्यका आरंभ करता है सो उसको जब चाहता है बंद कर देता है तो तिसके लिये ईश्वरमें क्या कहना चहिये अर्थात् कुछ नहि इति ॥ ११ ॥

एवं प्रासंगिकमाक्षेपं समाधायाधुना प्रकृतं सृष्टिप्रकारं वर्णयति—

**ज्ञानशक्तेराविर्भावः प्रथमम्॥ १२ ॥**

बहु स्यामितीश्वरस्येच्छानंतरं प्रथमं ज्ञानशक्तेराविर्भावो जायते सामान्यतया ज्ञानस्वरूपस्येश्वरस्य यत्सृष्टिरचनाविषयं विशेषज्ञानं तज्ज्ञानशक्तिरित्यभिधीयते सर्वोपि किल कर्ता प्रथमं मनसि निर्मातव्यवस्तुविषयं ज्ञानमाधायैव प्रवर्तते ततः सृष्ट्यादौ ज्ञानशक्तेराविर्भावो युक्त एवेति ॥ १२ ॥

ज्ञानशक्तेराविर्भावः प्रथमम् । मैं एकसें बहुतरूप होवुं ऐसी ईश्वरकी इच्छा होनेके अनंतर सबसे पहले ज्ञानशक्ति प्रगट होती है अर्थात्

सामान्यरूपसें ज्ञानस्वरूप ईश्वरका जो सृष्टिरचना-विषयक विशेष ज्ञान है तिसको ज्ञानशक्ति कहते हैं क्योंकि जो कोई कर्ता किसी वस्तुको बनाता है तो पहले उस वस्तुको निर्माण करनेके ज्ञानको अपने हृदयमें रखकरकेहि पीछे कार्यमें प्रवृत्त होता है इसलिये सृष्टिके आदिमें ज्ञानशक्तिका प्रगट होना ठीकहि है इति ॥ १२ ॥

क्रियाशक्तेस्तदनंतरम् ॥ १३ ॥

ज्ञानशक्त्याविर्भावानंतरं क्रियाशक्तेराविर्भावो भवतीति वाक्यशेषः। सर्वत्र हि ज्ञानपूर्विकैव क्रियाप्रवृत्तिर्जायते तस्माज्ज्ञानशक्त्यनंतरं क्रियाशक्तेराविर्भावो युक्त इति ॥ १३ ॥

क्रियाशक्तेस्तदनंतरम् । ज्ञानशक्तिके प्रकट होनेके अनंतर दूसरी क्रियाशक्तिका आविर्भाव होवे है क्योंकि सर्वत्र पहले ज्ञान होनेसेंहि पीछे क्रियाकी प्रवृत्ति होवे है इसलिये ज्ञानशक्तिके अनंतर क्रियाशक्तिका प्रकट होना ठीक है इति ॥ १३ ॥

ताभ्यां सर्वमिदम् ॥ १४ ॥

ताभ्यां ज्ञानक्रियाशक्तिभ्यां सर्वमेतच्चराचरं जगदुत्पद्यते सर्वत्रेश्वरस्य ज्ञानशक्त्येक्षणं क्रियाशक्त्या चोत्पादनं भवतीति ज्ञातव्यं नहि क्रियाश-

क्तिमंतरा क्वचिदाकाशादिकारणेभ्यो वाय्वादिकार्याणां निःसरणं भवितुमर्हति तथाच श्रुतिवचनं ( पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति ) तदेतदेव शक्तिद्वयं सांख्यविदो रूपांतरेण क्रमान्महत्तत्त्वमहंकारं च प्रचक्षते ॥१४॥

ताभ्यां सर्वमिदम् । तिन ज्ञानक्रिया दोनों शक्तियोंसें फिर यह सर्व चराचर जगत् उत्पन्न होवे है अर्थात् सर्वत्र पदार्थोंकी उत्पत्तिमें ईश्वरकी ज्ञानशक्तिसें संकल्प होवे है और क्रियाशक्तिसें पदार्थकी उत्पत्ति होवे है क्योंकि क्रियाशक्तिके विना कहीं भी आकाशआदि कारणोंसें वायुआदि कार्योंका निकलना नहि होसकता है इसलिये जगत्की उत्पत्तिमें ईश्वरकी ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियां उपयोगी होती हैं ऐसा जानना चहिये तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( जिस परमेश्वरकी ज्ञान बल और क्रियारूप परम शक्ति अनेक प्रकारकी है इति । सो इनहि दोनों शक्तियोंको सांख्यमतवाले दूसरे रूपसें महत्तत्त्व और अहंकार कहते हैं ॥ १४ ॥

ततः सृष्टिराकाशस्य ॥ १५ ॥

ज्ञानशक्तिक्रियाशक्त्याविर्भावानंतरं जगत्सिसृक्षोरीश्वरस्य संकल्पादाकाशस्योत्पत्तिर्जायते सर्वप-

दार्थानामवकाशप्रदानायाकाशस्यान्यभूतेभ्यः प्रथमं निर्माणमावश्यकम् ॥ १५ ॥

ततः सृष्टिराकाशस्य । ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिके आविर्भाव होनेके पीछे जगत्की रचना करनेकी इच्छावाले ईश्वरके संकल्पसें प्रथम आकाशकी उत्पत्ति होवे है क्योंकि सर्व पदार्थोंके अवकाश देनेके लिये दूसरे तत्वोंसे पहले आकाशका होना आवश्यक है इति ॥ १५ ॥

**तस्माद्वायोरग्नेरपां पृथिव्याश्च ॥ १६ ॥**

सृष्टिरित्यनुवर्तते तस्मादाकाशात् वायोः सृष्टिरुत्पत्तिर्भवतीत्यर्थः । ततो वायोः सकाशादग्नेरुत्पत्तिर्जायते ततो जलस्य जलाच्च भूमेरुत्पत्तिर्भवतीति तथाच वेदवचनं ( तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवीति ) ॥ १६ ॥

तस्माद्वायोरग्नेरपां पृथिव्याश्च । तिस आकाशसें पीछे वायुकी उत्पत्ति होवे है और फिर वायुसें अग्निकी उत्पत्ति होवे है तथा अग्निसें जलकी और जलसें पृथिवीकी उत्पत्ति होवे है यथा तैत्तिरीय उपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( तिस परमात्मासें आकाश

उत्पन्न हूया आकाशसें वायु उत्पन्न हूया वायुसें अग्नि उत्पन्न हूआ और अग्निसें जल और जलसें पृथिवी उत्पन्न हूई इति ॥ १६ ॥

**शब्दस्पर्शरूपरसगंधास्तद्गुणाः ॥ १७ ॥**

तेषामाकाशादीनां पंचमहाभूतानां शब्दस्पर्शरूपरसगंधाभिधानाः क्रमेण पंच गुणा भवंति तत्राकाशस्य शब्दो गुणो वायोः स्पर्शो गुणो वह्ने रूपं जलस्य रसः पृथिव्याश्च गंध इति ॥ १७ ॥

शब्दस्पर्शरूपरसगंधास्तद्गुणाः । तिन आकाश आदि पंचमहाभूतोंके शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह पांच गुण क्रमसें होते हैं तिनमें आकाशका गुण शब्द है वायुका स्पर्श गुण है अग्निका रूप गुण है जलका रस गुण और पृथिवीका गंध गुण है इति ॥ १७ ॥

**तेभ्यः सूक्ष्मशरीरस्य ॥ १८ ॥**

सृष्टिरित्यत्राप्यनुवर्तते तेभ्य आकाशादिपंचतत्त्वेभ्यः सूक्ष्मशरीरस्योत्पत्तिर्भवतीति ॥ १८ ॥

तेभ्यः सूक्ष्मशरीरस्य । तिन पंचमहाभूतोंसें फिर जीवके सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १८ ॥

## चित्तेन्द्रियप्राणैस्तत्सिद्धिः ॥ १९ ॥

चित्तेनांतःकरणेन दशेन्द्रियैः पंचप्राणैश्च मिलित्वा सूक्ष्मशरीरस्य सिद्धिर्भवति मनोबुद्धिभेदेनांतःकरणं द्विविधं श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणाख्यानि पंच ज्ञानेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि पंच कर्मेन्द्रियाणि प्राणापानव्यानसमानोदानाश्च पंच प्राणाः एतैः सप्तदशभिस्तत्त्वैरेकं सूक्ष्मशरीरं संपद्यते तत्राकाशादिपंचमहाभूतानां समष्टिसत्त्वांशतोऽतःकरणस्योत्पत्तिर्जायते तेषां क्रमेण पृथक्सत्त्वांशतो ज्ञानेन्द्रियाणां तेषां समष्टिरजोंऽशतः प्रणानां पृथक्रजोंऽशतश्च क्रमेण कर्मेन्द्रियाणामुत्पत्तिर्भवतीति ॥ १९ ॥

चित्तेन्द्रियप्राणैस्तत्सिद्धिः। चित्त कहिये अंतःकरणसें दश इन्द्रियोंसें और पांच प्राणोंसें मिलकरके एक सूक्ष्म शरीर बनता है तहां मन और बुद्धि दोनों मिलके अंतःकरण कहलाता है और श्रोत्र त्वचा नेत्र जिव्हा नासिका यह पांच ज्ञानइन्द्रिय हैं और वाणी हस्त पाद गुदा लिंग यह पांच कर्मइन्द्रिय हैं तथा प्राण अपान व्यान समान उदान यह पांच प्राण हैं यह सतरा तत्त्व मिलकरके एक सूक्ष्मशरीर

होता है तिनमें आकाश आदि पंचमहाभूतोंके मिले-हूये सत्त्वगुणके अंशसें अंतःकरणकी उत्पत्ति होवे है और तिनके जुदा जुदा सत्त्वगुणके अंशसें क्रमसें पांच ज्ञानइन्द्रियोंकी उत्पत्ति होवे है और पांच तत्त्वोंके मिलेहूये रजोगुणके अंशसें पांच प्राणोंकी उत्पत्ति होवे है तथा तिनके जुदा जुदा रजोगुणके अंशसें क्रमसें पांच कर्मइन्द्रियोंकी उत्पत्ति होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १९ ॥

चैतन्ययोगश्चैतस्यच्छत्वात् ॥ २० ॥

एवं सूक्ष्मशरीरोत्पत्त्यनंतरं सर्वगतस्य ब्रह्मचैतन्यस्यांतःकरणेन संयोगो जायते कुतः अच्छत्वात् भूतानां सत्त्वगुणांशकार्यत्वात् स्वच्छं हि किलांतःकरणं स्वच्छत्वात्तच्चैतन्यप्रकाशग्रहणयोग्यं भवति (मनोमयः प्राणशरीरनेतेति) श्रुतिवचनात् ॥ २० ॥

चैतन्ययोगश्चैतस्यच्छत्वात् । इसप्रकार सूक्ष्म शरीरके उत्पन्न होनेके अनंतर सर्वव्यापक ब्रह्मचैतन्यका अंतःकरणके साथ संयोग होवे है क्योंकि अच्छत्वात् कहिये पंचमहाभूतोंके सत्त्वगुणका कार्य होनेसें अंतःकरण स्वच्छ पदार्थ है सो स्वच्छ होनेसें ब्रह्मचैतन्यके प्रकाश ग्रहण करनेमें योग्य होवे है तथा

मुंडक उपनिषत्में लिखा है कि (यह आत्मा मनके साथ रहथा है और प्राण तथा शरीरको चलानेवाला है इति ॥ २० ॥

एतदेव दृष्टांतेन निगमयति—

दर्पणार्कवत् ॥ २१ ॥

यथा सर्वगतोपि सूर्यप्रकाशः स्वच्छत्वात् दर्पण एव प्रतिबिंबति नान्यत्र मलिनद्रव्येष्वेवमेव ब्रह्म-चैतन्यस्यांतःकरण एव प्रवेशो जायते नान्यत्र घटपटादिष्विति ज्ञातव्यं तथाचोक्तं योगवासिष्ठे-(आकाशोपलकुड्यादौ सर्वत्रात्मदशा स्थिता। प्रति-बिंबमिवादर्शे चित्त एवात्र दृश्यते।) इति ॥ २१ ॥

इसीवार्ताको दृष्टांतसें दिखलाते हैं (दर्पणार्क-वत्) जैसे सर्वव्यापक सूर्यका प्रकाश स्वच्छ दर्पणमेंहि प्रतिबिंबित होवे है दूसरे मलिन पदार्थोंमें नहि होवे है तैसेहि स्वच्छ होनेसें अंतःकरणमेंहि ब्रह्मकी चेतनताका प्रवेश होवे है दूसरे घट पट आदि पदार्थोंमें नहि होवेहै ऐसा जानना चहिये तथा योग-वासिष्ठमेंभी लिखा है कि (आकाश पत्थर भित्ति आदि सब जगामें परमात्मा व्यापक है परंतु जैसे सूर्यका प्रकाश दर्पणमें प्रतिबिंबित होवे है तैसेहि सो चित्तमेंहि प्रतिबिंबित होवे है इति ॥ २१ ॥

घटाकाशवच्च ॥ २२ ॥

यथा घटे समुत्पन्ने तत्र सर्वव्यापकस्याकाशस्य प्रवेशो जायते तद्वदेव सर्वव्यापकब्रह्मचैतन्यस्यांतःकरणे प्रवेशो भवतीति वेदितव्यम् ॥ २२ ॥

घटाकाशवच्च । जैसे घटके उत्पन्न होनेसें तिसमें सर्वव्यापक आकाशका प्रवेश होजावे है तैसेहि सर्वव्यापक ब्रह्मकी चेतनताका अंतःकरणमें प्रवेश होता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २२ ॥

ननु व्यापकस्य ब्रह्मचैतन्यस्यांतःकरणे प्रतिबिंबमात्रं भवति नतु प्रवेशः । तत्कथं प्रवेशो भवतीत्यभिधीयते तत्राह—

प्रतिबिंबमात्रमितिचेन्न प्रवेशश्रुतेः ॥ २३ ॥

अंतःकरणे ब्रह्मणः प्रतिबिंबमात्रं भवतीति नैवं मंतव्यं कुतः प्रवेशश्रुतेः (स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत स एष इह प्रविष्टआप्रणखाग्रेभ्यः, अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविश) दित्यादिश्रुतिवचनेषु परमात्मनोऽतःकरणे प्रवेशः श्रूयते तस्मान्न प्रतिबिंबमात्रं भवतीति विज्ञेयं प्रतिबिंबो हि किल द्विविधो भवति आभासात्मकः प्रवेशात्मकश्च यत्र

स्थूलं द्रव्यमधस्तान्निरुद्धं भवति तत्राभासात्मकः प्रतिबिंबो भवति यथा दर्पणे मुखस्य यत्र चाव्यक्तं सूक्ष्मं द्रव्यं भवति तत्र प्रवेशात्मकः प्रतिबिंबो जायते यथा जले भास्करस्य अंतःकरणस्य चाव्यक्तद्रव्यत्वात् तत्र प्रवेशात्मकः प्रतिबिंबो भवतीति निश्चेयम् ॥ २३ ॥

ननु सर्वव्यापक ब्रह्म चैतन्यका अंतःकरणमें प्रतिबिंब मात्र होता है प्रवेश नहि होता तो तुम कैसे कहते हो कि प्रवेश होता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( प्रतिबिंबमात्रमिति चेन्न प्रवेशाश्रुतेः) अंतःकरणमें ब्रह्मका प्रतिबिंबमात्र होवे है प्रवेश नहि होता ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि प्रवेशश्रुतेः कहिये अनेक श्रुतिवचनोंमें प्रवेश कथन किया है जैसे कि (ऐतरेय उपनिषत्में लिखा है कि ( सो परमात्मा मस्तककी सीमा अर्थात् ब्रह्मरंध्रको भेदन करके शरीरमें प्रवेश करताभया ) तथा बृहदारंण्यक उपनिषत्में भी लिखा है कि (सो यह परमात्मा इस शरीरमें शिखासेंलेकर पादके नखतक प्रवेश किया हूया है। तथा छांदोग्य उपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( परमात्माने विचार किया कि जीवरूपसें इस शरीरमें प्रवेश करके नामरूपका विस्तार करूं। तथा तैत्तिरीय उपनिषत्में

भी लिखा है कि (सो परमात्मा इस शरीरको रचकर उसीमें प्रवेश कर जाताभया इति । इत्यादि श्रुतिवचनोंमें परमात्माका अंतःकरणमें प्रवेश कथन किया है इसलिये केवल प्रतिबिंबमात्र नहि होता ऐसा जानना चहिये। क्योंकि प्रतिबिंब दो प्रकारका होवेहै एक तो आभासरूप और दूसरा प्रवेशरूप सो तिनमें जहां स्थूलपदार्थ नीचेसे रुकाहूया होवे है तो तिसमें आभास रूप प्रतिबिंब होता है जैसे दर्पणमें मुखका होवे है और जहां अव्यक्त सूक्ष्म पदार्थ होता है तो तिसमें प्रवेशरूप प्रतिबिंब होता है जैसे जलमें सूर्यका होवे है सो अंतःकरण सूक्ष्म द्रव्य होनेसें तिसमें प्रवेशरूपहि प्रतिबिंब होवे है ऐसा जानना चहिये इति॥२३॥

तेनोज्ज्वलत्वं चित्तस्य ॥ २४ ॥

तेन ब्रह्मचैतन्यप्रवेशेन चित्तस्यांतःकरणस्यार्कतेजःप्रकाशेनेव दर्पणस्योज्ज्वलत्वं जायते ज्ञानप्रकाशमयत्वं भवतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

तेनोज्ज्वलत्वं चित्तस्य। तिस ब्रह्मकी चेतनताके प्रवेश होनेसें चित्तका अर्थात् अंतःकरणका उज्ज्वलपणा होवे है जैसे कि सूर्यके प्रकाशके प्रवेशसें दर्पणका उज्ज्वलपणा होवे है अर्थात् ब्रह्मकी चेतन-

ताके संयोगसें अंतःकरणभी ज्ञानप्रकाशसें चैतनरूप होजाता है इति ॥ २४ ॥

तस्मादिन्द्रियाणाम् ॥ २५ ॥

तस्मादंतःकरणोज्ज्वलनादनंतरं सर्वेषां श्रोत्रादीन्द्रियाणामुज्ज्वलनं भवति । अंतःकरणद्वारेन्द्रियेषु चैतन्यप्रवेशेन तेषामपि चेतनत्वं भवतीत्यर्थः ॥२५॥

तस्मादिन्द्रियाणाम् । अंतःकरणके चेतन होनेके पीछे तिससें श्रोत्र त्वचा आदि सब इन्द्रियोंमेंभी उज्ज्वलपणा होवे है अर्थात् अंतःकरणद्वारा इन्द्रियोंमें ब्रह्मकी चेतनताका प्रवेश होनेसें वोभी सब चेतन होजाती हैं इति ॥ २५ ॥

तदनुशरीरस्य ॥ २६ ॥

इन्द्रियाणामनंतरं वक्ष्यमाणस्य स्थूलशरीरस्य चेतनत्वं जायते मनोवृत्तिद्वारा पादाग्राच्छिखापर्यंतं चैतन्यप्रवेशेनाखिलशरीरस्य चेतनत्वं भवतीति वेदितव्यम् ॥ २६ ॥

तदनुशरीरस्य । इन्द्रियोंके चेतन होनेके पीछे स्थूल शरीरभी चेतन होजावे है अर्थात् अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा पैरसें लेकर सिरकी शिखापर्यंत ब्रह्मचैतन्यके प्रवेश होनेसें संपूर्ण शरीरमें चेतनता होजाती

है । यद्यपि स्थूलशरीरकी उत्पत्ति आगे कथन करेंगे तथापि यहां प्रसंगसें तिसका ग्रहण किया जान लेना इति ॥ २६ ॥

**प्राणक्रिया च तदाश्रयात् ॥ २७ ॥**

ततो ब्रह्मचैतन्याश्रयात् प्राणेष्वपि श्वासप्रश्वासादिक्रियायाः प्रारंभो भवति ( न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन इतरेण तु जीवंति यस्मिन्नेतावुपाश्रिताविति श्रुतिवचनात् ॥ २७ ॥

प्राणक्रिया च तदाश्रयात् । अंतःकरण और इन्द्रियोंके चेतन होनेके अनंतर तिस ब्रह्मचैतन्यके आश्रयसें प्राणोंमेंभी श्वास प्रश्वास पचनआदिरूप क्रियाका प्रारंभ होवे है ऐसा जानना चहिये तथा कठउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( प्राण और अपानसें कोई जीव नहि जीता है परंतु दूसरे चेतनसेंहि सब जीव जीते हैं जिसके आश्रयसें प्राण और अपान चलते हैं इति ॥ २७ ॥

एवं सूक्ष्मशरीरस्योत्पत्तिं तेन ब्रह्मचैतन्ययोगं च निरूपयित्वाऽधुना जीवस्वरूपं दर्शयति–

**जीवभावश्चितेस्तद्योगात् ॥ २८ ॥**

तच्छब्देनांतःकरणेन्द्रियप्राणात्मकं सूक्ष्मशरीरं

परामृशति सूक्ष्मशरीरसंबंधात् परमात्मनश्चैतन्यस्य जीवभावो भवतीति ज्ञातव्यं सूक्ष्मशरीरयुक्तं ब्रह्म चैतन्यं जीवपदवाच्यं भवतीत्यर्थः तथाच श्रुतिवचनं (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण इति ॥ २८ ॥

इसप्रकार सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति और तिसके साथ ब्रह्मचैतन्यका संयोग निरूपण करके अब जीवका स्वरूप दिखलावे हैं (जीवभावश्चितेस्तद्योगात्) तत् शब्दसें यहां पूर्वोक्त अंतःकरण इन्द्रिय और प्राणरूप सूक्ष्म शरीरका ग्रहण जानना सो तिस सूक्ष्म शरीरके संबंधसें परमात्माके चैतन्यको जीवपणेकी प्राप्ति होवे है अर्थात् सूक्ष्मशरीरसें मिला हूया ब्रह्मचैतन्य जीवशब्दका वाच्य होवे है अर्थात् सो जीव कहलाता है तथा कठ उपनिषत्मेंभी लिखा है कि (मन और इन्द्रियोंसें मिले हूये आत्माको बुद्धिमान् लोक भोक्ता जीव कहते हैं इति ॥ २८ ॥

ननु (न जायते म्रियते वा विपश्चित् अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराण इत्यादिश्रुतिस्मृतिषु जीवात्मनो नित्यत्वमजत्वं चोक्तं तत्कथं तस्य सूक्ष्मशरीरसंबंधेनोत्पत्तिरभिधीयते तत्राह—

संयोगमात्रत्वान्नाजत्वादिविरोधः ॥ २९ ॥

येयं जीवात्मनः समुत्पत्तिर्निरूपिता न तत्र जीवचैतन्यस्योत्पत्तिर्भवत्यपित्वंतःकरणस्यैवोत्पत्तिर्जाययते तेन घटेनेवाकाशस्य चैतन्यस्य संयोगमात्रमेव भवति नहि घटेन सहाकाशस्योत्पत्तिर्जायते किंतु तेन संयोग एव भवत्येवं जीवात्मनोपि वेदितव्यं ततः शास्त्रोक्तस्य जीवात्मनो नित्यत्वाजत्वादेर्न विरोधोस्तीति बोद्धव्यम् ॥ २९ ॥

ननु कठउपनिषत्में लिखा है कि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा न जन्मता है और न मरता है । तथा भगवत्गीतामें लिखा है कि यह जीवात्मा अजन्मा नित्य एकरस और पुरातन है इत्यादि अनेक श्रुतिस्मृतियोंमें जीवात्माको नित्य अनादि और अजन्मा कथन किया है तो फिर तुम सूक्ष्म शरीरके साथ उसकी उत्पत्ति कैसे कहते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( संयोगमात्रत्वान्नाजत्वादिविरोधः ) जो यह पीछे जीवात्माकी उत्पत्ति कथन करी है तिसमें जीवचैतन्यकी उत्पत्ति नहीं होती किंतु केवल अंतःकरणकी उत्पत्ति होवे है पीछे तिसके साथ घटके साथ आकाशकी न्यांई

जीवचैतन्यका केवल संयोगमात्र होवे है ऐसा जानना चहिये क्योंकि जैसे घटके उत्पन्न होनेसें तिसके साथ आकाशकी उत्पत्ति नहि होवे है किंतु संयोग-मात्र होवे है तैसेहि जीवचैतन्यकाभी अंतःकरणके साथ संयोगमात्र होवे है उत्पत्ति नहि होवे है इस-लिये श्रुतिस्मृतियोंमें जो जीवात्माको अजन्मा अनादि कथन किया है सो ठीक है उसका यहां कुछ विरोध नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २९ ॥

नन्वेवमेकस्यैव ब्रह्मचैतन्यस्य सर्वेष्वंतःकरणे-ष्वनुस्यूतत्वादेकस्य जीवात्मनः सुखित्वे दुःखित्वे बद्धत्वे मुक्तत्वे वा कथं न सर्वे सुखदुःखवंतो बद्धा मुक्ता वा न भवंतीत्यत्राह—

**उपाधिभेदात्तु भिन्नत्वं विशेषरूपत्वात् ३०**

तुशब्देन शंकां व्यावर्तयति अंतःकरणोपाधिभे-दाच्चैतन्यस्यापि भिन्नत्वं भवतीति ज्ञातव्यं कुतः विशेषरूपत्वात् सामान्यविशेषत्वेन द्विविधं हि चैत-न्यस्य रूपं विद्यते सर्वचराचरपदार्थेषु यत्समानतया व्यापकं तत्सामान्यमित्युच्यते अंतःकरणोपाधिवि-शिष्टं विशेषरूपमित्यभिधीयते यथा घटाकाशस्येतर-घटाकाशेभ्यो महाकाशाच्च पृथक्त्वं भवति यथाच्च

दीपारूढस्य वह्नेरितरदीपेभ्यः सर्वव्यापकादग्नेश्च भिन्नत्वं भवति तद्वदेवांतःकरणोपाधिविशिष्टस्य चैतन्यस्येतरजीवात्मनामीश्वरस्य च सकाशाद्भिन्नत्वं जायते यथा चैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमाद्यन्विते न सर्वे घटाकाशा रजोधूमाद्यन्विता भवंति यथा चैकस्मिन् दीपे चंचले धूमाद्यन्विते वा न सर्वे दीपाश्चंचला धूमाद्यन्विता वा भवंत्येवमत्रापि द्रष्टव्यं ततश्चैतन्यस्यैकत्वेऽप्युपाधिभेदाद्भिन्नत्वान्न सुखदुःखादिसंकरो भवतीति वेदितव्यम् ३०

ननु इसप्रकार जो समस्त अंतःकरणोंमें एकहि परमात्माका चैतन्य अनुगत होता है तो फिर एक जीवात्माके सुखी दुःखी वा बद्ध मुक्त होनेसें सबी जीव सुखी दुःखी वा बद्ध मुक्त क्यों नहि हो जाते ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( उपाधिभेदात्तु भिन्नत्वं विशेषरूपत्वात् ) तुशब्दसें शंकाका परिहार जानना अंतःकरणरूप उपाधिके भेदसें चैतन्यकाभी भेद होजाता है ऐसा जानना चहिये क्योंकि विशेषरूपत्वात् कहिये सामान्य और विशेषरूपसें चैतन्यका दो प्रकारका रूप होता है तिनमें जो सर्व चराचर जगत्में समानरूपसें व्यापक है उसको सामान्य चैतन्य कहते हैं और जो

अंतःकरण उपाधिसें मिलाहूया है उसको विशेष चैतन्य कहते हैं सो जैसे घटमें स्थितभया आकाश दूसरे घटाकाशोंसें वा महाकाशसें भिन्न होजावे है और जैसे दीपकपर आरूढ हूया अग्नि दूसरे दीपकोंसें वा सामान्यव्यापक अग्निसें भिन्न होवे है तैसेहि अंतःकरण उपाधियुक्त हूया चैतन्यभी दूसरे सर्व जीवात्मायोंसें वा ब्रह्मसें भिन्न होजाता है सो जैसे एक घटाकाशके रजोधूमादियुक्त होनेसें सबी घटाकाश रजोधूमादि करके युक्त नहि होते हैं और जैसे एक दीपकके हिलने चलनेसें वा धूम धूली आदिसें आच्छादित होनेसें दूसरे सबी दीपक हिलते चलते वा धूमधूलीवाले नहि होजाते तैसेहि यहां जीवात्मायोंकी बाबतभी समझलेना चहिये अर्थात् व्यापक चैतन्यके एक होनेपरभी अंतःकरणरूप उपाधिके भेदसें परस्पर जीवात्मायोंके भिन्न होनेसें सुख दुःख बंध मोक्ष आदिकोंका मिश्रितपणा नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३० ॥

नन्वंतःकरणोपाधित्वे तु सुषुप्त्यादौ तद्विलयाज्जीवस्याप्यभावो भविष्यतीत्यत्राह—

**सुषुप्त्यादौ संकोचो न तदभावः स्मरणात् ३१**

सुषुप्तिमूर्च्छादिष्वंतःकरणस्याभावो नैव भवति

किंतु तमोगुणाभिभूतस्य तस्य संकोच एव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः स्मरणात् सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषमित्येवं ततः समुत्थितस्य स्मरणं भवति स्मृतेश्चानुभवजन्यत्वात् तस्य चांतःकरणवृत्तिरूपत्वात् तत्रांतःकरणस्य सद्भावो निश्चीयते ( तमोभिभूतः सुखरूपमेति, न द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते) इत्यादिश्रुतिवचनानुसारेण सुषुप्तावंतःकरणस्य संकोच एव भवति नाभावः ( प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ) इति पातंजलसूत्रे सुषुप्तिरपि चित्तवृत्तिरेवेत्युक्तं ततो न सुषुप्तौ जीवस्याभावो भवितुमर्हतीति ॥ २१ ॥

ननु जीवकी अंतःकरण उपाधि होनेसें तो सुषुप्ति अवस्थामें अंतःकरणके विलय होनेसें जीवकाभी अभाव होजावेगा क्योंकि सुषुप्तिअवस्थामें अंतःकरण नहि रहता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( सुषुप्त्यादौ संकोचो न तदभावः स्मरणात् ) सुषुप्ति मूर्च्छा आदि अवस्थामें अंतःकरणका नाश नहि होवे है किंतु तमोगुणसें आच्छादित होनेसें तिसका संकोच होजावे है क्योंकि स्मरणात् कहिये जब सुषुप्ति वा मूर्च्छासें पुरुष उठता

है तो कहता है कि मैं बडा सुखसें सोता भया मुझको कुछभी खबर नहि रही इसप्रकारसें सुषुप्तिमें अनुभव किये सुखका स्मरण होवे है और सो स्मरण अनुभवके विना नहि होवे है और सो अनुभव अंतःकरणकी वृत्तिसें होवे है इसलिये तहां सुषुप्ति आदि अवस्थामें अंतःकरणका होना निश्चय होवे है (तमोगुणसें अभिभूत हुया सुखरूपको पाता हैं सुषुप्तिमें द्रष्टाकी दृष्टिका लोप नहि होवेहै, विज्ञाताके विज्ञानका लोप नहि होवे है ) इस कैवल्य और बृहदारण्यक उपनिषत्के वचनके अनुसार सुषुप्तिमें अंतःकरणका संकोचहि होवे है नाश नहि होता तथा (प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति यह पांच वृत्तियां चित्तकी हैं ) इस पातंजल सूत्रसेंभी सुषुप्तिको चित्तकी वृत्तिरूप हि कथन किया है इसलिये सुषुप्तिमें सूक्ष्मरूपसें अंतःकरणके विद्यमान रहनेसें जीवात्माका अभाव नहि होवे है ऐसा जानना चाहिये इति ॥ ३१ ॥

## पुनरनुत्पत्तिप्रसंगाच्च ॥ ३२ ॥

पुनरनुत्पत्तिप्रसंगादपि न सुषुप्तावंतःकरणस्याभावो भवतीति ज्ञातव्यं यदि सुषुप्तावंतःकरणस्य

विलयो भवेत् कथं पुनस्ततस्तस्योत्पत्तिर्जायेत नह्यं-तःकरणं साक्षादविद्याकार्यं यतस्तस्याः समुपजायेत पंचमहाभूतानां सत्त्वांशादीश्वरेच्छया हि किलांतः-करणस्योत्पत्तिर्जायते येन क्रमेण च यस्य पदार्थ-स्योत्पत्तिर्भवति तस्य विनाशे पुनस्तेनैव क्रमेण किलोत्पत्तिर्भवितुमर्हति नान्यथा नहि नष्टः पृथि-व्यां विलीनो वा घटः कुलालदंडचक्रादिक्रियामंतरा पुनरुत्पद्यते कर्मणां जडत्वान्नोत्पादकत्वं संभवति नचापीश्वरस्य तदर्थं नित्यमिच्छाकरणं संगच्छते ततः सुषुप्त्याद्यवस्थासु नांतःकरणस्याभावो भव-तीति वेदितव्यम् ॥ ३२ ॥

पुनरनुत्पत्तिप्रसंगाच्च । फिर उत्पत्ति नहि होनेके प्रसंगसेंभी सुषुप्तिमें अंतःकरणका अभाव नहि होसके है जो सुषुप्ति अवस्थामें अंतःकरणका नाश होजावे तो फिर तिसकी उत्पत्ति कैसे होसके क्योंकि अंतःकरण साक्षात् अविद्याका कार्य नहि है कि जिससें उसकी उत्पत्ति होसके अंतःकरणकी तो पंचमहाभूतोंके सत्त्वगुणके अंशसें ईश्वरकी इच्छासें उत्पत्ति होवे है सो जिस क्रमसें जिस पदार्थकी पहले उत्पत्ति होवे है फिर तिसके नाश होनेसें उसी क्रमसेंहि फिर तिसकी उत्पत्ति होसकती है दूसरी

रीतिसें नहि होसकती जैसे घटके नाश होनेसें वा पृथिवीमें लीन होजानेसें फिर तिसकी उत्पत्ति विना कुलाल दंड चक्र आदि सामग्रीसें नहि हो सकती और कर्मोंको जड होनेसें वोभी स्वतः अंतःकरणकी उत्पत्ति नहि कर सकते तथा ईश्वरकीभी तिसकी उत्पत्तिके लिये नित्यंप्रति इच्छा करनी ठीक नहि होसकती इसलिये सुषुप्ति आदि अवस्थामें अंतःकरणका अभाव नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३२ ॥

ननु वेदान्तादिशास्त्रेषु जीवस्याविद्योपाधित्वमुक्तं तत्कथं तस्यांतःकरणोपाधित्वमुच्यते तत्राह—

**न साक्षादविद्योपाधित्वमसंभवात् ॥ ३३ ॥**

साक्षादविद्या जीवस्योपाधिर्नैव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः असंभवात् अविद्यानाम नहि कश्चित्प्रकृतितोऽन्यः पृथक् पदार्थो विद्यते प्रकृतिरेव हि रजोगुणप्रधानत्वेनाविद्येत्युच्यते सा च व्यापकत्वादव्यक्तत्वाच्च स्वरूपेण प्रतिजीवं न परिच्छिद्यते यदा तत्कार्यस्याकाशस्याप्युपाधिमंतरा क्वचित्परिच्छेदो नैव जायते तदा विनैव कंचिदुपाधिं प्रकृतेः परिच्छेदः कथं भविष्यति ततो न साक्षादविद्या जीवस्योपाधिरस्तीति ॥ ३३ ॥

ननु वेदांत आदि शास्त्रोंमें जीवकी अविद्या उपाधि कथन करी है तो तुम उसकी अंतःकरण उपाधि क्यों कथन करते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( न साक्षादविद्योपाधित्वमसंभवात् ) साक्षात् रूपसें अविद्या जीवात्माकी उपाधि नहि होसकती क्योंकि असंभवात् कहिये अविद्या कोई प्रकृतिसे भिन्न दूसरा पदार्थ नहि हैं रजोगुणप्रधान प्रकृतिहिको अविद्या कहते हैं और सो प्रकृति व्यापक और अव्यक्त है इसलिये तिसका सब जीवात्मायोंके साथ भिन्नभिन्न परिच्छेद ( खंड ) नहि हो सकता जब तिस प्रकृतिके कार्य आकाशकाहि घट मठ आदि किसी उपाधिके विना परिच्छेद नहि होसकता तो फिर उपाधिके विना साक्षात् प्रकृतिका कैसे परिच्छेद हो सकेगा आर्थात् नहि होगा इसलिये साक्षत् अविद्या जीवकी उपाधि नहि है ऐसा जानना चाहिये इति ॥ ३३ ॥

ननु हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे विश्वस्य जातः पतिरेक आसीदिति वेदवच्चनानुसारेणादि जीवस्यैकत्वे तु साक्षादविद्योपाधित्वं संभवतीत्यत्राह

## नजीवैकत्वमनंतत्वश्रवणात् ॥ ३४ ॥

प्रथमतएकएवजीव उत्पद्यते पश्चात्सएव सुरासुरनरपशुपक्ष्यादिरूपेणप्रादुर्भवतीतिचेत् नैवं मंतव्यं कुतः अनंतत्वश्रवणात् तथाचोक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि (वालाग्रशतभागस्यशतधाकल्पितस्यच भागोजीवः सविज्ञेयः सचानंत्यायकल्पत इति। जीवचैतन्यस्यैकत्वेपिजीवोपाधीनामंतःकरणानामनंतत्वाज्जीवानामप्यनंतत्वमवगंतव्यम् ॥ ३४ ॥

ननु ( हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा पहले उत्पन्न होनाभया सो उत्पन्न होता हि विश्वका पति होताभया इति ) इस वेदवचनके अनुसार आदिजीव एकहि होनेसें साक्षात् अविद्या उपाधिवाला होसकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( नजीवैकत्वमनंतत्वश्रवणात् ) प्रथम एकहि जीव उत्पन्न होता है और फिर वोही देवदैत्यमनुष्यपशुपक्षिआदिरूपसें प्रकट होजाता है ऐसा नहि मानना चहिये क्यों कि अनंतत्वात् कहिये वेदमें जीव अनंत कथन किये हैं जैसे कि श्वेताश्वतर उपनिषत्में लिखा है कि ( एकवालके अग्रभागके सौभाग करके फिर तिनमेंसें एकका सौभाग करनेसें जितना सूक्ष्म होताहै

उतना जीव सूक्ष्महै और सो जीव अनंत हैं अर्थात् उनकी कुछ गिणती नहि है इति। सो यद्यपि सर्वजीवोंका चैतन्यआत्मा तो एकहिहै तथापि जीवोंकी उपाधिरूप अंतःकरणोंको अनंत होनेसें जीवभी अनंत मानेजातेहैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३४ ॥

बंधमोक्षयोरुपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥

अजामेकोजुषमाणोनुशेते जहात्येनांभुक्तभोगामजोन्यइतिश्रुत्युक्ता वंधमोक्षव्यवस्थापिजीवानां वहुत्वे सत्येव संभवति नान्यथेति ज्ञातव्यं जीवस्यैकत्वेत्वेकस्य मुक्तौ सर्वेमुचेरन् तथैकस्य वद्धत्वे सर्वे बद्धाभवेयुरित्यतोनैकजीववादः समंजस इति ॥३५

बंधमोक्षयोरुपपत्तेश्च । देह आदिरूपप्रकृतिको एकजीव भोगताहूया अज्ञानरूप निद्रामें सोताहै और दूसरा विवेकवान् जीव भुक्तभोग प्रकृतिको छोडकरके मुक्त हो जाताहै इति । इस श्वेताश्वतर उपनिषत्के वचनमें कथनकरीहूई वंधमोक्षकी व्यवस्थाभी जीवोंके बहुत होनेसें हि बनसकतीहै अन्यथा नहि बनसकती नहि तो एकजीवके मुक्तहोनेसें सबीकीमुक्तिहोजावेगी और एकके बद्ध होनेसें सबोंको बंधन की प्राप्ति होजावेगी इसलिये एक जीववाद ठीक नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३५ ॥

यद्येवं तर्हि कथं वेदांतादिशास्त्रेषु जीवस्यावि-द्योपाधित्वेन निरूपणं कृतं तत्राह—

**अंतःकरणावच्छिन्नत्वेन त्रिगुणमयत्वात् ३६**

वेदांतादिशास्त्रेषु यदविद्योपाधित्वं जीवस्योपव-र्णितं तदंतःकरणावच्छिन्नत्वेनैव विज्ञेयं अंतःकरण-रूपेण परिणतैवाविद्या जीवस्योपाधिर्भवति न तु सा-क्षात् कुतः त्रिगुणमयत्वात् त्रिगुणात्मकप्रकृतिः कार्यत्वात् त्रिगुणमयं हि किलांतःकरणं तद्यदा रजस्तमःप्रधानतयाभिभूतविशेषज्ञानं भवति तदाऽ-विद्याशब्देन प्रोच्यते यदा च रजस्तमसी व्यपोह्य सत्त्वप्रधानं जायते तदा विशेषज्ञानाविर्भावेन विद्या-स्वरूपमभिधीयते यथा सर्वव्यापकस्य ज्ञानस्यां-तःकरणोपाधिनैवाविर्भावो भवति तद्वदेवाज्ञानस्या-प्यंतःकरणोपाधिद्वारैव प्रतीतिर्जायते यथा चांतः-करणोपाधिमंतरा ज्ञानस्य परिच्छेदो नैव भवति तथैवाज्ञानस्याप्यंतःकरणोपाधिमंतरा परिच्छेदो नैव भवितुमर्हत्यतो न साक्षादविद्या जीवस्यो-पाधिर्भवत्यपित्वंतःकरणरूपेणैव भवतीति ज्ञा-तव्यम् ॥ ३६ ॥

जो इस प्रकारसें जीवकी उपाधि अंतःकरण है

तो फिर बहुत जगा वेदान्तआदि शास्त्रोंमें जीवकी अविद्या उपाधि क्यों कथन करी है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( अंतःकरणावच्छिन्नत्वेन त्रिगुणमयत्वात् ) वेदांत आदिशास्त्रोंमें जो जीवकी अविद्या उपाधि कथन करी है सो अंतःकरणके अवच्छिन्नपणेसेंहि जाननी चाहिये साक्षात् रूपसे नहिं अर्थात् अंतःकरणरूपसें परिणामको प्राप्त भई अविद्या जीवकी उपाधि होती है साक्षात् रूपसें नहि होती क्योंकि त्रिगुणमत्वात् कहिये त्रिगुणरूप प्रकृतिका कार्य होनेसें अंतःकरणभी त्रिगुणमय है सो अंतःकरणका जब रजोगुणतमोगुणकी प्रधानतासें विशेष ज्ञान आच्छादित होवे है तब सो अविद्याशब्दसें कहा जावे है अर्थात् उसको अविद्या कहते हैं और जब सो अंतःकरण रजोगुण और तमोगुणको दूर करके सत्त्वगुणप्रधान होता है तो उस कालमें विशेष ज्ञानके आविर्भाव होनेसें सो विद्यास्वरूप कहलाता है सो जैसे सर्वव्यापक ज्ञानका अंतःकरण उपाधिसेंहि आविर्भाव होवे है तैसेहि सर्वव्यापक अज्ञानकीभी अंतःकरण उपाधिद्वाराहि प्रतीति होवे है तथा जैसे अंतःकरण उपाधिके विना ज्ञानका परिच्छेद नहि होवे है तैसेहि अंतःकरण उपाधिके

विना अज्ञान ( अविद्या )काभी परिच्छेद नहि होसके है इसलिये साक्षात् अविद्या जीवकी उपाधि नहि होती किंतु अंतःकरणरूपसेंहि होवे है ऐसा जानना चाहिये इति ॥ ३६ ॥

ननु साक्षादविद्योपाध्यभावे जीवस्य सुषुप्त्यवस्था कथं भवतीत्यत्राह—

**गुणपरिणामादवस्थात्रयं जीवस्य ॥ ३७ ॥**

गुणानां सत्त्वरजस्तमसां न्यूनाधिकभावात्मकपरिणामेन जीवस्यावस्थात्रयं भवतीति ज्ञातव्यं तद्यथा सत्त्वगुणाधिक्येन जागरणं रजोगुणाधिक्येन स्वप्नस्तमोगुणाधिक्येन च सुषुप्तिरित्येवं त्रिगुणात्मकत्वादंतःकरणस्य तत्परिणामेनावस्थात्रयं जायते तथोक्तं सांख्यभाष्ये ( सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् । प्रस्वापनं तु तमसा तुरीयं त्रिषु संततमिति ॥ ३७ ॥

ननु जीवकी साक्षात् अविद्या उपाधि नहि होनेसें फिर सुषुप्ति अवस्था कैसे होवेगी ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( गुणत्रयपरिणामादवस्थात्रयं जीवस्य ) सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंके न्यूनाधिकभावरूप परिणामसें जीवकी तीन अवस्था

होती हैं ऐसा जानना चहिये सो सत्त्वगुणकी अधिकतासें जागरणअवस्था होती है रजोगुणकी अधिकतासें स्वप्नअवस्था होती है और तमोगुणकी अधिकतासें सुषुप्तिअवस्था होती है इसप्रकार अंतःकरणको त्रिगुणरूप होनेसें तिन तीन गुणोंके परिणामसें तीन अवस्था होती हैं तथा यह वार्ता सांख्यभाष्यमेंभी लिखी है कि ( सत्त्वगुणसें जागरणअवस्था होती है रजोगुणसें स्वप्नअवस्था होती है और तमोगुणसें सुषुप्तिअवस्था होती है और चौथी तुरीयअवस्था तीनोंमेंभी रहती है इति ॥ ३७ ॥

विश्वतैजसप्राज्ञसंज्ञा च तद्योगात् ॥ ३८ ॥

जीवस्येति पूर्वसूत्रादनुवर्तते तासामवस्थानां संबन्धात् जीवात्मनो विश्वतैजसप्राज्ञाख्यं च संज्ञात्रयं जायते तत्र जागरणावस्थासंबंधेन विश्वसंज्ञा स्वप्नावस्थासंबंधेन तैजससंज्ञा सुषुप्त्यवस्थासंबंधेन च प्राज्ञसंज्ञा भवति स्थूलसूक्ष्मभेदेनांतःकरणस्यावस्थाद्वयं ज्ञातव्यं स्वप्नजागरणयोः स्थूलावस्था सुषुप्तौ च सूक्ष्मावस्था भवति तस्याः सूक्ष्मावस्थाया अभिमानी जीवः प्राज्ञसंज्ञको भवतीति विज्ञेयं तदेव सूक्ष्मावस्थापन्नं तमःप्रधानं बीजात्मकमंतःकरणं जीवस्य कारणशरीरमप्यभिधीयते ॥ ३८ ॥

विश्वतैजसप्राज्ञसंज्ञा च तद्योगात् । तिन तीन अवस्थायोंके संबंधसें जीवात्माकी विश्व तैंजस प्राज्ञ इसरीतिसें तीन संज्ञा होती हैं आर्थात् जागरणअवस्थाके संबंधसें विश्वसंज्ञा होती है स्वप्न-अवस्थाके संबंधसें तैजससंज्ञा होती है और सुषुप्ति-अवस्थाके संबंधसें प्राज्ञसंज्ञा होती है अर्थात् अंतः-करणकी स्थूलसूक्ष्मभेदसें दो अवस्था होती हैं तिनमें स्वप्नजागरणमें तो स्थूलअवस्था होती है और सुषुप्ति-में सूक्ष्मअवस्था होती है सो तिस सूक्ष्मअवस्थाका अभिमानी जीव प्राज्ञ कहलाता है ऐसा जानना चहिये और सोई सूक्ष्मअवस्थाको प्राप्त भया तमोगुण-प्रधान बीजरूपसे स्थित अंतःकरण जीवका कारण शरीरभी कहलाता है इति ॥ २८ ॥

एवं जीवस्योत्पत्तिं तस्यांतःकरणोपाधित्वं च निरूप्याधुना तदर्थमीश्वरस्य प्रवृत्तिं दर्शयति

**तद्भोगार्थं स्थूलदेहनिर्माणम् ॥ ३९ ॥**

आकाशादिसूक्ष्मभूतेभ्यो जीवस्य सूक्ष्मशरीरं निर्माय पुनस्तस्य जीवस्य भोगार्थं पंचीकरणद्वारा तेभ्यः पंचमहाभूतेभ्यः परमेश्वरः स्थूलशरीरस्य नि-र्माणं करोति नहि स्थूलदेहमंतरा क्वचिज्जीवस्य सम्यक्तया भोगः संभवतीति ॥ २९ ॥

इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसें जीवकी उत्पत्ति और तिसका अंतःकरण उपाधिपणा निरूपण करके अब तिसके लिये ईश्वरकी प्रवृत्ति दिखलाते हैं ( तद्भोगार्थं स्थूलदेहनिर्माणम् ) पूर्वोक्त रीतिसें आकाश आदि सूक्ष्म पंचमहाभूतोंसें जीवका सूक्ष्म शरीर निर्माण करके फिर तिस जीवके भोगके लिये पंचीकरणद्वारा तिन पंचमहाभूतोंसें ईश्वर स्थूल देहका निर्माण करता है क्योंकि स्थूलदेहके विना कहींभी जीवको ठीक रीतिसें भोग नहि होसकता है इति ॥ ३९ ॥

नन्वीश्वरेण सर्वेषां जीवानामेकविधं शरीरं किमर्थं न निर्मितं तत्राह

जातिभेदस्तु वैचित्र्यार्थम् ॥ ४० ॥

योऽयमीश्वरेण जीवेषु देवदैत्यमनुष्यपशुपक्ष्यादिजातिभेदो निर्मितः स तु केवलं जगद्रचनाया वैचित्र्यार्थमेवेत्यवगंतव्यं परमेश्वरस्य लीलामयत्वादस्य जगतो रचनावैचित्र्यमावश्यकं नहि क्वचिदेकाकारतया लीला समीचीना भवतीति ॥ ४० ॥

ईश्वरने सब जीवोंके शरीर एक जैसे बराबर क्यों नहि रचे ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं

( जातिभेदस्तु वैचित्र्यार्थम् ) यह जो ईश्वरने जीवोंमें देवता दैत्य मनुष्य पशु पक्षी आदि अनेक प्रकारकी जातियां रची हैं सो केवल जगत्रचनाकी विचित्रताके लिये हि रची है ऐसा जानना चहिये क्योंकि यह जगत् परमेश्वरकी लीलारूप है इसलिये इसमें विचित्र रचनाकी आवश्यकता है क्योंकि एकहि रूपसें लीला ठीक नहि होसकती है इति ४०

आकृतिभेदश्च ॥ ४१ ॥

वैचित्र्यार्थमित्यनुषज्यते सर्वास्वपि जीवजातिषु परस्परं जीवानां योऽयमाकृतिभेदो दृश्यते कस्यापि मुखं केनापि न समानं प्रतिभाति सोपि वैचित्र्यार्थमेवेति ज्ञातव्यं नहि तेन विना परस्परं विवेकाभावात् जगद्व्यवहारः समीचीनो भवितुमर्हतीति ॥ ४१ ॥

आकृतिभेदश्च । तथा सर्व जीवयोनियोंमें जो यह परस्पर जीवोंमें आकृतिका भेद देखनेमें आता है कि किसीका मुख किसीके साथ नहि मिलता है सोभी ईश्वरने जगत्रूपी लीलाविचित्रताके लिये किया है ऐसा जानना चहिये क्योंकि इसभेदके विना परस्पर जीवोंकी पहचान नहि होनेसें जगत्का व्यवहार ठीक नहि होसकता है इति ॥ ४१ ॥

किमेकजीवजातेः कर्मणः सकाशादितरजीव-जातयः प्रभवंति किंवा सर्वाः स्वतंत्रतयेत्यत्राह

स्वातंत्र्येण सहोत्पत्तिश्रवणात् ॥ ४२ ॥

सर्वा एव हि देवमनुष्यपशुपक्ष्यादिजीवजातयः स्वतंत्रतयैवोत्पद्यंते नत्वितरेतरकर्मवशादिति ज्ञातव्यं कुतः सहोत्पत्तिश्रवणात् प्रायः सर्वत्र श्रुतिस्मृतिषु सर्वासां जीवजातीनां सहैवोत्पत्तिर्विहितास्ति तथाच मुंडकोपनिषद्वचनं (तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसीति ) मनुस्मृतावपि( देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः । यक्षरक्षःपिशाचांश्च गंधर्वाप्सरसोऽसुरानिति ) ततः सर्वजीवजातयः स्वतंत्रतयैवोत्पद्यंत इति वेदितव्यम् ॥ ४२ ॥

एक जीवजातिके कर्मोंसें दूसरी जीवजातियां उत्पन्न होती हैं किंवा सबी जीवजातियां स्वतंत्र उत्पन्न होती हैं ऐसी जिज्ञासा होनेसें समाधान कथन करते हैं ( स्वातंत्र्येण सहोत्पत्तिश्रवणात् ) देवता मनुष्य पशु पक्षि आदि सर्व जीवजातियां स्वतंत्रहि उत्पन्न होती हैं एक दूसरेके कर्मोंसे उत्पन्न नहि होतीं क्योंकि सहोत्पत्तिश्रवणात् कहिये प्रायः सबजगा श्रुति और

स्मृतियोंमें सब जीवजातियोंकी साथ साथहि उत्पत्ति कथन करी है जैसे कि मुंडकउपनिषत्में लिखा है कि ( तिस परमात्मासें बहुत प्रकारके देवता साध्या मनुष्य पशु पक्षी उत्पन्न होते भये इति । तथा मनुस्मृतिमेंभी लिखा है कि ( परमात्माने देवता और देवतायोंके गण बडे तेजस्वी महर्षि यक्ष राक्षस पिशाच गंधर्व अप्सरा और दैत्योंको उत्पन्न किया इति । इस लिये सबी जीवजातियां स्वतंत्रहि उत्पन्न होती हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४२ ॥

ननु प्रथमतो मनुष्यजातिरुत्पद्यते पश्चात्तत्कर्मानुसारेणान्या जीवजातयो जायंते तत्राह

**मनुष्यादिति चेन्नान्यत्र संख्याधिक्यात् ४३**

मनुष्यजातिसकाशादेवान्या जीवजातयः प्रभवंतीति नैवं मंतव्यं कुतः अन्यत्र संख्याधिक्यात् मनुष्यजातेरन्यत्र पशुपक्षिकीटपतंगजलचरादियोनिषु जीवानामधिका संख्या दृश्यते नहि किलाल्पसंख्यैर्मनुष्यैः कीटाद्यधिकसंख्याका जीवजातयः पूरयितुं शक्यंते ततः सर्वा जीवजातयः स्वतंत्रतयैवोत्पद्यंत इति वेदितव्यम् ॥ ४३ ॥

ननु सृष्टिके आदिमें पहले एक मनुष्यजाति उत्पन्न

होती है और पीछे तिन मनुष्योंके कर्मोंसे दूसरी जीवजातियां उत्पन्न होती हैं ऐसी शंका होने पर समाधान कथन करते हैं ( मनुष्यादिति चेन्नान्यत्र संख्याधिक्यात् ) मनुष्यजातिके कर्मोंसे सब दूसरी जीवयोनियां उत्पन्न होती हैं ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि अन्यत्र संख्याधिक्यात् कहिये मनुष्य जातिसें दूसरी पशु पक्षी कीट पतंग जलचर आदि जीवयोनियां गिणतीमें बहुत अधिक देखनेमें आती हैं सो थोडी गिणतीवाले मनुष्योंसें अधिक संख्यावाली जीवयोनियोंकी कैसे पूर्ति होसकती है अर्थात् नहि होसकती इसलिये सर्व जीवजातियां स्वतंत्रहि उत्पन्न होती हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४२ ॥

यद्येवं सर्वा जीवजातयः स्वतंत्रतयैवोत्पद्यंते तदा ( तद्यइह रमणीयचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चंडालयोनिं वेत्यादिश्रुतिवचनानां विरोधो भविष्यतीत्यत्राह

**कर्मवशात्तु भ्रमणं पांथवज्जीवस्य ॥ ४४ ॥**

तुशब्देन शंकां व्यावर्तयति शुभाशुभकर्मवशाज्जीवस्यान्यजीवयोनिषु परिभ्रमणं भवतीति ज्ञातव्यं पांथवदिति निदर्शनं यथा किलपांथो यात्रादिकार्यवशात्तत्र तत्र ग्रामेषु प्रविशति निर्गच्छति च तद्वदेव मनुष्यादिजीवानां कर्मवशान्नीचोच्चजीवयोनिषु प्रवेशो निर्गमनं च जायते नतु तत्तत्कर्मभिरन्यजीवयोनयः प्रभवंति तास्त्वीश्वरेण स्वतंत्रतयैव निर्मिताः संतीति वेदितव्यम् ॥ ४४ ॥

जो इस प्रकार सर्वजीवयोनियां स्वतंत्ररूपसें उत्पन्न होती हैं तो फिर जो जीव यहां शुभ कर्म करते हैं सो मरणेके पीछे शीघ्रहि ब्राह्मणयोनि वा क्षत्रिययोनि वा वैश्यआदि शुभ योनिको प्राप्त होते हैं और जो जीव यहां पापकर्म करते हैं सो पीछे शीघ्रहि श्वानयोनि वा शूकरयोनि वा चंडालआदि नीचयोनिको प्राप्त होते हैं इति ) इस छांदोग्यउपनिषत्के वचनके साथ विरोध होवेगा ऐसी शंका होनेसें समाधान निरूपण करते हैं ( कर्मवशात्तु भ्रमणं पांथवज्जीवस्य ) शुभ और अशुभ कर्मोंके वशसें जीवात्माका दूसरी जीवयोनियोंमें परिभ्रमण होता

है ऐसा जानना चहिये पांथवत् कहिये जैसे मार्गमें चलनेवाला मुसाफिर यात्राआदि कार्यके निमित्त अनेक ग्रामोंमें प्रवेश करता है और फिर निकल जाता है तैसेहि मनुष्यआदि जीवोंकाभी कर्मके वशसें दूसरी नीच वा उच्च जीवयोनियोंमें प्रवेश और निर्गमन होता है परंतु उनके कर्मोंसें वो दूसरी जीवयोनियां बनती नहि हैं वोतो ईश्वरने स्वतंत्र-हि बनाई हैं ऐसा जानना चहिये इसलिये इस जगामें उक्तश्रुति वचनका विरोध नहि होसकता इति ॥४४॥

ननु भवतु नाम सर्वजीवजातीनां स्वतंत्रतयै-वोत्पत्तिः परंतु प्रथमं तत्रतत्रैकं मिथुनमुपजायते तदनंतरं तद्बीजेन क्रमेणान्यानि मिथुनान्युत्पद्यंते तत्राह

**नचैकमिथुननिर्माणं बहुवचनात् ॥४५॥**

सृष्टिकाले प्रथमत एकैकमिथुनस्योत्पत्तिर्भवती-त्यपि नैव मंतव्यं कुतः बहुवचनात् ( ततो मनुष्या अजायंत ततो गावोऽजायंतेत्यादिवेदवचनेषु बहु-वचनाभिधानं वर्तते यः किलैकं मिथुनं निर्मिमीते स खल्वेकस्मिन्नेव काले बहून्यपि मिथुनानि निर्मातुं शक्नोति क्रमेणैकैकमिथुननिर्माणे त्वीश्वरस्य सृष्टि-

रचनायामतीव विलंवो जायेत तस्मात्प्रथमत एव वहूनि मिथुनान्युत्पद्यंत इति निश्चेयम् ॥ ४५ ॥

उक्तरीतिसें सर्वजीवजातियोंकी स्वतंत्र उत्पत्ति होवो परंतु सृष्टिकेआदिमें पहले स्त्रीपुरुषका एक एक जोडा उत्पन्न होता है और पीछे तिसके बीजसें क्रमसें अनेक जोडे उत्पन्न होते हैं ऐसी शंका होनेपर समाधान निरूपण करते हैं ( नचैकमिथुननिर्माणं वहुवचनात् ) सृष्टिके आदिमें पहले सब जीवोंका एक एक जोडा उत्पन्न होता है ऐसा भी नहि मानना चहिये क्योंकि वहुवचनात् कहिये सृष्टिकी उत्पत्ति-प्रसंगमें वहुवचनका प्रयोग किया है जैसे कि बृह-दारण्यक उपनिषत्में लिखा है कि ( तिस परमात्मासें मनुष्य उत्पन्न होते भये तिससें गौवां उत्पन्न होती भई इति । जो परमात्मा एक जोडेको रचता है सो एककालमें अनेक जोडोंकोभी रच सकता है और जो पहले एक जोडेसें दूसरे जोडेकी उत्पत्ति होवे तो फिर सृष्टिरचनेमें ईश्वरको बडाभारी विलंब होवेगा इसलिये पहलेसेंहि वहुतसे जोडे उत्पन्न होते हैं ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ ४५ ॥

एवं प्रसंगागतानाक्षेपानुपसमाधायाधुना प्रकृत-मनुसरति

विषयकल्पना तद्विहाराय ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्तप्रकारेण जीवानां स्थूलशरीराणि निर्मायानंतरं तेषां विहारायेश्वरेण शब्दस्पर्शरूपरसगंधात्मकानां विषयाणां कल्पना क्रियते वियदादिगुणानां शब्दादीनां जीवभोग्यत्वेन व्यवस्था क्रियत इति विज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

( विषयकल्पना तद्विहाराय ) इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसें जीवोंके स्थूलशरीरोंको रचकरके तिसके अनंतर तिनके भोगविलासके लिये ईश्वर शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पांच विषयोंकी कल्पना करता है अर्थात् आकाश वायु आदिक पांच महाभूतोंके जो शब्द स्पर्श आदि गुण हैं तिनको जीवोंकरके भोगे जानेकी व्यवस्था करता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४६ ॥

तत्साधनमनेकविधम् ॥ ४७ ॥

तदनंतरं तेषां पंचविषयाणामुपभोगार्थमनेकविधं साधनमपीश्वरेण निर्मीयते तद्यथा शब्दोपभोगाय वीणातालमृदंगादीनि वाद्यानि षड्जर्षभादयः स्वरा भैरव्याद्या रागिण्यश्च। स्पर्शोपभोगाय कोमलांगिन्यो ललना दुकूलानि च मृदूनि चंदनाद्यनलेप-

नानि । रूपोपभोगाय चन्द्रवदना योषितो रम्याणि च शैलवननिर्झरनक्षत्राणि । रसोपभोगाय मधुराम्लादिफलानि विविधानि च रसवंत्यन्नव्यंजनानि । गंधोपभोगाय चानेकविधानि पुष्पाणि केशरचंदनागरुकस्तूरीकर्पूरादिद्रव्याणि सुगंधितैलानि च विविधानीत्येवमेकैकस्य विषयस्यानेकविधानि साधनानि जीवानां भोगविलासार्थमीश्वरेण निर्मितानीति ॥ ४७ ॥

( तत्साधनमनेकविधम् ) तिसके पीछे तिन शब्द स्पर्श आदि पांच विषयोंके उपभोगके लिये अनेक प्रकारके साधनभी ईश्वर निर्माण करता है जैसे कि शब्दके उपभोगके लिये वीणा ताल मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजे षड्ज ऋषभ आदि सप्तस्वर और भैरवी आदि अनेक रागरागिनीयां बनायें हैं और स्पर्शके उपभोगके लिये कोमल अंगोंवाली स्त्रियां अनेक प्रकारके रेशमीआदि कोमल वस्त्र और चंदनआदि अनुलेपन बनाये हैं और रूपके उपभोगके लिये चन्द्रवदन सुंदर स्त्रियां और नानाप्रकारके रमणीक पर्वत वन बगीचे सरोवर तारागणआदि बनाये हैं और रसके उपभोगके लिये अनेक प्रकारके मीठे खट्टे फल और रसदायक अन्न

भोजन व्यंजन वनाये हैं तथा गंधके उपभोगके लिये अनेक प्रकारके पुष्प और केशर चंदन अगरु कस्तूरी कर्पूरआदि पदार्थ और नानाप्रकारके सुगंधि इतर तेल वनाये हैं इस रीतिसें एक एक विषयके अनेक प्रकारके साधन ईश्वरने जीवोंके भोगविलासके लिये वनाये हैं इति ॥ ४७ ॥

**लोकव्यवस्था च तन्निवासार्थम् ॥ ४८ ॥**

चकारः पूर्वसूत्रान्वयार्थः। तदनंतरं तेषां जीवानां निवासार्थं भूर्भुवःस्वर्गादिलोकानामीश्वरेण व्यवस्थापि क्रियते तत्र केचिद्देवाः स्वर्गे निवसंति नक्षत्राण्यंतरिक्षे मनुष्या भूर्लोके यक्षरक्षःपिशाचादयः पाताललोके वसंत्येवमन्यत्रापि यथायोग्यमीश्वरेण जीवानां निवासार्थं स्थानानि निर्मितानीति वेदितव्यम् ॥ ४८ ॥

(लोकव्यवस्था च तन्निवासार्थम्) तिसके पीछे तिन जीवोंके निवासके लिये ईश्वर भूमि अंतरिक्ष स्वर्ग आदि लोकोंकी व्यवस्थाभी करता है सो तिनमें कोई देवतालोक स्वर्गमें निवास करते हैं ग्रह नक्षत्र अंतरिक्षलोकमें रहते हैं और मनुष्य पशु आदि भूमिमें रहते हैं तथा यक्ष राक्षस पिशाच आदि

पातालमें रहते हैं इसीप्रकार दूसरे जन तप सत्य आदि लोकोंमेंभी ईश्वरने यथायोग्य जीवोंके निवासके लिये स्थान बनाये हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४८ ॥

कर्मनिमित्तजा गतयः ॥ ४९ ॥

तेषु लोकेषु जीवानां गमनागमनं कर्मनिमित्तजमीश्वरेण संकेतितं येन यादृशं कर्म क्रियते तादृशमेव लोकं स जीवो गच्छति प्रथमतः स्वसंकल्पादीश्वरश्चतुर्दश भुवनानि तत्रत्यजीवकलापांस्तद्भोग्यपदार्थांश्च निर्मायानंतरं जगत्प्रवाहार्थं तत्र कर्मणो निमित्तत्वं कल्पयति यथा प्रथमतः पिता स्वतनयान् स्वतः पालयति तदनु च ते स्वस्वयोग्यतानुसारेणोच्चनीचदशामुपयांत्येवमत्रापि द्रष्टव्यम् ॥ ४९ ॥

( कर्मनिमित्तजा गतयः ) तिन स्वर्गआदि लोकोंमें जीवोंके गमन आगमन होनेमें ईश्वर कर्मोंको निमित्तभूत करता है अर्थात् जो जीव जैसा कर्म करता है सो तैसेहि लोकको जाता है सो प्रथम अपने संकल्पसें ईश्वर चौदा भुवन और तिनमें रहनेहारे सब जीवसमूह और तिसके भोग्यपदार्थोंको

बनाता है और फिर पीछे जगत्के प्रवाह चलानेके लिये तिनमें कर्मोंको निमित्तपणा नियत कर देता है जैसे पहले पिता अपने पुत्रोंको अपनी तरफसें पालन पोषण करता है और पीछे वो अपनी अपनी योग्यताके अनुसार उच्च वा नीच दशाको प्राप्त होते हैं तैसेहि यहांभी जीवोंकी बाबतमें समझलेना चहिये इति ॥ ४९ ॥

धर्मेणोर्ध्वलोकेषु ॥ ५० ॥

धर्मेणोर्ध्वलोकेषु गतिर्भवतीति वाक्यशेषः यो जीवो विशेषतयाऽत्र धर्माचरणं करोति स मरणानंतरमूर्ध्वे स्वर्गादिलोकेषु देवगंधर्वादिदिव्यरूपत्वं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५० ॥

( धर्मेणोर्ध्वलोकेषु ) धर्मसें ऊपरके लोकोंमें जीवकी गति होवे है जो जीव विशेष करके इस लोकमें धर्मका आचरण करता है अर्थात् जिसका पुण्यकर्म अधिक होवे है सो मरणके अनंतर स्वर्ग आदि ऊपरके लोकोंमें जाकरके देव गंधर्व आदि स्वरूपको प्राप्त होता है इति ॥ ५० ॥

पापाधिक्यादधस्तात् ॥ ५१ ॥

पापाधिक्यात् जीवस्याधस्ताद्गतिर्भवतीति ज्ञातव्यं यस्य जीवस्य पापं कर्माधिकं भवति स मर-

णानंतरमधोऽतलवितलादिलोकेषु यक्षरक्षःपिशाचादिनीचयोनिं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५१ ॥

( पापाधिक्याद्धस्तात् ) और पापकी अधिकता होनेसें जीवकी अधोलोकमें गति होवे है ऐसा जानना चहिये अर्थात् जिस जीवके पापकर्म अधिक होते हैं सो मरनेके पीछे अतल वितल आदि नीचेके लोकोंमें जाय करके यक्ष राक्षस पिशाच आदि नीच योनियोंको प्राप्त होवे है इति ॥ ५१ ॥

**समत्वेन च मर्त्यलोके ॥ ५२॥**

पापपुण्ययोः समत्वेन तु मर्त्यलोके गतिर्भवतीति बोद्धव्यं यस्य जीवस्य पापं पुण्यं च मिश्रितं भवति स पुनरस्मिन्नेव भूर्लोके मनुष्ययोनिं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

( समत्वेन च मर्त्यलोके ) तथा पाप और पुण्य दोनोंके बराबर होनेसें जीवकी मर्त्यलोकमें गति होवे है अर्थात् जिस जीवके पापपुण्य मिले हूये होते हैं तिसका फिर इसी भूर्लोकमें मनुष्ययोनिमें जन्म होवे है ऐसा जानना चाहिये इति ॥ ५२ ॥

**आविमोक्षात्संसरणम् ॥ ५३ ॥**

एवं पापपुण्यकर्मभिरावलितस्य जंतोरनिशमू-

र्ध्वाधोलोकेषु मोक्षपर्यंतं संसरणं भवति यावत्पर्यं-तमयं जीवो मोक्षपदं नाधिगच्छति तावदस्मिन्सं-सारे निरंतरं भ्रमणं करोतीति ॥ ५३ ॥

( आविमोक्षात्संसरणम् ) इसप्रकार पापपु-ण्यरूप कर्मोंकरके घिरेहूये जीवका सर्वदाकाल कैवल्य मोक्षपर्यंत नीचे ऊपर लोकोंमें संसरण होता रहता है अर्थात् जबतक यह जीव मोक्षपदको प्राप्त नहि होता है तबतक इस संसारमें निरंतर भ्रमण करता रहता है इति ॥ ५३ ॥

उपासनयाऽनावृत्तिः ॥ ५४ ॥

संसारे भ्रममाणस्य जीवस्य यदा सुकृतसंचय-वशात् प्रणवपर्यंकाद्युपासनासु प्रवृत्तिर्जायते तदा स तत्परिपाके सति ब्रह्मलोकं गत्वाऽनावृत्तिं प्रा-प्नोति ततो न पुनरावर्तत इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

( उपासनयाऽनावृत्तिः ) सो इस प्रकार संसा-रचक्रमें भ्रमण करते हूये जीवकी जब विशेष पुण्य-कर्मोंके प्रभावसें ओंकार वा पर्यंकआदि उपासना करनेमें प्रवृत्ति होवे है तो तिसके परिपक्व होनेसें सो जीव ब्रह्मलोकमें जायकर अनावृत्तिको प्राप्त होता है अर्थात् फिर तहांसे लोटकर संसारचक्रमें नहि आता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५४ ॥

ब्रह्मज्ञानेन निर्वाणं निर्वाणम् ॥ ५५ ॥

यदा पुनः सत्संगसच्छास्त्राभ्यासेन जीवस्य ब्रह्मणः परमेश्वरस्य स्वरूपज्ञानं यथावज्जायते तदा तस्याशेषकर्मक्षये संसारबंधनान्मुक्तिर्भवतीति सूत्रे द्विरुच्चारणं तु पादसमाप्त्यर्थं विज्ञेयम् ॥ ५५ ॥

( ब्रह्मज्ञानेन निर्वाणं निर्वाणम् । ) और जब सत्संग और सत्शास्त्रोंके अभ्याससें जीवको जिस कालमें परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होवे है तो तिस कालमें सर्व कर्मोंके नाश होनेसें तिसकी संसारबंधनसें मुक्ति होवे है सूत्रमें जो पदका दुवारा उच्चारण है सो पादकी समाप्तिके लिये जानना चहिये इति ॥ ५५ ॥

इति श्रीब्रह्मानन्दस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शने तृतीयः पादः ।

---

## अथ चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

तदेवं तृतीयपादे जगद्रचनाप्रकारं जीवोत्पत्तिं कर्मानुसारेण तस्य परलोकगतिं च निरूपयित्वाऽधुनेश्वराराधनविधानं तत्फलं च वर्णयितुमयं चतुर्थः पादः प्रारभ्यते। तत्र सुविदितमीश्वरस्य जगत्कारणत्वं तस्य स्वरूपं प्रभावो जगद्रचनाप्रकारश्च

परंतु केन प्रकारेण तस्याराधनं कर्तव्यमित्यपेक्षायामाह—

**तस्योंकारो नामधेयम् ॥ १ ॥**

तस्योक्तलक्षणस्येश्वरस्योंकारः प्रणवो नामधेयमस्तीति ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥

( तस्योंकारो नामधेयम् । ) तिस परमेश्वरका ओंकार नाम है अर्थात् ओं यह ईश्वरका नाम है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १ ॥

कुत एतदवगम्यते

**सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ २ ॥**

ओमिति ब्रह्म, एतध्येवाक्षरं ब्रह्म, तस्य वाचकः प्रणवः, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदतीत्यादिश्रुतिस्मृतिषु सर्वत्रोंकारस्येश्वरनामधेयत्वं प्रसिद्धमस्तीति ॥ २ ॥

ओंकार ईश्वरका नाम है यह वार्ता कैसे जानीजावे ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ) तैत्तिरीयउपनिषत्में लिखा है कि ( ओं यह ब्रह्म है ) और कठउपनिषत्में लिखा है कि ( यह ओंकार अक्षरहि ब्रह्म है ) और पातंजलयोगशास्त्रमें लिखा है कि ( तिस ईश्वरका

ओंकार नाम है ) और भगवत्गीतामें लिखा है कि ( ओं यह एक अक्षर ब्रह्म है ) तथा योगियाज्ञवल्क्य-स्मृतिमेंभी लिखा है कि ( तिस ईश्वरका ओंकार नाम है तिसके जप करनेसें ईश्वर प्रसन्न होता है इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंमें सर्वत्र ईश्वरका ओंकार नाम प्रसिद्ध है इति ॥ २ ॥

नन्वीश्वरस्याव्यक्तत्वाददृश्यत्वाच्च कथमोंकारेण तस्य ग्रहणं जायते तत्राह—

**शब्दार्थसंबंधात्तल्लक्ष्यत्वम्॥ ३ ॥**

शब्दस्यार्थेन नित्यं संबंधो वर्तते नहि कश्चिदनर्थकः शब्दो भवति वंध्यापुत्रगगनारविंदशशशृंगादिशब्दानां त्वभिप्रायवशादर्थशून्यत्वं प्रतीयते परंतु तेषां वंध्या पुत्रो गगनमरविंदं शशः शृंगमित्येवं विश्लेषेणोच्चारणादर्थवत्त्वमस्त्येवं ततः प्रकृतिपुरुषाकाशादिशब्दानामिवाव्यक्तस्यापीश्वरस्योंकारेण ग्रहणं संभवतीति वेदितव्यम् ॥ ३ ॥

ननु ईश्वर तो नित्य अव्यक्त और अदृश्य है तो उसका ओंकारशब्दसें कैसे ग्रहण होसके है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( शब्दार्थसंबंधात्तल्लक्ष्यत्वम् ) सर्व शब्दोंका अपने अर्थके

साथ नित्य संबंध होता है कोईभी शब्द विना अर्थके नहि होता है ऐसा जानना चहिये और जो वंध्या-पुत्र गगनारविंद शशशृंग आदि शब्द हैं तिनका निषेधके अभिप्रायसें तो कुछ अर्थ प्रतीत नहि होता परंतु तिनके भिन्नभिन्न उच्चारण करनेसें सो सब शब्द अवश्य अर्थवाले होते हैं जैसे वंध्या पुत्र गगन-अरविंद शश शृंग इसप्रकार सब शब्दोंके अर्थ सत्य होते हैं इसलिये जैसे प्रकृति पुरुष आकाश आदि शब्द अव्यक्तपदार्थोंके वाचक हैं तैसेहि ओंकारसें अव्यक्त ईश्वरकाभी ग्रहण होसके है ऐसा जानना चाहिये इति ॥ ३ ॥

एवमोंकारस्येश्वरनामधेयत्वमभिधायाधुना तत्र विशेषविधानं दर्शयति

**तस्य ग्रहणमाचार्यात् ॥ ४ ॥**

ओंकारेणेश्वराराधनमभिलषता पुरुषेण तस्योंकारमंत्रस्याचार्यात् गुरोर्मुखादेव विधिना ग्रहणं कर्तव्यं गुरोः सकाशाद्गृहीतस्य हि मंत्रस्य जपेन सम्यक् सिद्धिर्जायते तथा चोक्तं छान्दोग्योपनिषदि ( आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति ॥ ४ ॥

इसप्रकार ओंकारको ईश्वरका नामपणा निरूपण करके अब तिसमें विशेष विधिको दिखलावे हैं (तस्य ग्रहणमाचार्यात्) ओंकारसें ईश्वरके आराधन करनेकी इच्छावाले पुरुषको तिस ओंकारमंत्रका गुरुके मुखसेंहि ग्रहण करना चहिये अपने आप पुस्तकमेंसें देख करके नहि जपना चहिये क्योंकि गुरुमुखसें ग्रहण किये हूये हि मंत्रके जप करनेसें ठीक सिद्धिकी प्राप्ति होवे है तथा छांदोग्यउपनिषत्मेंभी लिखा है कि (गुरुसे ग्रहण करी हूई हि विद्या श्रेष्टफलकी प्राप्ति करती है) इति ॥ ४ ॥

तज्जपस्तदर्थानुसंधानम् ॥ ५ ॥

तस्य विधिपूर्वकं गुरोर्गृहीतस्योंकारस्य प्रतिदिनं जपः कर्तव्यः स्वभावतश्चंचलस्य मनसो निरोधार्थं जपकाले तस्योंकारस्य यो लक्ष्यभूतोऽर्थः परमेश्वरस्तस्यापि चिंतनं करणीयं प्रणवमुच्चारयन्नीश्वरस्य सर्वव्यापकत्वेन मनसाऽनुसंधानं कुर्यादित्यर्थः॥५॥

(तज्जपस्तदर्थानुसंधानम्।) विधिपूर्वक गुरुमुखसें ग्रहण करनेके अनंतर तिस ओंकारका नित्यप्रति जप करना चहिये तथा जपकालमें चंचल मनको दूसरी तरफसें रोकनेके लिये तिस ओंकारका लक्ष्यभूत अर्थ जो परमेश्वर है तिसकाभी चिंतन करना चहियें

अर्थात् ओंकारका उच्चारण करते हूये मनसें सर्वव्यापक रूपसें ईश्वरका साथ साथ स्मरण करता जावे इति ॥ ५ ॥

ध्येयगुणानुभावनं च ॥ ६ ॥

तेनोंकारेण ध्येयस्येश्वरस्य ये श्रुतिस्मृतिविहिताः सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादयो दिव्या गुणास्तेपामपि जपकाले मनसाऽनुभावनं पुनःपुनः स्मरणं कर्तव्यं जपकाले ध्येयगुणानुभावनेनोपासकस्य शीघ्रमेव मंत्रसिद्धिर्भवतीति ॥ ६ ॥

( ध्येयगुणानुभावनं च । ) तिस ओंकार करके उपासना करने योग्य ईश्वरके जो वेद और शास्त्रोंमें कथन किये हूये सर्वज्ञपणा सर्वशक्तिपणा आदि दिव्य गुण हैं तिनकाभी जप करते हूये मनसें वारंवार स्मरण करना चहिये क्योंकि जपकालमें ध्येयदेवताके गुणोंके चिंतन करनेसें उपासक पुरुषको शीघ्रहि मंत्रकी सिद्धि होवे है इति ॥ ६ ॥

रचनावैचित्र्यात्तद्ग्रहणम् ॥ ७ ॥

तेषां सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादीनामीश्वरगुणानां रचनावैचित्र्यात् ग्रहणं कर्तव्यं नहीदृशी जगतो विचित्ररचना सर्वज्ञं सर्वशक्तिं च विना भवितुमर्हति ततो विचित्ररचनाकारित्वादीश्वरः सर्वज्ञः

सर्वशक्तिमान् सर्वांतर्यामी सर्वत्र व्यापकश्चेत्येवं जपकाले स्वमनसीश्वरगुणाननुचिंतयेदित्यर्थः ॥ ७॥

( रचनावैचित्र्यात्तद्ग्रहणम् । ) तिन पूर्वोक्त सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्व आदि ईश्वरके गुणोंका जगत्की विचित्ररचनासें ग्रहण करलेना चहिये क्योंकि इसप्रकारकी जगत्की विचित्र रचना सर्वज्ञ और सर्वशक्तिके विना नहि होसकती है इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है सर्वका अंतर्यामी है और सर्वत्र व्यापक है इस रीतिसें जप करते समयमें अपने मनमें ईश्वरके गुणोंका चिंतन करना चहिये इति ॥ ७ ॥

**तेनाभिमुखत्वमीशस्य ॥ ८ ॥**

तेन दिव्यगुणानुचिंतनपूर्वकमोंकारजपेनेश्वरस्योपासकं प्रत्यभिमुखत्वं भवतीति ॥ ८ ॥

( तेनाभिमुखत्वमीशस्य । ) इसप्रकार ईश्वरके दिव्य गुणोंके चिंतनपूर्वक ओंकारके जप करनेसे जप करनेवाले उपासककी तरफ ईश्वरकी कृपादृष्टि होती है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ८ ॥

अत्रार्थे दृष्टांतमाह—

**नामिन इव लोके ॥ ९ ॥**

यथा लोके नामोच्चारणेनोच्चारकं प्रति नामिनः

पुरुषस्याभिमुखत्वं जायते तद्वदेव प्रणवोच्चारणेने-श्वरस्य स्वभक्तं प्रति कृपाकटाक्षो भवतीति ॥ ९ ॥

इस वार्तामें दृष्टांत कहते हैं ( नामिन इव लोके ) जैसे लोकमें नामके उच्चारणसें नामी पुरुषकी बुलानेवालेकी तरफ सन्मुखता होती है तैसेहि ओंकारके जप करनेसें ईश्वरका अपने भक्तके ऊपर अवश्य कृपाकटाक्ष होता है ऐसा जानना चहिये इति ॥९॥

एवं साधारणतयेश्वराराधनविधानमुक्त्वाऽधुनोत्तमाधिकारणं प्रति विशेषप्रकारं वर्णयति—

तद्ध्यानं चानंतरम् ॥ १० ॥

प्रणवजपस्यानंतरं तस्येश्वरस्य योगशास्त्रोक्तासनप्राणायामादिनियमपूर्वकं निरंतरं ध्यानमपि कर्तव्यं नहि खंडशः कृतं ध्यानं सिद्धये कल्पते ततो नित्यमेव तदादरेणानुष्ठेयं तथाच पातंजलसूत्रं (स तु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारासेवितो दृढ भूमिरिति १०

इस प्रकार सबके लिये साधारणरूपसें ईश्वरके आराधनका विधान कथन करके अब उत्तम अधिकारीके लिये तिसमें विशेष प्रकारका वर्णन करते हैं (तद्ध्यानं चानंतरम्।) ओंकारके जप करनेके पीछे तिस ईश्वरका योगशास्त्रमें कथन किये हुये आसन प्रा-

णायाम आदि नियमके अनुसार निरंतर ध्यानभी करना चहिये क्योंकि जप और ध्यान दोनोंके मिलनेसें पूर्णरीतिसें ईश्वरका आराधन होता है सो खंड खंड़ करके ध्यान करनेसें शीघ्रसिद्धिकी प्राप्ति नहि होती इसलिये नित्यंप्रतिहि सोप्रेमपूर्वक करना चहिये जैसे कि पातंजलयोगशास्त्रमें लिखा है कि ( दीर्घकालपर्यंत निरंतर और आदरपूर्वक अभ्यास करनेसें हि योगध्यानकी सिद्धि होवे है ) इति ॥ १० ॥

केन प्रकारेण तदीश्वरस्य ध्यानं कर्तव्यमित्यत्राह

**ज्योतीरूपेण तन्मयत्वात् ॥ ११ ॥**

ईश्वरस्य चिन्मयज्योतिःस्वरूपेण ध्यानं कर्तव्यं कुतः तन्मयत्वात् ज्योतिर्मयमेव हि परमेश्वरस्य स्वरूपमस्तीति पूर्वमेव निर्णीतं तथा च वेदवचनं (तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतमिति ११

किस प्रकारसें सो ईश्वरका ध्यान करना चहिये ऐसी अपेक्षा होनेसें कहते हैं ( ज्योतीरूपेण तन्मयत्वात् ) ईश्वरका चिन्मय ज्योतिःस्वरूपसें ध्यान करना चहिये क्योंकि ईश्वरका ज्योतिर्मयहि स्वरूप है ऐसा पहले दूसरे पादमें निर्णय कर आये हैं तथा यजुर्वेदमेंभी लिखा है कि ( सूर्य आदि ज्योतियोंका

ज्योति अमृतरूप परमेश्वरकी देवतालोक उपासना करते हैं ) इति ॥ ११ ॥

कस्मिन्स्थाने ज्योतिषो ध्यानं कर्तव्यमित्यपेक्षायामाह–

**भ्रुवोर्मध्ये वैशेष्यात् ॥ १२ ॥**

योगशास्त्रेषु प्रायशो ब्रह्मरन्ध्रे हृदयकमले भ्रूमध्ये चेत्येवं त्रिषु स्थानेषु ज्योतिर्ध्यानस्य विधानं वर्तते तत्र ब्रह्मरंध्रहृदयकमलयोरदृश्यत्वान्न सम्यक्तया चित्तस्य लक्ष्यत्वं जायते भ्रूमध्यस्य त्वपरोक्षत्वात् सहसैव सुलक्ष्यत्वं भवत्यतः सुकरत्वात् भ्रूमध्य एवेश्वरज्योतिषो ध्यानं कर्तव्यं तथाचोक्तं सर्वदर्शनसंग्रहे ( भ्रूयुगमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्यवज्जगद्भासि केषांचित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं ज्योतिरिति ॥ १२ ॥

तिस ज्योतिःस्वरूपका किस स्थानपर ध्यान करना चहिये ऐसी अपेक्षा होनेसें कहते हैं ( भ्रुवोर्मध्ये वैशेष्यात् । ) योगके ग्रंथोंमें विशेष करके ब्रह्मरंध्र हृदयकमल और भ्रूमध्य इन तीन स्थानोंमेंहि ज्योतिका ध्यान करना कथन किया हूया है सो तिनमें ब्रह्मरंध्र और हृदयकमल यह दोनों बाहिरसें

दीखते नहि हैं इसलिये उन दोनोंमें चित्तका लक्ष्य ठीक ठीक नहि जम सकता है और भ्रूमध्य तो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है सो तिसमें शीघ्रहि चित्तका लक्ष्य जम जाता है इसलिये ध्यानकी विशेषता होनेसें भ्रूमध्यमेंहि ज्योतिका ध्यान करना चहिये तथा सर्वदर्शनसंग्रहमेंभी लिखा है कि ( दोनों भ्रुवों-के मध्यमें अग्नि विजली वा सूर्यके समान जगत्के प्रकाश करनेवाला ज्योति है सो किसी पुंण्यात्मा योगी पुरुषोंको तिस चेतनस्वरूप ज्योतिका दर्शन होवे है ) इति ॥ १२ ॥

एवमीश्वरस्य भ्रूमध्ये ज्योतिःस्वरूपेण ध्यानमभिधायाधुना क्रमेण तस्य दर्शनप्रकारं वर्णयति–

शिरःकंपनमारंभे ॥ १३ ॥

भ्रूमध्ये ध्यानाभ्यासे क्रियमाणे प्रथमं ध्यायिनः शिरसः कंपनं भवतीति ज्ञातव्यं यावच्छिरःकंपनं न स्यात्तावज्जानीयान्न सम्यङ्मनो लग्नमिति ॥१३॥

इसप्रकार ईश्वरका भ्रूमध्यमें ज्योतिःस्वरूपसें ध्यान कथन करके अब क्रमसें तिस ज्योतिःके दर्शनका प्रकार निरूपण करते हैं ( शिरःकंपनमारम्भे ) भ्रूमध्यमें ध्यानके अभ्यास करनेसें कुछकाल पीछे ध्यान करनेवाले पुरुषका ध्यानकालमें शिर कांपने

लगता है ऐसा जानना चहिये सो जबपर्यंत शिर नहि कांपे तबतक जानलेना चहिये कि अबी ध्यानमें मन ठीक नहि लगता है इति ॥ १३ ॥

तारकाद्यवलोकनं पश्चात् ॥ १४ ॥

ततः कतिचिद्दिनानंतरं ध्यानं कुर्वतः पुरुषस्य तारकाद्यवलोकनं जायते ध्याने स्थितः कदाचित्तारागणं कदाचिच्चन्द्रं कदाचिदादित्यमंडलं चावलोकयतीत्यर्थः । तथाचोक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि (नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम् एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे । इति ॥ १४ ॥

( तारकाद्यवलोकनं पश्चात् । ) तिसके पीछे कुछदिन अभ्यास करनेसें पुरुषको तारका आदिका अवलोकन होवे है अर्थात् ध्यानकालमें कबी तारागण कबी चंद्र और कबी सूर्यमंडल देखनेमें आवे है तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( ध्यानकालमें ब्रह्मज्योतिके दर्शनके पहले योगीको नीहार धूवां सूर्य अग्नि वायु खद्योत विजली स्फटिक चंद्रमा आदि दीखते हैं इति ॥ १४ ॥

ततः किं भवति तदाह

रसास्वादस्तदनुजिह्वाग्रे ॥ १५ ॥

तत्पश्चात्सम्यगभ्यासे वर्धमाने ध्यायिनो जिह्वाग्रे दिव्यरसस्यास्वादनं जायते मृदुमध्योत्तमक्रमेण दुग्धद्राक्षाशर्करोपमस्य रसस्यानुभवो भवतीत्यर्थः। यममृतस्रावमुपवर्णयंति योगिनः। तथाचोक्तं योगियाज्ञवल्क्यसंहितायां ( जिह्वामूलेऽमृतस्रावो भ्रूमध्ये चात्मदर्शनमिति ॥ १५ ॥

( रसास्वादस्तदनुजिह्वाग्रे ) तिसके पीछे भलीप्रकारसें ध्यानके अभ्यासके वढनेसें ध्यान करनेवालेको जिह्वाके अग्रभागमें दिव्य रसका स्वाद आने लगता है सो पहले तो दुग्ध जैसा फिर दाख जैसा तिसके पीछे मिश्री जैसा क्रमसें रसका अनुभव होवे है जिसको योगी लोक अमृतका झरण वा पान कहते हैं तथा योगियाज्ञवल्क्यसंहितामेंभी लिखा है कि (भ्रूमध्यमें ध्यान करनेसें जिह्वाके मूलमें अमृतका स्राव होवे है और आत्मज्योतिका दर्शन होवे है) इति १५

दूरदर्शनादिविनोदश्च ॥ १६ ॥

चकारः पूर्वसूत्रान्वयार्थः। तत्पश्चात् ध्यायिनो ध्यानकाले दूरदर्शनादिविनोदोऽपि जायते तथाहि कदाचिदकस्माद्दूरगतानपि नक्षत्रमंडलगिरिशिखरा-

दिपदार्थानभ्याशे स्थितानिवावलोकयति तद्वदति-दूरगतानपि लोकवार्तालापानकस्मादाकर्णयतीत्येवं स्पर्शगंधादीनामपि दूराद्ग्रहणं वेदितव्यम् ॥ १६ ॥

( दूरदर्शनादिविनोदश्च ) तिसके पीछे ध्यान-कालमें योगीको दूर दर्शन आदि आश्चर्यवार्तायोंकाभी अनुभव होवे है सो जैसे कबी अकस्मात् दूरके नक्षत्र तारामंडल और पर्वतोंके शिखरआदि पदार्थोंको अपनेपासमें स्थित हूयेकी न्यांई देखता है और तैसेहि कबी बहुत दूरमें होनेवाले लोकोंके वार्तालापोंको अकस्मात् अपने समीप होतेकी न्यांई श्रवण करता है तैसेहि दूरसें स्पर्शको और सुगंधकोभी ग्रहण करलेता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १६ ॥

सिद्धादिसमागमोपि स्वप्नवत् ॥ १७ ॥

ध्याने स्थितस्य योगिनो दिव्यदृष्टिप्रभावेणाकाशे विचरतां सिद्धानां गंधर्वाणां देवतानां च समागमोपि जायते स्वप्नवदिति दृष्टांतः यथा स्वप्नकालीनप्रकाशे लोकानां दर्शनं वार्तालापश्च जायते तद्वदेव दिव्यदृष्टिप्रकाशे सिद्धादीनां दर्शनं वार्तालापश्च योगिनो भवतीति ज्ञातव्यं तथाच पातंजलसूत्रं ( मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनमिति ॥ १७ ॥

सिद्धादिसमागमोपि स्वप्नवत् । ध्यानमें स्थित भये योगीको दिव्यदृष्टिके प्रभावसें कबीकबी आकाशमें विचरते हूये सिद्ध गंधर्व और देवतायोंका समागमभी होता है स्वप्नवत् यह यहां दृष्टांत है सो जैसे स्वप्नकालके प्रकाशमें लोकोंका दर्शन वा वार्तालाप होता है तैसेहि दिव्य दृष्टिके प्रकाशमें सिद्ध गंधर्व आदिकोंका दर्शन और वार्तालाप योगीको होता है ऐसा जानना चहिये तथा पातंजलयोगशास्त्रमेंभी लिखा है कि ( सिरके ऊपर ब्रह्मरंध्रमें ध्यान करनेसें सिद्धोंका दर्शन होवे है ) इति ॥ १७ ॥

सुखानुभवश्चांतर्मुखत्वात् ॥ १८ ॥

तथा ध्यानाभ्यासाच्चेतसोंतर्मुखत्वेन ध्यायिनः शरीराभ्यंतरे सुखस्याप्यनुभवो जायते स्वशरीरे विद्यमानस्याप्यात्मसुखस्य बहिर्मुखैर्जनैर्नानुभवः कर्तुं शक्यते योगिनां तु ध्यानकाले तस्यानुभवो भवतीति वेदितव्यम् ॥ १८ ॥

सुखानुभवश्चांतर्मुखत्वात् । तथा ध्यानके विशेष अभ्याससें चित्तवृत्तिके अंतर्मुख होनेसें योगीको अपने शरीरके अंदर आनंदकाभी अनुभव होवे है सो शरीरमें विद्यमान हूयाभी आत्मानंद बहिर्मु-

स्व लोकोंके अनुभवमें नहि आता है योगियोंको ध्यानकालमें तिसका अनुभव होता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ १८ ॥

ब्रह्मज्योतिःप्रकाशस्तदनंतरम् ॥ १९ ॥

तदनंतरं ब्रह्मणः सर्वव्यापकस्य परमात्मनो यत्परमं दिव्यं ज्योतिस्तस्य प्रकाशो जायते ध्यायिनस्तेजोमयत्वेन ब्रह्मज्योतिषो दर्शनं भवतीत्यर्थः १९

( ब्रह्मज्योतिःप्रकाशस्तदनंतरम् ) तिसके पीछे नित्य ध्यान करनेसें सर्वव्यापक परब्रह्म परमेश्वरकी जो परम दिव्य ज्योति है तिसका प्रकाश होवे है अर्थात् योगीको तेजोमयरूपसें ब्रह्मज्योतिका दर्शन होवे है इति ॥ १९ ॥

ननु (न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनं, यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यती)त्यादिश्रुतिवचनेष्वीश्वरस्य दृष्ट्यविषयत्वमुक्तं तत्कथं ध्यायिनस्तं पश्यंतीत्यत्राह—

दिव्यदृष्टित्वान्नासमंजसम् ॥ २० ॥

यदिदं ध्यानकाले परमेश्वरस्य ज्योतिःस्वरूपत्वेन दर्शनमुक्तं तन्नायुक्तं कुतः दिव्यदृष्टित्वात् योगिनां हि सदांतर्मुखत्वेन निर्मलत्वेन च दृष्टिर्दिव्या प्रजायते तया तेषां ब्रह्मदर्शनं भवतीति ज्ञातव्यं

तथाहि ( ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः, दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः, ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः, ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनः ) इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनानीश्वरस्य योगिजनदृष्टिगोचरत्वं प्रतिपादयंति पूर्वोदाहृतश्रुतिवचनानां तु साधारणचर्मचक्षुर्विषयत्वनिषेधे प्रयोजनमस्तीति विज्ञेयम् ॥ २० ॥

ननु कठउपनिषत्में लिखा है कि ( तिस परमात्माका स्वरूप किसीके देखनेमें नहिं आता और उसको कोई नेत्रसें देख नहि सकता ) तथा केनउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( जिस परमात्माको नेत्रसें नहिं देख सकते और जिसकी शक्तिसें नेत्र देखते हैं ) इत्यादि श्रुतियोंके वचनोंमें ईश्वरका स्वरूप दृष्टिके विषयसें रहित कथन किया है तो फिर योगीलोक उसको कैसे देख सकते हैं ऐसी शंकाहोनेसें समाधान कथन करते हैं ( दिव्यदृष्टित्वान्नासमंजसम् ) यह जो पीछे ध्यानकालमें योगीको ईश्वरके ज्योतिःस्वरूपका दर्शन कथन किया है सो अयुक्त नहि है अर्थात् ठीक है क्योंकि दिव्यदृष्टित्वात् कहिये सर्वदाकाल अंतर्मुख रहनेसें और निर्मल

होनेसें योगियोंकी दृष्टि दिव्य होजाती है सो तिस दिव्यदृष्टिसें उनको ब्रह्मज्योतिका दर्शन होवे है जैसे कि मुंडकउपनिषत्में लिखा है कि तिस निष्कल परमात्माको ध्यान करता हूया पुरुष देखता है। और कठउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( सो परमात्मा सूक्ष्मदृष्टिवाले पुरुषोंकरके सूक्ष्मबुद्धिसें देखनेमें आता है ) तथा महाभारतमेंभी लिखा है कि ( जिस परमात्मज्योतिको ध्यान करते हूये योगीलोक देखते हैं तिसको नमस्कार होवो, ध्यानमें स्थित हूये स्थिरचित्त योगीलोक जिसको देखते हैं ) इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंके वचन ईश्वरको योगीजनोंकी दिव्यदृष्टिका विषय कथन करते हैं और जो पीछे शंकामें श्रुतियोंके वचन कथन किये हैं उनका तो साधारण लोकोंके चर्मनेत्रके विषयपणेके निषेधमें प्रयोजन है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २० ॥

कथं कीदृशं च तज्ज्योतिर्दृश्यते तत्राह—

तेजःपुंजवदाकाशे ॥ २१ ॥

ध्यानं कुर्वतो योगिनो यदा चित्तं सम्यक्तया लीनं भवति तदा तस्याकाशे स्थितं कदाचिदकस्मात्तेजःपुंजवत्तद्ब्रह्मज्योतिर्दृश्यते यस्य दर्शनादसौ

परमाह्लादमायाति तथाचोक्तं व्यासेन भारते मोक्ष-
पर्वणि (विधूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान् वै-
द्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथात्मनीति) २१

तिस ब्रह्मज्योतिका किस प्रकारसें और कैसा दर्शन होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( तेजःपुंजवदाकाशे ) ध्यान करते हूये योगी पुरुषका जब भलीप्रकारसें चित्त लीन होवे है तो तिस कालमें कभी एकदम आकाशमें तेजःपुंजकी न्यांई तिस ब्रह्मज्योतिका दर्शन होवे है जिसके दर्शनसें योगीके मनमें बडाभारी आनंद होवे है। तथा महाभारतके मोक्षधर्म पर्वमें व्यासजीनेभी कहा है कि ( जैसे धूवेंसें रहित अग्नि होता है और जैसे तेजरश्मियोंवाला सूर्य होवे है तथा जैसे आकाशमें बिजलीकी चमक होवे है तिसी प्रकारका ध्यानकालमें आत्मज्योति देखनेमें आता है ) इति ॥ २१ ॥

चन्द्रिकोपमं च विस्तीर्णम् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात्कदाचिच्चन्द्रिकावत्तज्ज्योतिः सर्वतः प्रसृतं विस्तीर्णं दृश्यते यथा पूर्णिमायां चन्द्रस्य निर्मलः प्रकाशः सर्वत्र विस्तृतो भवति तद्वदेव ध्याने सर्वत्र विस्तृतं निर्मलं ब्रह्मज्योतिरवलोकयत इति २२

(चन्द्रिकोपमं च विस्तीर्णम्।) तिसके पीछे चंद्रमाकी चांदनीके समान सर्व तरफसें फैलीहुई सो ज्योति देखनेमें आवे है सो जैसे पूर्णिमाके चंद्रमाका निर्मल प्रकाश सब तरफ फैला होता है तैसेहि ध्यानकालमें सो सर्वत्र फैला हूया निर्मल ब्रह्मज्योतिका प्रकाश देखनेमें आवे है इति ॥ २२ ॥

क्रमेण तद्वृद्धिरभ्यासात् ॥ २३ ॥

दिनानुदिनमेवं ध्यानाभ्यासे क्रियमाणे तस्य ब्रह्मज्योतिःप्रकाशस्य क्रमेण वृद्धिर्जायते प्रथमतस्तु स्वल्पदेशे ततो दूरपर्यंतं तत्पश्चात्ततोपि बहुयोजनदूरपर्यंतं प्रसृतं तत्तेजो दृश्यते यस्मिन्नेते जगत्पदार्थाः सर्वतः प्रतिभासंत इति ॥ २३ ॥

(क्रमेण तद्वृद्धिरभ्यासात्।) इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसें दिनदिनप्रति ध्यानका अभ्यास करनेसें तिस ब्रह्मज्योतिके प्रकाशकी क्रमसें धीरे धीरे वृद्धि होवे है सो पहले तो थोडी दूरतक प्रकाश दीखता है फिर बहुत दूरतक दीखने लगता है और फिर तिससेंभी अनेक योजन दूरपर्यंत फैला हूया सो प्रकाश देखनेमें आवे है जिसमें यह जगत्के पदार्थ सर्व तरफसें देखनेमें आते हैं इति ॥ २३ ॥

चन्द्रिकोपमत्वात्तत्किं शीतलं ज्योतिरस्तीत्यत्राह

**तदशीतोष्णमभौतिकत्वात् ॥ २४ ॥**

तदीश्वरस्य स्वरूपभूतं ज्योतिः शीतलं नास्ति न चाप्युष्णं कुतः अभौतिकत्वात् भौतिकं हि चन्द्रादित्यादिज्योतिः शीतमुष्णं वा भवति तद्विलक्षणत्वात्तु परमेश्वरज्योतिषो न शीतत्वं न चाप्युष्णत्वं किंतु केवलं चिन्मयं ज्ञानप्रकाशात्मकमेव तज्ज्योतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥ २४ ॥

चांदकी चांदनीके समान होनेसें क्या वो ज्योति शीतल है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( **तदशीतोष्णमभौतिकत्वात् ।** ) सो ईश्वरकी स्वरूपभूत ज्योतिः शीतल नहि है और उष्णभी नहि है क्योंकि अभौतिकत्वात् कहिये पंचभूतोंका कार्य नहि होनेसें सो शीतल वा उष्ण नहि है क्योंकि चंद्र सूर्य विजलीआदि भौतिक ज्योतिहि शीत वा उष्ण होती है सो उनसे विलक्षण होनेसें ब्रह्मज्योति शीत वा उष्ण नहि है किंतु केवल चैतन्यमय ज्ञानप्रकाशस्वरूप सो ज्योति है ऐसा जानना चहिये इति ॥ २४ ॥

एवमीश्वरोपासकस्य ध्यायिनो ब्रह्मज्योतिर्दर्शनप्रकारं निरूपयित्वाऽधुना तस्य फलं वर्णयति—

कर्मबंधहानिस्तद्दर्शनात् ॥ २५ ॥

तस्येश्वरस्वरूपस्य दर्शनादस्योपासकस्य ध्यायिनः सर्वेषां कर्मबंधनानां हानिर्विनाशो जायते कृतेश्वरदर्शनो न पुनः कर्मबंधनं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २५ ॥

इसप्रकार ध्यान करनेवाले उपासकको ब्रह्मज्योतिके दर्शनका प्रकार निरूपण करके अब तिसका फल वर्णन करते हैं ( कर्मबंधहानिस्तद्दर्शनात् ) तिस ईश्वरके ज्योतिर्मयस्वरूपके उक्त प्रकारसें दर्शन होनेसें ध्यान करनेवाले उपासक पुरुषके सर्व कर्मबंधनोंका नाश होवे है अर्थात् परमात्माके दर्शन होनेसें फिर कबी वो कर्मबंधनको प्राप्त नहि होता है उसके सर्व कर्मबंधन टूट जाते हैं इति ॥ २५ ॥

सर्वसंशयनिवृत्तिश्च ॥ २६ ॥

ईश्वरोस्ति न वा कीदृशं तस्य स्वरूपं कथं च स ज्ञायते दृश्यते वेत्याद्यखिलसंशयजालस्यापि निवृत्तिर्भवति तथाचोक्तं मुंडकोपनिषदि ( भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ) इति ॥ २६ ॥

( सर्वसंशयनिवृत्तिश्च । ) तथा ईश्वरके दर्शन होनेसें सर्व संशयोंकीभी निवृत्ति होवे है अर्थात् ईश्वर

है कि नहि है और उसका किसप्रकारका स्वरूप है और सो ईश्वर कैसे जाना जावे है वा कैसे देखनेमें आवे है इत्यादि सर्व संशयोंके समूहकी निवृत्ति होजावे है क्योंकि वस्तुके प्रत्यक्ष अनुभव होनेसें फिर उसमें कुछ संशय नहि रहता है जैसे कि मुंडकउपनिषत्में लिखा है कि ( तिस ईश्वरके दर्शन होनेसें इस पुरुषके हृदयकी सर्व ग्रंथियां खुल जाती हैं और सर्व संशयोंका नाश हो जावे है तथा सर्वकर्मोंका क्षय हो जावे है ) इति ॥ २६ ॥

तदेवं पूर्वोक्तक्रमेणेश्वराराधनप्रकारं तद्दर्शनविधानं तत्फलं चोक्त्वाऽधुना व्युत्थानकाले परमेश्वराराधनोपयोगिकृत्यविशेषं दर्शयति ।

**तदाज्ञानुसरणं चांगभूतत्वात् ॥ २७ ॥**

जपध्यानादिभिरुपायैरीश्वराराधनं कुर्वता पुरुषेण तस्येश्वरस्याज्ञायाश्चाप्यनुसरणं विधेयं कुतः अंगभूतत्वात् ईश्वरस्याज्ञापालनं तदाराधनस्यांगभूतमस्तीति ज्ञातव्यं यो हि यमाराधयितुमिच्छति स तस्याज्ञापालनमप्यवश्यं करोतीत्यभिप्रायः॥२७॥

पूर्वोक्त रीतिसें ईश्वरके आराधनका प्रकार और तिसके ज्योतिःस्वरूपके दर्शनका विधान और तिसका फल कथन करके अब व्युत्थानकालमें तिस ईश्वरके आराधनका उपयोगी कर्तव्य विशेष दिखलावे हैं

( तदाज्ञानुसरणं चांगभूतत्वात् ) जप ध्यान और संयमादि साधनोंसे ईश्वरके आराधन करनेवाले पुरुषको तिस ईश्वरकी आज्ञाकाभी अनुसरण करना चहिये क्योंकि अंगभूतत्वात् कहिये ईश्वरकी आज्ञाका पालना ईश्वरके आराधनका अंगरूप है क्योंकि जो कोई जिसका आराधन करना चाहता है तो तिसको उसकी आज्ञाका पालनभी अवश्य करना पडता है इति ॥ २७ ॥

कासावीश्वरस्याज्ञा यस्याः किलानुसरणं विधीयते तत्राह—

वेदादिशास्त्रं प्रमाणात् ॥ २८ ॥

ऋग्यजुरादिवेदा योगवेदांतादिदर्शनानि मनुयाज्ञवल्क्यप्रभृतिस्मृतयश्चैतदखिलं शासकत्वात् शास्त्रमित्यभिधीयंते सर्वमेतदीश्वरस्याज्ञाभूतमस्तीति ज्ञातव्यं कुतः प्रमाणात् तथाहि ( यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै, अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद इति, शास्त्रयोनित्वात्, वेदांतकृद्वेदविदेव चाहमित्याद्यनेकश्रुतिस्मृतिवचनान्यत्र प्रमाणभूतानि संतीति ।२८।

सो ईश्वरकी कौनसी आज्ञा है जिसके पालन करनेका विधान किया जाता है ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं ( वेदादिशास्त्रं प्रमाणात् । ) ऋग् यजुः आदि चारों वेद योग वेदांत आदि दर्शन और मनु याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियां यह सब परमार्थका उपदेश होनेसें शास्त्र कहिये है सो यह सब ईश्वरकी आज्ञा समझना चहिये क्योंकि प्रमाणात् कहिये इस वार्तामें बहुतसे श्रुतिस्मृतियोंके वचन प्रमाण हैं जैसे कि श्वेताश्वतरउपनिषत्में लिखा है कि ( तिस ईश्वरने सृष्टिके आदिमें ब्रह्माको उत्पन्न किया और उसको वेदोंका उपदेश दिया । और बृहदारण्यकउपनिषत्मेंभी लिखा है कि ( ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या और उपनिषत् यह सब तिस ईश्वरके हि श्वाससें उत्पन्न हूये हैं और ब्रह्मसूत्रोंमें व्यासजीनेभी लिखा है कि ( वेदका कर्ता होनेसें परमेश्वर सर्वज्ञ है ) तथा भगवत्गीतामेंभी लिखा है कि, ( हे अर्जुन वेदांतका कर्ता और वेदके जाननेहाराभी मैं हूं ) इति ॥ २८ ॥

ननु भवतु वेदस्येश्वराज्ञात्वं परंतु मनुयाज्ञवल्क्यादिस्मृतीनां पातंजलादिदर्शनानां त्वार्षत्वात्कथमीश्वराज्ञात्वं संगच्छते तत्राह—

आर्षत्वान्नेतिचेन्न तदनुसारित्वात् ॥ २९ ॥

स्मृतीनां दर्शनानां च महर्षिनिर्मितत्वादीश्वराज्ञात्वं न संभवतीति नैवं मंतव्यं कुतः तदनुसारित्वात् वेदात्मकेश्वराज्ञानुसारित्वात्तेषामपीश्वराज्ञात्वं ज्ञातव्यं यो हि यदनुसारेण वदति तस्य तद्रूपमेव वचनं भवति यथा राजाज्ञानुसारेण वदतां भृत्यानां वचनं प्रमाणं भवत्येवमत्रापि द्रष्टव्यं परंतु वेदविरुद्धाः स्मृतयो दर्शनानि चेश्वराज्ञात्वेन नैव मंतव्यानीति ॥ २९ ॥

ननु वेदको तो ईश्वरकी आज्ञापणा होवो परंतु मनु याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियां और पातंजल वेदांत आदि दर्शनोंको तो ऋषिप्रणीत होनेसें ईश्वरकी आज्ञापना कैसे होसकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( आर्षत्वान्नेतिचेन्न तदनुसारित्वात् । ) स्मृतियोंको और दर्शनोंको ऋषियोंकरके रचे होनेसें ईश्वरकी आज्ञापना नहि हो सकता ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि तदनुसारित्वात् कहिये स्मृतियां और दर्शनभी वेदरूप ईश्वरकी आज्ञाके अनुसारहि बने हूये हैं इसलिये तिनकोभी ईश्वरकी आज्ञा समझना चहिये क्योंकि जो कोई जिसकी आज्ञाके अनुसार कहता है तो उसकाभी

उसके बराबरहि वचन माना जावे है जैसे राजाकी आज्ञासें जो नौकरलोक वचम कहते हैं तो वोभी प्रमाण माने जाते हैं तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये अर्थात् स्मृतियां और दर्शनोंकोभी ईश्वरकी आज्ञारूपहि मानना चहिये परंतु जो वेदके विरुद्ध स्मृतियां वा दर्शन होवें तो वो ईश्वरकी आज्ञारूप नहि मानने चाहिये इति ॥ २९ ॥

तस्येश्वराज्ञात्मकस्य वेदादिशास्त्रस्य कथमनुसरणं विधेयमित्यत्राह—

विहितार्थानुष्ठानम ॥ ३० ॥

वेदेषु स्मृतिषु दर्शनेषु च यत्कर्तव्यत्वेन विहितं तस्यानुष्ठानं करणीयं वेदादिविहितस्यार्थस्य यद्विधिनाऽनुष्ठानं तदेवेश्वरस्याज्ञानुसरणमित्यवगंतव्यम् ॥ ३० ॥

ईश्वरकी आज्ञारूप जो वेद आदि शास्त्र हैं तिनका किसरीतिसें अनुसरण करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं ( विहितार्थानुष्ठानम् । ) वेदोंमें स्मृतियोंमें और दर्शनोंमें जो जो जीवको कर्तव्यपणेसें कथन किया है तिसका जो अनुष्ठान करना है अर्थात् वेदशास्त्रोंमें विधान किये कर्मोंका

जो विधिपूर्वक भलीप्रकारसें आचरण करना है सोई ईश्वरकी आज्ञाका पालन करना है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३० ॥

प्रतिषिद्धवर्जनं च ॥ ३१ ॥

यस्य च कर्मणो वेदादिशास्त्रेषु निषेधः कृतस्तस्य सर्वथा वर्जनं कर्तव्यं धर्मशास्त्रनिषिद्धं कर्म कदापि नैवाचरणीयमित्यर्थः । तदेवं विहितार्थानुष्ठानेन प्रतिषिद्धवर्जनेन चेश्वराज्ञायाः सम्यक्तया पालनं कृतं भवतीति ॥ ३१ ॥

(प्रतिषिद्धवर्जनं च।) तथा जिस कर्मका वेदशास्त्रोंमें निषेध किया होवे तिसका सर्व प्रकारसें वर्जन करना चहिये अर्थात् धर्मशास्त्रोंमें निषेध किये हूये कर्मका कबीभी आचरण नहि करना चहिये सो इस प्रकार शास्त्रविहित कर्मोंके आचरण करनेसें और निषिद्ध कर्मोंके परित्याग करनेसें भलीप्रकारसें ईश्वरकी आज्ञाका पालन किया होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३१ ॥

ननु पूर्वं प्रथमपादे जीवः परतंत्रस्तं यथायथेश्वरः प्रेरयति तथातथा करोतीत्युक्तं तत्कथमधुना तस्य विहितार्थानुष्ठानं प्रतिषिद्धवर्जनं च विधीयते तत्राह—

न सर्वथा पारतंत्र्यं कर्माधिकारित्वात् ॥३२॥

यद्यपि पूर्वं जीवस्येश्वरतंत्रत्वमुक्तं तथापि तस्य शुभाशुभकर्मविधौ सर्वथा परतंत्रत्वं नांगीक्रियते कुतः कर्माधिकारित्वात् श्रुतिस्मृतिविहितकर्मकलापे जीवस्यैवाधिकारोस्ति नहि सर्वथा परतंत्रं प्रति कर्माधिकारनिरूपणं युक्तं भवति तथा सति च सर्वेषां वेदादिशास्त्राणां निरर्थकत्वमेव प्रसज्येत शास्त्रकृतां चाप्युन्मत्तत्वमापतेदतो न सर्वथा जीवः परतंत्र इति ॥ ३२ ॥

ननु पहले प्रथमपादमें कहा है कि यह जीव परतंत्र है सो तिसको जैसे जैसे ईश्वर प्रेरणा करता है तैसे तैसेहि कर्म करता है तो फिर अब तिसको विहित कर्मोंका आचरण करना और निषिद्ध कर्मोंका वर्जन करना कैसे कथन करते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( न सर्वथा पारतंत्र्यं कर्माधिकारित्वात् । ) यद्यपि पहले जीवको ईश्वरके अधीन कह आये हैं तथापि शुभाशुभ कर्म करनेमें तिसकी सर्वथा परतंत्रता नांहि मानी जावे है क्योंकि कर्माधिकारित्वात् कहिये वेदशास्त्रविहित कर्मोंके करनेमें जीवकाहि अधिकार है जो जीव सर्वथा परतंत्र होवे तो फिर उसके प्रति कर्मोंके अधिकारका

निरूपण नहि हो सकता और फिर अधिकारकेनिरूपण करनेवाले सब वेदशास्त्रोंको निरर्थकपणा होवेगा तथा तिन शास्त्रोंके निर्माण करनेवालोंकीभी मूर्खता सिद्ध होवेगी इसलिये जीव सर्वथा परतंत्र नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३२ ॥

## फलभागित्वाच्च ॥ ३३ ॥

शुभाशुभकर्मणां फलभागित्वादपि न जीवस्य सर्वथा परतंत्रत्वं भवतीति ज्ञातव्यं सर्वथेश्वराधीनत्वे तु न तस्य फलभोक्तृत्वं युज्येत नहि राजाज्ञया दानं ददतो दानाध्यक्षस्य क्वचित्सुकृतं भवति न वा राजप्रेरणयाऽनुचितं कर्मकुर्वतो भृत्यस्य दंडभागित्वमुपजायते तद्वदत्रापि द्रष्टव्यं ततो न सर्वथा परतंत्रोयंजीव इति ॥ ३३ ॥

( फलभागित्वाच्च । ) शुभाशुभ कर्मोंके फलका भागी होनेसें भी जीवका सर्वथा परतंत्रपणा नहि होवे है ऐसा जानना चहिये और जो जीव सर्वथा ईश्वरके अधीन होता तो फिर तिसको कर्मफलका भागीपणा युक्त नहि होसकता क्योंकि जैसे राजाकी आज्ञासें दान देते हुये दानाध्यक्षको पुण्यकी प्राप्ति नहि होवे है किंतु राजाको होवे है तथा राजाकी

प्रेरणासें कोई अनुचित कर्म करतेंहूयें भृत्यको दंड-का भागीपणा नहि होवे हैं तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये इसलिये जीव सर्वथा परतंत्र नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३३ ॥

तर्हि तस्य कस्मिन्नर्थे परतंत्रत्वमस्तीत्यत्राह

**आरब्धभोगेष्वनिवार्यत्वात् ॥ ३४ ॥**

यैः पूर्व कर्मभिर्वर्त्तमानशरीरे सुखदुःखयोर्भोगः प्रारब्धस्तेषु जीवस्य परतंत्रत्वं ज्ञातव्यं कुतः अनिवार्यत्वात् स्वफलदानाय प्रवृत्तानां कर्मणां निवारणमतीवदुष्करं यद्यपि क्वचिज्जपतपोयोगादिभिरुग्रैरुपायैस्तेषामुपशांतिः कर्तुं शक्यते तथाप्यवश्यभाविकर्मणो निवारणं कदाचिन्नैव संभवत्यतस्तत्र जीवस्य परतंत्रत्वमस्तीति विज्ञेयं तथाचोक्तं पंचदश्यां ( अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि । तदा दुःखैर्न लिम्पेरन्नलरामयुधिष्ठिराः ) इति ॥ ३४ ॥

तो जीवका किस विषयमें परतंत्रपणा है ऐसी जिज्ञासा होनेसें कहते हैं (आरब्धभोगेष्वनिवार्यत्वात्।) जिन कर्मोंने वर्तमानशरीरमें सुखदुःखका भोग आरंभ कर दिया है तिनका जीव निवारण नहि कर सकता अर्थात् अपने फल देनेको प्रवृत्त हूये कर्मको रोकना अति कठिन है यद्यपि कहीं जप तप योग आदि

उग्र उपाय करनेसें तिनकी शांति हो सके है तथापि अवश्य भावी कर्मका कबी निवारण नहि हो सकता सो उसमें जीवका परतंत्रपणा है ऐसा जानना चहिये तथा पंचदशीमेंभी लिखा है कि ( जो अवश्य होनहार कर्मका कुछ उपाय होता तो फिर राजा नल रामचन्द्र और युधिष्ठिर यह सब बनोंमें दुःखोंको क्यों प्राप्त होते अर्थात् अवश्य होनहार कर्मका निरोध नहि होसकता है ) इति ॥ ३४ ॥

एवं जीवस्य परतंत्रत्वं प्रदर्श्याधुना स्वतंत्रत्वं दर्शयति—

**पुरुषार्थस्तु कर्त्तव्ये संभवात् ॥ ३५ ॥**

तुशब्दोऽत्र भिन्नक्रमार्थः कर्तव्ये करिष्यमाणे नवीनकर्मणि जीवेन पुरुषार्थः कर्तुं शक्यते कुतः संभवात् तत्र हि पुरुषार्थस्य संभवो भवति यथा मुक्तशरे पुरुषार्थस्याशक्यत्वेपि मोक्ष्यशरे तन्निरोधः कर्तुं शक्यते तद्वदत्रापि द्रष्टव्यं तत्र जीवस्य स्वातंत्र्यमस्तीत्यभिप्रायः। तथाच पातंजलसूत्रं ( हेयं दुःखमनागतमिति ॥ ३५ ॥

इसप्रकार जीवकी परतंत्रताको दिखाकर अब स्वतंत्रपणा दिखलावे हैं (पुरुषार्थस्तु कर्तव्ये संभ-

वात् । ) कर्तव्य कहिये आगे करनें योग्य नवीन कर्ममें जीव पुरुषार्थ कर सकता है क्योंकि संभवात् कहिये तिसमेंहि पुरुषार्थ हो सकता है जैसे हाथसें छूटे हूये वाणके रोकनेमें कुछ उपाय नहिं होसकता है परंतु आगे छोडनेवाले वाणको पुरुष रोक सकता है तैसेहि यहांभी समझलेना चहिये सो तिसमें जीवका स्वतंत्रपणा है ऐसा जानना चहिये तथा पातंजलयोगसूत्रोंमेंभी लिखा है कि ( आगे होनेवाले दुःखकी निवृत्तिका उपाय करना चहिये क्योंकि वर्तमान वा वीतगये दुःखका उपाय नहि होसकता ) इति ॥ ३५ ॥

ननु नवीनकर्मकरणेपि पूर्वकर्मणां प्रेरकत्वं भवति तत्कथं तत्र जीवस्य स्वातंत्र्यमुच्यते तत्राह—

बलवतोजयित्वात्सर्वत्र ॥ ३६ ॥

सर्वत्र लौकिकवैदिकप्रसंगेषु बलवत एव जयो भवति ततो यस्य जीवस्य पुरुषार्थो बलवान् भवति स पुनः पुनर्विघ्नैरुपहन्यमानोपि पूर्वकर्मवासनां जित्वा स्वकार्ये साफल्यमासादयत्यतः पुरुषार्थस्य जीवाधीनत्वात् तस्य स्वातंत्र्यमवगंतव्यं ततो विहितकर्मानुष्ठाने प्रतिषिद्धवर्जने चातियत्नपरेण भाव्यमित्यभिप्रायः । तथाचोक्तं योगवासिष्ठे (शुभाशुभा-

भ्यां मार्गाभ्यां वहंती वासनासरित् । पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथीति ॥ ३६ ॥

ननु नवीन कर्म करनेमेंभी पीछले जन्मोंके कर्म प्रेरक होते हैं तो फिर तिनमें जीवका स्वतंत्रपणा कैसे कहते हो ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( बलवतोजयित्वात्सर्वत्र । ) सब जगा लौकिक और वैदिक प्रसंगोंमें बलवान्की हि जय होवे है इस-लिये जिस पुरुषका यहांका पुरुषार्थ बलवान् होवे है तो सो वारवार विघ्नोंकरके प्रतिहत हूयाभी पूर्वके कर्मोंकी वासनाको जीत करके अपने कार्यमें सफलताको अ-वश्य प्राप्त होजावे है इसलिये पुरुषार्थ करना जीवके अधीन होनेसें जीवका स्वतंत्रपणाभी जानना चहिये सो शास्त्रविहित कर्मोंके करनेमें और प्रतिषिद्ध कर्मोंके त्याग करनेमें जीवको विशेष यत्न करना चाहिये तथा योगवासिष्ठमेंभी लिखा है कि (शुभ और अशुभ दोनों मार्गोंमें कर्म वासनारूप नदी वहती है उसको पुरुषार्थ करके शुभ मार्गमें जोडदेना चहिये ) इति ॥ ३६ ॥

वेदादिशास्त्रेषु किं विहितं यदर्थं पुरुषार्थः कर्तव्यस्तत्राह—

विहितं जीवहितम् ॥ ३७ ॥

सर्वेषां मनुष्यपशुपक्ष्यादिजीवानां यदविरतं

हिताचरणं तदेव वेदादिशास्त्रेषु विहितं कर्तव्यमस्तीति ज्ञातव्यम् ॥ ३७ ॥

वेदशास्त्रोंमें किस बातका विधान किया है जिसके लिये पुरुषार्थ करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेसे कहते हैं ( विहितं जीवितम् । ) मनुष्य पशु पक्षी आदि सर्व जीवोंका सर्वदाकाल जो हित करना है सोई मुख्य कर्तव्य वेदशास्त्रोंमें विधान किया है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३७ ॥

कुत एतद्विज्ञायते तत्राह—

**तदर्थत्वादशेषधर्माणाम ॥ ३८ ॥**

यतस्तस्य जीवहितस्यार्थमेव शास्त्रेषु सर्वे धर्मा निरूपिताः संति यो हि धर्मस्तेन विकलः स्यान्न स धर्मशब्दार्हो भवति किंतु स धर्माभासो हि विज्ञेय इति ॥ ३८ ॥

यह वार्ता कैसे जानी जावे कि शास्त्रोंमें जीवहितका विधान किया है तहां कहते हैं ( तदर्थत्वादशेषधर्माणाम् । ) क्योंकि तिस जीवहितके लिये हि शस्त्रोंमें सर्व प्रकारके धर्मोंका निरूपण किया है और जो धर्म जीवहितसें रहित होवे सो धर्मशब्दका मुख्य अर्थ नहि हो सकता किंतु सो धर्माभास अर्थात् नकली धर्म समझना चहिये इति ॥ ३८ ॥

एवं जीवहितस्य परमधर्मत्वमुक्त्वाऽधुना तदनुष्ठानप्रकारं दर्शयति—

**मनोवाक्कर्मभिस्तदाचरणम् ॥ ३९ ॥**

तस्मादीश्वराज्ञानुसरणपरेण पुरुषेण मनसा वाचा कर्मणा च तस्य जीवहितस्य सर्वथा सर्वत्र सततमाचरणं विधेयं मनसा सर्वेषां हितचिंतनं वाचा सततं मिष्टभाषणं शरीरेण च सर्वेषां जीवानां शुश्रूषणं परोपकरणं च कर्तव्यमित्यर्थः॥३९॥

इसप्रकार जीवहितको परमधर्मपणा कथन करके अब तिसके आचरण करनेका प्रकार दिखलाते हैं (मनोवाक्कर्मभिस्तदाचरणम्।) सो ईश्वरकी आज्ञा पालन करनेवाले पुरुषको मनकरके वाणीकरके और शरीरकरके सर्व प्रकारसें सब जगामें सर्वदा काल तिस जीवहितका आचरण करना चहिये अर्थात् मनसें सर्व जीवोंका भला इच्छना चहिये और वाणीकरके सबसें मीठा बोलना तथा शरीरकरके निरंतर सर्व जीवोंकी सेवा शुश्रूषा वा परउपकार करना चहिये इति ॥३९॥

एवं विहितपदस्यार्थं तत्कर्तव्यतां च प्रदर्श्याधुना प्रतिषिद्धपदस्यार्थं वर्णयति

**प्रतिषिद्धं हिंसादि ॥ ४० ॥**

वेदादिशास्त्रेषु हिंसादि पापं कर्म प्रतिषिद्धमस्तीति ज्ञातव्यं आदिपदेन चौर्यानृतादीनि पापकर्माणि वेदितव्यानि परमेश्वराज्ञानुसरणपरेण जनेन जीवहिंसादिपापं कर्म कदापि नैव कर्तव्यमिति वाक्यशेषः ॥ ४० ॥

इसप्रकार पूर्वसूत्रमें कथन किये विहित पदका अर्थ और तिसकी कर्तव्यताका वर्णनकरके अब प्रतिषिद्ध पदका अर्थ वर्णन करते हैं (प्रतिषिद्धं हिंसादि ।) वेद और शास्त्रोंमें हिंसा चोरी असत्यभाषण आदि पापकर्म प्रतिषिद्ध हैं ऐसा जानना चहिये अर्थात् ईश्वरकी आज्ञा पालन करनेवाले पुरुषको जीवहिंसादि पापकर्म कदापि नहि करने चहिये इति ४०

एतदेव दृष्टान्तेन दृढयति

**पथ्यवदावश्यकत्वात् ॥ ४१ ॥**

यथारोगनिवृत्त्यभिलाषुकस्य पुरुषस्य पथ्यसेवनमवश्यं भवति तद्वदीश्वराराधनपरेण संसाररोगपरिहारार्थं हिंसादिपापकर्मणामशेषेण परित्यागो विधेयः । नहि हिंसादिपापकर्मकारिष्वीश्वरस्यानुग्रहो जायते तदाज्ञाविरुद्धत्वात् सुकृत-

विघातकत्वाच्च तथाच नीतिविदां वचनं ( पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैरिति ॥ ४१ ॥

इसवार्ताको अव दृष्टांतसें दृढकरते हैं (पथ्यवदावरुध्यकत्वात् । ) जैसें रोगनिवृत्तिकी इच्छावाले पुरुषको पथ्य सेवनकरना आवश्यक होता है तैसेहि ईश्वरके आराधनपरायण पुरुषको जन्ममरणरूप संसाररोगके निवारण करनेके लिये हिंसा चोरी आदि पापकर्मोंका सर्वप्रकारसें परित्याग करदेना चहिये क्योंकि पापकर्म करनेवाले पुरुषोंपर ईश्वरकी प्रसन्नता नहि होती है क्योंकि पापकर्म उसकी आज्ञाके विरुद्ध हैं और जीवके पुण्यकर्मोंको नाश करनेवाले हैं जैसेकि नीतिशास्त्रका वचन है कि ( जो रोगी पुरुष पथ्यका सेवन नहि करता है तो उसको औषधि लेनेसें लाभ नहि होता इति ॥ ४१ ॥

एवमीश्वराराधनप्रकारं तदंगतया तस्याज्ञानुसरणं तद्विधानं च निरूप्याधुनोपासकस्य क्रमेण मोक्षोपायं वर्णयति

**सत्संगतिश्च तदुपयोगित्वात् ॥ ४२॥**

चकारः पूर्वसूत्रान्वयः। जीवहिताचरणं कुर्वताजनेन सतां सच्छास्त्राभिज्ञानां सदाचारवतां महात्मनां संगतिरपि कर्त्तव्या कुतः तदुपयोगित्वात्

तस्येश्वराराधनस्य सत्संगस्य मुख्यकारणत्वमस्तीति ज्ञातव्यं नहि सत्संगमंतरा कस्यापि जीवस्य क्वचिदीश्वरस्वरूपस्यावबोधो जायते तथाच श्रुतिवचनं (उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंतीति ४२

इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसें ईश्वरके आराधनकी विधि और तिसका अंगभूत जीवहिताचरण तथा तिसकी रीति कथन करके अब ईश्वरके उपासक पुरुषको क्रमसें मोक्षप्राप्तिका उपाय निरूपण करते हैं (सत्संगतिश्च तदुपयोगित्वात्।) ईश्वरके आराधन करनेवाले पुरुषको जीवहितका आचरण करते हूये सत् शास्त्रोंके जानने हारे और श्रेष्ठाचारवाले महात्मा पुरुषोंका संगभी करना चहिये क्योंकि तदुपयोगित्वात् कहिये ईश्वरके आराधनमें सत्संग मुख्य कारणभूत है क्योंकि सत्संगके विना किसी जीवको कहींभी ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान नहि होसकता ऐसा जानना चहिये तथा कठउपनिषत्मेंभी लिखा हैं कि (हे पुरुषो तुम पुरुषार्थसें खडे होवो और अज्ञानरूप निद्रासें जागो और सत्पुरुषोंके पास जाकर ज्ञान सीखो क्योंकि परमात्माके स्वरूपका जानना उस्तरेकी तेजधारकी न्यांई बडा कठिन मार्ग है इति ॥ ४२ ॥

सत्संगतौ किं करणीयं तदाह—

परस्परमीश्वरानुसंधानम् ॥ ४३ ॥

सतां समागमे स्थित्वा परस्परं परमेश्वरस्यानुसंधानं कर्तव्यं परमेश्वरः कथं प्रसन्नो भवति कीदृशं तस्य रूपं कथं च तज्ज्ञातुं द्रष्टुं वा शक्यमित्येवं स्वापकृष्टान् प्रत्युपदिशेत्समानैर्विचारयेदुत्कृष्टेभ्यश्च परिप्रश्नेन निर्धारयेदित्यर्थः ॥ ४३ ॥

सत् संगतिमें क्या करना चहिये सो कहते हैं (परस्परमीश्वरानुसंधानम् ।) सत्पुरुषोंकी संगतमें बैठ करके परस्पर ईश्वरका अनुसंधान करना चहिये अर्थात् परमेश्वरकी प्रसन्नता कैसे होवे है और उसका किस प्रकारका स्वरूप है और सो कैसे जाना जावे है इस रीतिसें अपनेसें न्यून बुद्धिवालोंको उपदेश करना चहिये और अपने समान पुरुषोंके साथ मिलकर विचार करना चहिये तथा अपनेसें श्रेष्ठ पुरुषोंसें प्रश्न करके निश्चय करना चहिये इति ॥ ४३ ॥

तद्गुणानुकीर्तनम् ॥ ४४ ॥

तस्येश्वरस्य ये सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वजगत्कर्तृत्वचराचरभर्तृत्वादयो दिव्यगुणास्तेषामपि परस्परं कीर्तनं कर्तव्यम् ॥ ४४ ॥

( तद्गुणानुकीर्तनम् । ) तिस ईश्वरके जो सर्वज्ञपणा सर्वशक्तिपणा जगत्कर्तापणा और चराचर जीवोंका पालनकर्तापणा आदि दिव्य गुण हैं तिनकाभी परस्पर मिलकर कथावार्ता वा गायन आदि करके कीर्तन करना चहिये इति ॥ ४४ ॥

**तद्रूपमननं च ॥ ४५ ॥**

पुनरेकांतस्थाने स्थित्वा सत्समागमादवगतस्येश्वरस्वरूपस्य सततं स्थिरेण चेतसा मननं कुर्यात् मननमत्र निदिध्यासस्याप्युपलक्षणं ज्ञेयं मनन निदिध्यासाभ्यां परमात्मस्वरूपस्य चेतसि दृढं निश्चयं कुर्यादित्यर्थः। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति श्रुतिवचनात्॥४५ ॥

तद्रूपमननं च । सत्संगकरके पीछे एकांतस्थानमें बैठकरके सत्संगसें श्रवण किये हूये परमात्माके स्वरूपका स्थिरचित्तहोकर निरंतर मनन करना चहिये यहां मननशब्द निदिध्यासकाभी उपलक्षण जानना अर्थात् मनन और निदिध्यासन करके परमात्माके स्वरूपका अपने चित्तमें पूर्ण दृढ निश्चय करना चहिये जैसे कि बृहदारण्यक उपनिषद्में लिखाहै कि ( अरे मैत्रेयी आत्माको देखना और सुनना चहिये तथा तिसका मनन और निदिध्यासनभी करना चहिये इति ॥ ४५ ॥

ततः किं कर्तव्यमित्यत्राह—

सर्वत्र तन्मयत्वावलोकनम् ॥ ४६ ॥

सर्वत्र चराचरेऽस्मिन् जगति व्यापकत्वेनेश्वरस्यावलोकनं कुर्यादिति वाक्यशेषः (ईशावास्यमिदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठमित्यादिश्रुतिवचनानुसारेणैतदखिलं जगत् परमेश्वररूपत्वेनावलोकयेदित्यर्थः ॥ ४६ ॥

तिसके पीछे क्या करना चहिये सो कहते हैं (सर्वत्र तन्मयत्वावलोकनम् । ) इस चराचर जगत्में सर्वत्र व्यापकरूपसें ईश्वरको देखना चहिये अर्थात् (इस सर्व जगत्को ईश्वररूपसें भावना करना चहिये, यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप है, यह सर्व विश्व श्रेष्ठ ब्रह्मरूप है इत्यादि श्रुतिवचनोंके अनुसार इस संपूर्ण जगत्को ईश्वररूप हि समझना चहिये इति ४६

ननु प्रत्यक्षतयानुभूयमानस्यास्य स्थूलजडरूपस्य जगतः कथमव्यक्तचिन्मयेश्वरस्वरूपत्वं भवितुमर्हतीत्यत्राह—

तत्संकल्पजत्वात्तद्रूपत्वं विश्वस्य ॥४७॥

सर्वस्यास्य चराचरस्य विश्वस्येश्वरस्वरूपत्वमेवास्तीति ज्ञातव्यं कुतः तत्संकल्पजत्वात् तस्येश्व-

रस्य संकल्पादेवेदं सर्वमुत्पन्नं ततस्तद्रूपमेव यद्धि यस्मादुत्पद्यते तत्तद्रूपमेव भवति यथा मृदो जातो घटो मृन्मय एव स्वर्णाज्जातं भूषणं सुवर्णमयमेव भवतीत्येवमत्रापि द्रष्टव्यं तथाच वेदव्याससूत्रं (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः ) इति ॥ ४७ ॥

ननु प्रत्यक्षरूपसें यह जगत् स्थूल और जडरूप देखनेमें आता है सो यह अव्यक्त चेतनस्वरूप ईश्वररूप कैसे हो सकता है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं (तत्संकल्पजत्वात्तद्रूपत्वं विश्वस्य) यह संपूर्ण चराचर जगत् एक ईश्वर रूपहि है ऐसा जानना चहिये क्योंकि तत्संकल्पजत्वात् कहिये तिस ईश्वरके संकल्पसेंहि इस सर्व जगत्की उत्पत्ति होवे है इसलिये यह ईश्वररूपहि है क्योंकि जो वस्तु जिससें उत्पन्न होती है वो उसीका रूप होती है जैसे मिट्टीसें उत्पन्न हूया घट केवल मिट्टीरूपहि होता है और सुवर्णसें वना हूया भूषण सुवर्णरूपहि होता है तैसेहि यहांभी समझलेना चाहिये तथा ब्रह्मसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहा है कि ( कारणसें कार्य भिन्न नहि होता क्योंकि केवल कार्यका नामरूप वाणीसें भिन्न कहा जावे है स्वरूपसें दोनों एकहि होते हैं ) इति ॥ ४७ ॥

आत्माभिन्नत्वं च तदंशत्वात् ॥ ४८ ॥

एवमीश्वरात्मकं सर्वमिदं जगदवलोकयन्नात्मानं स्वकीयरूपमपीश्वरादभिन्नं जानीयात् सर्वस्य जगतःपरमेश्वररूपत्वे सति न पुनरात्मनस्ततः पृथक्त्वं भवितुमर्हति कुतः तदंशत्वात् तस्येश्वरस्यांशभूतो हि किलायं जीवः नह्यंशस्य क्वचिदंशिस्वरूपतः पृथक्त्वं भवति जीवस्येश्वरांशत्वं तु ( तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् । ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ) इत्यादिश्रुतिस्मृतिषु प्रसिद्धमेवातः सर्वत्रेश्वरस्वरूपत्वमेवावलोकनीयम् ॥४८॥

आत्माभिन्नत्वं च तदंशत्वात् । इस प्रकारसें सर्व जगत्को ईश्वररूप देखते हूये अपने जीवात्माको भी ईश्वरसें अभिन्न समझना चहिये क्योंकि जब संपूर्ण जगत् ईश्वररूप होगया तो फिर अपना जीवात्मा उससें भिन्न कैसे होसकता है क्योंकि तदंशत्वात् कहिये यह जीवात्मा तिस ईश्वरकाहि अंशरूप है क्योंकि कहींभी कोई अंश अपने अंशीस्वरूपसें भिन्न नहि होवे है सो जीवका ईश्वरअंशपणा ( तिस ईश्वरके अंशरूप जीवोंकरके यह सर्व जगत् व्याप्त होरहा है । हे अर्जुन इस जगत्में मेराहि अंशरूप सनातन जीव है

इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंमें प्रसिद्धहि हैं इसलिये सब जगत् एक ईश्वरका स्वरूपहि देखना चहिये इति ॥ ४८ ॥

ननु शरीरपरिच्छिन्नस्य जीवस्य कथं सर्वत्र व्यापकेनेश्वरेणैक्यं भवितुमर्हति तत्राह—

**नोपाधिभेदादन्यत्वमाकाशवत् ॥ ४९ ॥**

शरीरोपाधिभेदाज्जीवस्येश्वरतोऽन्यत्वं नैव मंतव्यं कुतः आकाशवत् यथा घटाकाशस्य घटोपाधिना परिच्छिन्नस्यापि महाकाशतो भिन्नत्वं नैव भवति तद्वदेव शरीरोपाधिना परिच्छिन्नस्यापि जीवस्येश्वरतः पृथक्त्वं नास्तीति ॥ ४९ ॥

ननु शरीरमें रहनेहारे परिच्छिन्न जीवकी सर्वव्यापक ईश्वरके साथ एकता कैसे होसके है ऐसी शंका होनेसें समाधान कथन करते हैं ( नोपाधिभेदादन्यत्वमाकाशवत् ) शरीररूप उपाधिके भेदसें जीवका ईश्वरसें भिन्नपणा नहि मानना चहिये क्योंकि आकाशवत् कहिये जैसे घटाकाश घटरूप उपाधिसें परिच्छिन्न होनेपरभी महाकाशसें भिन्न नहि होवे है तैसेहि शरीररूप उपाधिसें परिच्छिन्न हूयाभी जीवात्मा ईश्वरसें भिन्न नहि है ऐसा जानना चहिये इति ॥४९॥

नन्वेवं सर्वस्य जगतो जीवानां च ब्रह्मरूपत्वे तु जगत्पदार्थगतजडत्वपरिणामित्वमलिनत्वादि-

दोषाणां परिच्छिन्नत्वाल्पज्ञत्वकर्मबद्धत्वादिजीवधर्माणां च ब्रह्मण्येव प्रसक्तिर्भविष्यतीति चेत् तत्राह—

**कल्पितत्वात्तु न तद्भावः स्वप्नादिवत् ॥ ५० ॥**

तुशब्देनाक्षेपं व्यावर्तयति सर्वस्यापि जगतो जीवानां च ब्रह्ममयत्वेपि तद्गतगुणदोषैर्ब्रह्मणो मलिनत्वबद्धत्वादिदोषप्रसंगो नैव भवतीति ज्ञातव्यं कुतः कल्पितत्वात् सर्वस्यापि चराचरप्रपंचस्य संकल्पमात्ररचितत्वेन ब्रह्मणि कल्पनामात्रत्वात् स्वप्नादिवदिति निदर्शनं यथा स्वप्नदशायां जीवसंकल्पकल्पितानां शुभाशुभपदार्थानां गुणदोषैर्न जीवस्य गुणदोषवत्त्वं प्रजायते नहि स्वप्नगतदुर्गंधेन स्वप्नद्रष्टुः पुरुषस्य शरीरे पूतिभावो जायते न च स्वप्नपुरुषशिरश्छेदेन सुप्तपुरुषस्य शिरश्छेदो भवति तद्वदेवेश्वरसंकल्परचितपदार्थगतगुणदोषैर्नेश्वरस्य गुणदोषवत्त्वं संभवतीति निश्चेयं आदिपदेनात्रैन्द्रजालिकोर्णनाभचित्रपटादयो गृह्यंते यथाकिलैन्द्रजालिको मायावी स्वप्रसारितया मायया न क्वचित्स्वयं प्रतिमुह्यति प्रलिप्यते वा यथा वोर्णनाभाख्यो जंतुः स्वशरीरात्तंतुजालं प्रतनोति परंतु

तंतु प्रकंपने विच्छेदे वा न स्वयं प्रकंपते विच्छिद्यते वा यथाच चित्रपटे चित्रितया वन्हिज्वालया नद्या वा नाधारवस्त्रं परिदह्यते क्लिद्यतेवा तद्वदत्रापि द्रष्टव्यं । तथाच कठोपनिषद्वचनं ( सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन वाह्य इति ॥ ५० ॥

ननु इसप्रकार संपूर्ण जगत् और सर्व जीवोंको ब्रह्मरूप होनेसें तो जगत्के पदार्थोंमें रहे हूये जडपणा परिणामिपणा मलिनपणा आदि दोषोंका और जीवके परिच्छिन्नपणा अल्पज्ञपणा कर्मबद्धपणा आदि धर्मोंका ब्रह्ममेंहि प्रवेश होवेगा तो फिर ब्रह्म निर्मल शुद्ध कैसे होसकेगा ऐसी शंका होनेपर समाधान कथन करते हैं ( कल्पितत्वात्तु न तद्भावः स्वप्नादिवत् ) तुशब्दसें शंकाका परिहार जानना संपूर्ण जगत्के पदार्थ और सर्व जीवोंको ब्रह्मरूप होनेपरभी तिनके जडत्व परिणामित्व कर्मबद्धत्व आदि दोषोंका ब्रह्ममें संबंध नहि होवे है क्योंकि कल्पितत्वात् कहिये चराचर संपूर्ण जगत् केवल ईश्वरके संकल्पमात्रसें रचा हूया होनेसें ब्रह्ममें कल्पनामात्र है वास्तवमें ब्रह्मसें कुछ जुदा सत्य पदार्थ नहि है स्वप्नादिवत् यह यहां दृष्टांत है सो जैसे

स्वप्नअवस्थामें जीवके संकल्पसें रचे हुये शुभाशुभ पदार्थोंके गुणदोषोंसे जीवात्मा गुणदोषवाला नहि हो जाता वो असंग निर्लेप रहता है क्योंकि जैसे स्वप्नकी दुर्गंधसें स्वप्न देखनेवाले पुरुषके शरीरमें दुर्गंधिपणा नहि हो जाता तथा स्वप्नपुरुषके सिर कटनेसें सोनेवाले पुरुषका सिर नहि कट जाता है तैसेहि ईश्वरके संकल्परचित पदार्थोंके गुणदोषोंसे ईश्वर गुणदोषवाला नहि होता वो सदा असंग निर्लेप शुद्ध रहता है ऐसा निश्चय करना चहिये आदि पदसें यहां इन्द्रजालिक ऊर्णनाभ चित्रपट आदिकोंका ग्रहण जानना सो जैसे इन्द्रजाली पुरुष अपनी जादुरूपमाया फैलाता है परंतु उससें आप मोहितवा लिपायमान नहि होता और जैसे मकडी अपने शरीरसें जालातनती है परंतु सो उसजालेके कंपनेवा टूटनेसें आप कांपती वा टूटती नहिहै तथा जैसे चित्रपटमें अग्निका अथवा जलनदीका चित्र बना होवे तो उससें नीचेका आधार वस्त्र जलता वा भीगता नहि है तैसेहि यहां ईश्वरके निर्लेपपणेमेंभी समझलेना चहिये । तथा कठ उपनिषत्‌मेंभी लिखा है कि ( जैसे सूर्य तेजरूपसें सर्व जीवोंके नेत्रोंमें रहता है परंतु तिन नेत्रोंके काणा अंधापणा आदि दोषोंसे लिपायमान नहि होवे है तैसेहि सर्व भूतप्राणियोंमें व्यापक हूया

परमात्माभी भूतप्राणियोंके दुःखोंसें लिपायमान नहि होवे है यो सबसें असंग रहता है इति ॥ ५० ॥

आकाशवच्च ॥ ५१ ॥

यथा चाकाशः सर्वेषु चराचरपदार्थेष्वंतर्बहिरनुस्यूतोपि तत्तत्पदार्थगतगुणदोषैर्नैव संसृज्यते तद्वदीश्वरस्यापि निर्लेपत्वं निश्चेयम् ॥ ५१ ॥

आकाशवच्च । तथा जैसे आकाश सर्व चराचर पदार्थोंमें अंदर वा बाहिर परिपूर्ण होनेसे भी तिन पदार्थोंके गुण दोषोंसे रंचक मात्रभी लिपायमान नहि होवे है तैसेहि ईश्वरका भी निर्लेपपणा निश्चय करना चहिये इति ॥ ५१ ॥

एवं प्रासंगिकमाक्षेपं समाधायाधुना प्रकृतमनुसरति—

ततः सर्वत्राद्वैतदर्शनम् ॥ ५२ ॥

यतः समस्तस्य जगतो जीवात्मनश्चेश्वरादभिन्नत्वं ततः सर्वत्र चराचरेऽस्मिन् जगति एकमेवाद्वितीयं, नेह नानास्ति किंचन, पुरुष एवेदꣳसर्वमित्यादिश्रुतिवचनानुसारेणाद्वैतमेवावलोकनीयं मनुष्यपशुपक्ष्यादिसर्वजीवेषूच्चनीचत्वदृष्टिमपहाय सर्वत्र ब्रह्मबुद्ध्या समदर्शनं विधेयमित्यर्थः ॥ ५२ ॥

इसप्रकार प्रसंगपतित शंकाका समाधान निरूपण करके अब फिर पूर्वका प्रकरण कथन करते हैं ( ततः सर्वत्राद्वैतदर्शनम् । ) उक्त रीतिसें संपूर्ण जगत् और जीवात्माको ईश्वरसे अभिन्न होनेसे सर्वत्र चराचर जगत्में एक अद्वैत देखना चहिये ( एकहि अद्वितीय ब्रह्म है उसमें नानापणा कुछ नहि है यह सर्व जगत् परमात्माहि है ) इत्यादि श्रुतिवचनोंके अनुसार सब जगा एक ब्रह्महि देखना चहिये अर्थात् मनुष्य पशु पक्षी आदि सर्व जीवोंमें नीच ऊंचपणेकी दृष्टि छोडकरके सर्वत्र ब्रह्मभावनासें समदृष्टिसें देखना चहिये इति ॥ ५२ ॥

तदभ्यासश्चापेक्षितत्वात् ॥ ५३ ॥

तस्याद्वैतदर्शनस्य सततमभ्यासोपि कर्त्तव्यः तिष्ठन्गच्छन्स्वपन्सर्वदा सर्वत्रैकमेवाद्वितीयं ब्रह्मैव परिभावयेत् कुतः अपेक्षितत्वात् नहि कोटिजन्मांतरारूढा चेतसि द्वैतवासना सहसा निवर्तयितुं शक्यते तथाच श्रुतिवचनं ( आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य इति । जन्मांतरचिराभ्यस्ता राम संसारवासना । सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् । "आवृत्तिरसकृदुपदेशा"दित्यादिस्मृतिवचनाच्च ॥ ५२ ॥

तदभ्यासश्चापेक्षितत्वात्। तिस अद्वैतदर्शनका सर्वदा काल मनमें अभ्यासभी करना चहिये अर्थात् बैठते चलते सोते सब जगा एक अद्वितीय ब्रह्मकी भावना करनी चहिये क्योंकि कोटिजन्मांतरोंसें चित्तमें आरूढ हुई संसारकी द्वैतवासना शीघ्र निवृत्त नहि होसकती है जैसे कि बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है कि (अरे मैत्रेयी आत्माको देखना चहिये श्रवण करना चहिये मनन करना चहिये और निदिध्यासन करना चहिये) इति। तथा योगवासिष्ठमेंभी लिखा है कि (हे राम बहुत जन्मोंकी संसारकी वासना जो चित्तमें दृढ हो रही है सो चिरकालतक तत्त्वज्ञानके अभ्यास किये विना शांत नहि हो सकती है इति। तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी लिखा है कि (तत्त्वज्ञानका वारंवार अभ्यास करना चहिये क्यों कि छांदोग्य उपनिषत्में उद्दालकमुनिने अपने पुत्र नचिकेताको बहुतवार उपदेश किया है इति॥ ५३॥

ततः किं भवति तदाह—

ततो रागद्वेषनिवृत्तिः॥ ५४॥

ततोऽद्वैतदर्शनाभ्यासे दृढतामुपगते सति जीवस्य रागद्वेषयोर्निवृत्तिर्भवतीति ज्ञातव्यं स्वात्मनो भिन्नं वस्तुजातं पश्यन्नेव हि जीवस्तत्र तत्र रागं

करोति सर्वत्रात्मानमेव भोक्तृभोग्यरूपेण पश्यतस्तु रागो निवर्त्तते (आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेदितिश्रुतिवचनात् तथैव ममात्मैवायमिति भेदबुद्ध्यभावात्परत्र द्वेषोपि निवर्त्तते तथाच वेदवचनं (यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते, इति ॥ ५४ ॥

ततो रागद्वेषनिवृत्तिः । उक्तरीतिसें अद्वैतब्रह्मदर्शनके अभ्यासके दृढ होनेसें जीवके राग और द्वेषकी निवृत्ति होजावेहै क्योंकि सर्ववस्तुवोंको अपने आत्मासें भिन्न जानता हूया हि जीव तिसतिस वस्तुमें राग करता है और जब जिसकालमें ज्ञानदृष्टिसें सर्वत्र भोक्ता और भोग्यपदार्थोंको अपने आत्मासें अभिन्न जानलेताहै तो फिर उनमें राग नहि करता है जैसे कि बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है कि ( जिसकालमें यह जीव अपने आत्माको अपरोक्ष जानलेता है तो फिर किस वस्तुकी इच्छा करता हूया शरीरको कष्ट देता है अर्थात् नहि देता है इति । तैसेहि यह मेरा हि आत्मारूप है इसप्रकारसे जानता हूया दूसरे शत्रुआदिकोंमें द्वेषभावभी नहि करता है तथा ईशावास्य

उपनिषत्में लिखा है कि ( जिसकालमें यह जीव सर्व चराचर भूतप्राणियोंको अपने आत्मामें और अपने आत्माको सर्वभूतप्राणियोंमें ओतप्रोत व्यापक देखता है तो फिर किसी जीवसें घृणा नहि करताहै अर्थात् द्वेषभाव नहि करता है इति ॥ ५४ ॥

सुकृतदुष्कृतयोश्च ॥ ५५ ॥

निवृत्तिरित्यनुवर्त्तते रागद्वेषाभावे पापपुण्ययोरपि निवृत्तिर्जायते स्वर्गादिविषयभोगरागेणैव हि जीवस्य यज्ञादिसुकृतकर्मसु प्रवृत्तिर्जायते तद्वन्मम शत्रुरयमिति भेदबुद्ध्यैव स्वानिष्टकारिणं प्रति द्विषन् । तत्परिपीडनादिना दुष्कृतान्याचिनोति रागद्वेषाभावे तु सुकृतदुष्कृतयोर्नोत्पत्तिर्भवतीति वेदितव्यम् ॥ ५५ ॥

सुकृतदुष्कृतयोश्च । रागद्वेषके नहि होनेसें इस जीवके पापपुण्योंकी भी निवृत्ति होजावे है क्योंकि स्वर्ग आदि विषयोंमें राग होनेसेंहि तिनकी प्राप्तिके लिये जीवकी यज्ञादिसुकृतकर्मोंमें प्रवृत्ति होवे है तैसेहि यह मेरा शत्रु है इस प्रकार भेदबुद्धिसें हि दूसरेके साथ द्वेष करता हूया तिसको दुःख वा हानि पहुंचानेसे पापोंको संचय करता है सो रागद्वेषके नहि होनेसें

फिर पापपुण्यकी उत्पत्ति नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५५ ॥

एवं सामान्यतया सुकृतदुष्कृतयोर्निवृत्तिमभिधायाधुना तत्र विशेषप्रकारं दर्शयति—

**विनाशः पूर्वेषाम् ॥ ५६ ॥**

तत्र पूर्वेषां पूर्वजन्मसु संचितानामस्य तत्त्वविदः पापपुण्यकर्मणां विनाशो भवतीति ज्ञातव्यं ( क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे, ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ) इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनप्रमाणात् ॥ ५६ ॥

विनाशः पूर्वेषाम्। तिनमें ज्ञानी पुरुषके जो पूर्वजन्मोंके संचितपापपुण्यरूप कर्म होते हैं तिनका तो तत्त्वज्ञानके प्रभावसें समूल नाश होजावे है ऐसा जानना चहिये जैसे कि मुंडक उपनिषत्में लिखा है कि ( तिस परमात्माके ज्ञानसें जीवके सर्व कर्म क्षीण होजाते हैं इति। तथा भगवत्गीतामेंभी लिखा है कि ( हे अर्जुन ज्ञानरूपी अग्नि सर्व कर्मोंको भस्म करदेती है इति ॥ ५६ ॥

**अश्लेषो नूतनानाम् ॥ ५७ ॥**

नूतनानां प्रारब्धवशात् तत्त्वज्ञानोत्तरकालप्रभवाणां नवीनसुकृतदुष्कृतानामस्य ज्ञानिनः श्लेषो

नैव जायते देहादिष्वहंभावं कुर्वन्नेवायमात्मानं क-र्तारं मत्वा कर्मभिराश्लिष्यते तदभावात्तु न पुनः पापपुण्ययोराश्लेपो जायते तथा च श्रुतिवचनं ( यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यंत एवमेवं-विदि पापं कर्म न श्लिष्यते ) इति ( ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसेत्यादिस्मृतिवचनाच्च ॥५७॥

अश्लेपो नूतनानाम् । तथा तत्त्वज्ञान होनेके अनंतर जो ज्ञानीपुरुपसें प्रारब्धकर्मके वशसें शुभ अ-थवा अशुभ नवीनकर्म होते हैं तिनका ज्ञानी पुरुषको लेप नहि होवे है क्योंकि अज्ञानके वशसें देहादिकोंमें अहंभाव करके आत्माको कर्ता मानकरहि जीव कर्मोंके करनेसें लिपायमान होवे है सो देहअभिमानके नहि होनेसें ज्ञानी पुरुपको पापपुण्यका लेप नहि होवे है जैसे कि छांदोग्य उपनिपत्में लिखा है कि ( जैसे कमलके पत्रको जल स्पर्श नहि करता है तैसेहि ज्ञानी पुरुपको पापकर्म स्पर्श नहि करते इति । तथा भगव-द्गीतामेंभी लिखा है कि ( जो ज्ञानी पुरुष सर्व कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण करके असंग होकर कर्म करता है सो जलमें कमलके पत्रकी न्यांई पापसें लिपायमान नहि होता है इति ॥ ५७ ॥

भोगेन क्षयश्चारंभकाणाम् ॥ ५८ ॥

तथा च वर्तमानशरीरारंभकाणां प्रारब्धकर्मणां भोगेन क्षयो भवतीति ज्ञातव्यं यावत्प्रारब्धकर्मणां भोगस्तावज्ज्ञानिनः शरीरं तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ५८ ॥

भोगेन क्षयश्चारंभकाणाम्। तथा वर्तमान शरीरके आरंभक जो प्रारब्धकर्म होते हैं सो भोगसें क्षय होजाते हैं अर्थात् जबतक प्रारब्ध कर्मोंका भोग रहता है तबतक ज्ञानीका शरीर रहता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५८ ॥

ततः कैवल्यं जीवस्य ॥ ५९ ॥

ततः जन्मांतरप्रापकाणां संचितक्रियमाणप्रारब्धानां सर्वेषां कर्मणां परिक्षयात् लोकांतरगमननिमित्ताभावाज्जीवस्य कैवल्यं जायते जन्ममरणात्मकसंसारबंधनान्मुक्तिर्भवतीत्यर्थः। तथाच श्रुतिवचनं ( तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्यत इति ) ॥ ५९ ॥

ततः कैवल्यं जीवस्य। उक्तरीतिसें जब अन्य जन्म देनेहारे संचित क्रियमाण और प्रारब्ध सर्व प्रकारके कर्मोंके नाश होजानेसें परलोकगमनका कोई

निमित्त नहि रहता है तब जीवको कैवल्य मोक्षकी प्राप्ति होवे है अर्थात् इस जन्ममरणरूप संसारबंधनसें मुक्ति होजावे है जैसे कि छांदोग्य उपनिषत्में लिखा है कि ( तिस ज्ञानीपुरुषको उतनातकही देर लगती है जबतक शरीर नहि छूटता शरीर छूटे पीछे तत्काल हि मोक्षकी प्राप्ति होजावे है ) इति ॥ ५९ ॥

कैवल्यस्य किं स्वरूपमित्यत्राह—

परुरूपेणावस्थानं कैवल्यमवस्थानं
कैवल्यमिति ॥ ६० ॥

स्थूलसूक्ष्मशरीरोपाधिविनिर्मुक्तस्य जीवात्मनः परेण ब्रह्मणा यदभिन्नरूपेणावस्थानं तदेव कैवल्यमित्यधिभीयते सूत्रे द्विरुच्चारणं तु पादसमाप्त्यर्थं विज्ञेयं तथा च मुंडकोपनिषद्वचनं ( यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यमिति) शम् ॥ ६० ॥

कैवल्यमोक्षका क्या स्वरूप है ऐसी अपेक्षा होनेसें कहते हैं ( पररूपेणावस्थानं कैवल्यमवस्थानं कैवल्यमिति । ) स्थूल सूक्ष्म शरीररूप उपाधिको छोड करके जीवात्माकी जो परब्रह्मके साथ अभेद-रूपसें स्थिति होनी है सोई कैवल्यमोक्ष कहिये है सूत्रमें

जो पदका दुबारा उच्चारण है सो पादकी समाप्तिके लिये है तथा मुंडक उपनिषत्में लिखा है कि ( जैसे बहती हुई नदियां समुद्रमें जाकर अपना नाम और रूप छोडकर लीन होजाती हैं तैसेहि तत्त्वज्ञानी पुरुषभी अंतकालमें अपना नाम और रूप छोडकर प्रकृतिसे परे परमात्मामें लीन होजावे है ) इति शम् ॥ ६० ॥

इति श्रीब्रह्मानन्दस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शने

चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

समाप्तं चेदमीश्वरदर्शनम् ।

सूत्रसंख्या ॥ २४०





( गीतिच्छन्दः )

जगदुत्पत्तिनिदानं व्यपगतमानं विहंगपतियानम् ।
पीतांबरपरिधानं सुगुणनिधानं निरामयं वन्दे ॥ १ ॥

मुकुटविभूषितभालं धृतवनमालं सुरारिकुलकालम् ।
त्रिभुवनजनपरिपालं गगनविशालं शमालयं वन्दे ॥२॥

अभिनवजलदाकारं विगतविकारं चराचराधारम् ।
सागरजापरिवारं भवभयहारं हरिं सदा वन्दे ॥ ३ ॥

कमलाश्रितवामांगं करुणापांगं समस्तसुभगांगम् ।
मणिगणशोभिवरांगं सांगं नागारिवंदितं वन्दे ॥ ४ ॥

कुटिलासितघनकेशं निगमनिदेशं समस्तदेवेशम् ।
परिगतमोहावेशं देशं कैवल्ययायिनां वन्दे ॥ ५ ॥

सुंदरताजितकामं निधनविरामं मुनीश्वरारामम् ।
निजजनपूरितकामं श्यामं देहेन निर्मलं वन्दे ॥ ६ ॥

निगमागमगणगीतं त्रिगुणातीतं स्वपार्षदावीतम् ।
दितिसुतगणविपरीतं नीतं स्वांतेषु योगिभिर्वन्दे ॥७॥

क्षीरांभोधिविहरणं विश्वविभरणं मनोहराभरणम् ।
शरणागतभयहरणं तरणं संसारवारिधेर्वन्दे ॥ ८ ॥

इति हरिगुणगणवलितं ब्रह्मानंदाननांबुजाद्गलितम् ।
सुभगपदावलिललितं स्तोत्रमिदं पापहारि वो भूयात् ९

इति ब्रह्मानंदस्वामिविरचितं विष्णवष्टकं समाप्तम् ।

(गीतिच्छन्दः)

शीर्षजटागणभारं गरलाहारं समस्तसंहारम् ।
कैलासाद्रिविहारं विश्वाधारं निराश्रयं वन्दे ॥ १ ॥
चंद्रकलोज्ज्वलभालं कंठव्यालं जगत्त्रयीपालम् ।
धृतनरमस्तकमालं कालं कालस्य कोमलं वन्दे ॥ २ ॥
कोपेक्षणहतकामं स्वात्मारामं नगेन्द्रजावासम् ।
संसृतिशोकविरामं श्यामं कंठेन कारणं वन्दे ॥ ३ ॥
कटितटविलसितनागं खंडितयागं महाद्भुतत्यागम् ।
विगतविषयरसरागं भागं यज्ञेषु बिभ्रतं वन्दे ॥ ४ ॥
त्रिपुरादिकदनुजांतं गिरिजाकांतं सदैव संशांतम् ।
लीलाविजितकृतांतं भांतं स्वांतेषु देहिनां वन्दे ॥ ५ ॥
सुरसरिदाप्लुतकेशं त्रिदशकुलेशं हृदालयावेशम् ।
विगताशेषक्लेशं देशं सर्वेष्टसंपदां वन्दे ॥ ६ ॥
करतलकलितपिनाकं विगतजराकं सुकर्मणां पाकम् ।
परपदवीतवराकं नाकंगमपूगवंदितं वन्दे ॥ ७ ॥
भूतिविभूषितकायं दुस्तरमायं विवर्जितापायम् ।
प्रमथसमूहसहायं सायंप्रातर्निरंतरं वन्दे ॥ ८ ॥
यस्तु पदाष्टकमेतद्ब्रह्मानंदेन निर्मितं नित्यम् ।
पठति समाहितचेताः प्राप्नोत्यंते स शैवमेव पदम् ॥९॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिविरचितं शिवाष्टकं समाप्तम् ।